प्रकाशक :—

बद्री प्रसाद

प्रोफेसर, मारवाड़ी कालिज,

भागलपुर

प्रथम संस्करण

मूल्य ६) रुपया .

मुद्रक :—

माया प्रेस,

प्रयाग

दो शब्द

वाणिज्य के क्षेत्र में बीमे का बहुत महत्व है। भारतीय विश्वविद्यालयों ने भी वाणिज्य के पाठ्यक्रम में आई० कॉम० से एम० कॉम० तक इस विषय को उच्च स्थान दिया है। वैदेशिक भाषाओं में, विशेषतया अँगरेज़ी मे, बीमे की पूर्ण और गम्भीर विवेचना हुई है। किन्तु अब कतिपय विश्वविद्यालयों में पढ़ाई का माध्यम हिन्दी हो गया है और इधर राष्ट्रभाषा के प्रतिष्ठास्पद सिंहासन पर हिन्दी समारूढ़ हो चुकी है। अतएव हिन्दी मे उच्च कोटि के ग्रन्थों का प्रणयन परमावश्यक हो गया है। राष्ट्रभाषा हिन्दी में बीमे का सूक्ष्म-सरल अध्ययन उपस्थित करने वाली पुस्तकें विरल हैं। जहाँ तक मेरी जानकारी है, आधिकारिक ग्रन्थ तो एक भी नहीं है। वाणिज्य-शास्त्र के अध्यापक के रूप में उच्च कक्षाओं के छात्रों एवं अध्यापकों की कठिनाइयाँ मैंने निकट से देखीं और तभी हृदय की अदम्य प्रेरणा ने बलात् मेरी उँगलियों में लेखनी रख दी। यह रही मेरे इस प्रयास की पृष्ठभूमि।

"बीमा-प्रवेश : सिद्धान्त और प्रयोग" नामक इस ग्रन्थ मे यथानाम बीमा-विषयक सारे महत्वपूर्ण सिद्धान्तों और प्रयोगों की गुत्थियाँ प्रांजल भाषा के आवरण में सुलझा कर रख दी गई है। जीवन-बीमे से लेकर भारतीय बीमा-विधान तक समस्त विषय अच्छी तरह समझाए गए हैं। ग्रन्थ यद्यपि विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों को दृष्टि में रख कर लिखा गया है, फिर भी व्यापक विवेचना के कारण बीमा-क्षेत्र में कार्य करने वाले सभी प्रकार के व्यक्तियो के लिए निस्सन्देह उपादेय होगा।

जहाँ तक ग्रन्थ की भाषा का सम्बन्ध है, मै कहना चाहूँगा कि वह यथासाध्य सरल और सुबोध रखी गई है। पारिभाषिक शब्द गढ़ने मे भी बोधगम्यता का ध्यान रक्खा गया है और जहाँ तक बन पड़ा है, प्रचलित शब्दों का भरपूर प्रयोग किया गया है।

मनुष्य पूर्णता का दावा नहीं कर सकता। यह पुस्तक राष्ट्र औरभाषा के संक्रमण-काल में लिखी गई है; अतएव यद्यपि अब तक प्राप्य सारी सामग्री का उपयोग किया गया है और पुस्तक को प्रत्येक दृष्टिकोण से पूर्ण बनाने की भर-सक चेष्टा की गई है, फिर भी स्खलन और प्रमाद असंभव नहीं हैं। खास कर मुद्रण-दोष जहाँ-तहाँ रह गए होंगे। इन सब अपूर्णताओं और त्रुटियों का पूरा दायित्व एकमात्र मुझ पर है। सुधार के लिए जो सुझाव कृपापूर्वक दिए जाएँगे, उन्हें मैं बड़े आदर से ग्रहण करूँगा और अगले संस्करण में साभार उनका उपयोग किया जायगा।

इस पुस्तक के प्रणयन और प्रकाशन में जिन हृदयालु व्यक्तियों ने सहयोग प्रदान किया है, उनका ऋण तो अशोध्य है, कभी चुक नहीं सकता। केवल धन्य-वाद देकर उसका अवमूल्यन (devaluation) करना मैं नहीं चाहूँगा।

बद्री प्रसाद

वाणिज्य विभाग,
मारवाड़ी कालिज,
भागलपुर

विषय-सूची

प्रथम भाग

प्रारम्भिक विवेचना

द्वितीय भाग

जीवन-बीमा

तृतीय भाग

सामुद्रिक बीमा

चतुर्थ भाग

अग्नि-बीमा

पंचम भाग

कुछ अन्य प्रकार के बीमे

षष्ठ भाग

भारतीय बीमा-विधान का संक्षिप्त परिचय

प्रथम भाग

प्रारम्भिक विवेचना

अध्याय १

विषय-प्रवेश

जीवन-बीमा : जोखिम ही मानव जीवन है, यदि यह कहा जाय तो सम्भवतः कुछ अत्युक्ति न होगी। पृथ्वी पर अवतीर्ण होने के क्षण से मृत्युपर्यन्त मानव जोखिमो ही से परिवेष्ठित रहता है। ये जोखिमें विभिन्न प्रकार एवं श्रेणी की हुआ करती हैं। उनके स्वभाव को दृष्टिकोण में रखते हुए उन्हें तीन भागों मे विभक्त कर सकते है :—(१) जिनके परिणाम नगण्य होते है और व्यक्ति उनकी उपेक्षा कर सकता है; (२) जिनके परिणाम नगण्य तो नहीं होते; किन्तु व्यक्ति उन्हे किसी प्रकार सहन कर सकता है; (३) जिनके परिणाम अत्यन्त दारुण होते है और जिन्हे सहन कर सकना व्यक्ति की सामर्थ्य के परे की बात होती है। संक्षेप में इन परिणामों से उसकी कमर टूट जाती है। कुछ उदाहरण लीजिये। मेरी जेब में कुछ रेजगारी थी; उसमें से एक पैसा कही गिर गया। अपनी इस हानि की मैं सरलतापूर्वक अवहेलना कर सकता हूँ। अब मान लीजिये कि मेरी जेब में पाँच रूपये का एक तथा दो-दो रूपये के तीन नोट थे। उनमें से दो रूपये वाला एक नोट खो जाता है। इस हानि का मुझे शोक होना स्वाभाविक ही है और मेरे ध्यान से यह बात शीघ्र उतरेगी भी नही, तथापि यह ऐसी नहीं जो मुझे पंगु कर दे। अब कल्पना कर लीजिये कि मैं कपड़े का एक व्यापारी हूँ ओर मेरी दूकान में आग लग जाती है जिसके फलस्वरूप मेरा सारा माल, कागज़-पत्रादि जलकर भस्म हो जाता है। यह मेरे लिये एक ऐसी हानि होगी जिसके कारण मै कही का न रहूँगा। मेरी जीविका का आधार तथा परिवार के भरण-पोषण का साधन नष्ट

हो जायगा। इस हानि को सहन कर जाना मेरे बूते की बात नही। ये तीन उदाहरण क्रमश: प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी की जोखिमो तथा उनके परिणामो के है। यहाँ पर यह भी स्पष्ट कर देना उचित प्रतीत होता है कि जोखिमो तथा उनके परिणामो को सहन कर सकने की शक्ति सभी व्यक्तियों को समान नही होती। उस शक्ति की विद्यमानता के अनुसार ही व्यक्ति विशेष पर किसी जोखिम के भार का अनुमान लगाया जा सकता है।

इन जोखिमों को एक अन्य प्रकार से भी विभाजित कर सकते है अर्थात् उनके द्रव्य-रूप में परिवर्तित हो सकने अथवा न हो सकने की शक्ति के अनु-सार। कुछ जोखिमो के परिणाम इतने कठोर एवं भयावह होते है कि धन की उच्चतम राशि भी उनके भोक्ता को अणु-मात्र भी सन्तोष नही दे सकती; यथा, किसी निकटतम सम्बन्धी की मृत्यु। इसी प्रकार कुछ जोखिमे ऐसी हो सकती है जिनकी हानि को द्रव्य-रूप में आँक सकते है; जैसे, किसी वस्तु का जल जाना, टूट-फूट कर विकृत हो जाना इत्यादि।

तो, अभी तक हमने देखा कि मनुष्य चारो ओर से जोखिमो तथा सकटों से घिरा है। किन्तु वह एक मस्तिष्कयुक्त बुद्धिमान प्राणी है। अत: जब उसने स्वय को ऐसी विपन्न एव विवश अवस्था मे पाया होगा तब उसके मस्तिष्क मे उनसे त्राण पाने का विचार उदित हुआ होगा। और जैसे-जैसे कालचक्र घूमता गया होगा, उसका उक्त विचार दृढतर होता गया होगा। अन्त में उसने यह विचार कर कि यदि सभी जोखिमो से छुटकारा सम्भव नही तो जिनसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है उनसे ही ली जाय, उनसे पीछा छुड़ाने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया होगा। इस प्रकार का विचार ही 'बीमे का विचार' और इस विचार को कार्यरूप में परिणत करने का प्रयत्न ही 'बीमे का प्रारम्भ' है क्योंकि 'बीमा' (Insurance) शब्द का अर्थ ही होता है 'जोखिम से छुटकारा पाना।'

ऐसी जोखिमें, जिनका परिणाम अथवा हानि द्रव्य रूप मे आँकी जा सकती हैं और साथ ही जो भारी भी होती है, वाणिज्य क्षेत्र में प्रायः दृष्टि-

गोचर होती है। यही कारण है कि सर्वप्रथम बीमा अथवा जोखिम से मुक्ति पाने का प्रयास भी इसी क्षेत्र में प्रचलित हुआ। यह कहना अत्यन्त कठिन है कि वास्तव में बीमे का आरम्भ किस युग में हुआ। किन्तु इतना अवश्य है कि ईसा से चार शताब्दी पूर्व भी भारत, बेबीलन और यूनान में सामुद्रिक तथा स्थलीय व्यापार की जोखिमों के बीमे की प्रथा थी और वह वर्त्तमान-कालीन सामुद्रिक बीमे के बहुत कुछ अनुरूप थी। इस सम्बन्ध में मनुस्मृति में एक श्लोक भी है,‡ जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उस समय भी बीमा किसी न किसी रूप में अवश्य प्रचलित था। उक्त श्लोक के प्रसंग के सहारे यह भी कहा जा सकता है कि सम्भवतः भारत ने ही बीमे को जन्म दिया हो। किन्तु वर्त्तमानकालीन सुव्यवस्थित, विशद एवं सर्वांगपूर्ण बीमा-प्रणाली का बीजारोपण तेरहवी शताब्दी में ही हुआ। यह एक मनोहर बात है कि बीमे का श्रीगणेश सामुद्रिक बीमे से ही हुआ। तेरहवी शताब्दी में वारसीलोनिया अर्थात् स्पेन देश वाणिज्य-क्षेत्र में अग्रणी था। वहाँ के व्यापारी विशाल नौकाओं पर माल लाद कर देश देशान्तरों को जाया करते थे। उन्ही व्यापारियों ने सामुद्रिक जोखिमों से रक्षणार्थ सामुद्रिक-बीमे का आरम्भ किया। उस समय सामुद्रिक यात्राएँ इतनी सरल, सुविधापूर्ण एवं सुरक्षित नहीं थी जितनी कि वर्त्तमान समय में। उस काल में न तो वाष्प-संचालित पोत ही थे, न ध्रुवदर्शक ही और न प्रकाश-स्तम्भो की ही व्यवस्था थी। अतः वे अत्यन्त संकटमय, भयपूर्ण तथा कठिनाइयों से ओत-प्रोत हुआ करती थी। महीनों तक तो जलयानों के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की सूचना प्राप्त नही हुआ करती थी। ऐसी परिस्थिति में, वह व्यक्ति जिसे अपने जहाज की सूचना प्राप्त नहीं होती थी, एक विकट दशा में पड़ जाता था और उसे यह कल्पना कर लेनी पड़ती थी कि सम्भवतः उसका जहाज समुद्र के गर्भ में विलीन हो

‡क्रयविक्रयमध्वानं, भक्तं च सपरिव्ययम्।
योगक्षेमञ्च सम्प्रेक्ष्य वणिजो दापयेत्करान्॥ (मनुस्मृति–सातवाँ अध्याय) १२७

गया। उस समय बहुधा ऐसा हुआ भी करता था कि अधिक समय तक लापता रहने वाले जहाज डूब ही जाते थे।

इस प्रकार की क्षति से बचने के निमित्त क्षेत्र विशेष के व्यापारी एकत्रित होकर परस्पर समझौता कर लिया करते थे कि उस समूह के किसी सदस्य का जहाज यदि डूब जायगा तो वे सब मिलकर उसकी क्षति-पूर्ति कर देंगे। इस क्षति-पूर्ति के हेतु वे एक निश्चित मात्रा में धन देना स्वीकार करते थे। इस प्रकार प्रत्येक सदस्य पारस्परिक सहयोग के द्वारा अपनी पूर्ण हानि प्राप्त कर सकता था। यही बीमे का प्रारम्भिक स्वरूप है।

सामुद्रिक-बीमा प्रारम्भ हो चुकने के पर्याप्त समय के पश्चात् जीवन-बीमा का प्रादुर्भाव हुआ और उसके अनन्तर अग्नि-बीमा का। वर्त्तमान काल म बीमो का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो गया है। प्रायः सभी प्रकार की जोखिमें जो मनुष्य के जीवन में उपस्थित हो सकती है, बीमा की जा सकती ह, जैसे, मोटर दुर्घटना, युद्ध-जनित-संकट, सम्पत्ति-नाश आदि। इनके अतिरिक्त बालकों की शिक्षा, विवाहादि का प्रबन्ध और वृद्धावस्था में निश्चित आय प्राप्त कर सकने की व्यवस्था भी बीमे के द्वारा की जा सकती है।

अध्याय २

बीमे की परिभाषा और उसका कॉन्ट्रैक्ट

अर्थ तथा परिभाषा : विगत अध्याय के वर्णन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बीमा वह प्रणाली है जिसके द्वारा किसी जन-समूह विशेष के प्रत्येक सदस्य के विपत्तिग्रस्त होने से जो हानि उसे होती है, उसे किसी व्यापारिक अथवा आर्थिक आधार पर उस जन-समूह में विभाजित कर दिया जाना है। हम पूर्व ही कह चुके हैं कि प्रत्येक प्रकार की क्षति सहन कर लेना प्रत्येक व्यक्ति के वश की बात नही । अतः वह समाज के अन्य सदस्यों की ओर सहयोग के लिये निहारता है । यही सहयोग का सिद्धान्त बीमा का आधार है। कल्पना कर लीजिये कि किसी कस्बे मे १,००० घर हैं और प्रत्येक की लागत ५,०००) है। सम्भव हो सकता है कि १ तिव वहाँ अग्नि-देव पधार कर दो अथवा तीन घरों को भस्म कर देते रहे हों। इस अनुभव के आधार पर प्रतिवर्ष भविष्य में भी दो-तीन घरों के जलने से १०,०००—१५,००० रुपये की हानि की सम्भावना हो सकती है। किन्तु यह अनुमान कर लेना कि किन घरों में आग लगेगी और किन अभागों पर इस दुर्घटना का भार पड़ेगा, अत्यन्त दुःसाध्य है। ऐसी अवस्था में यदि सभी गृह-स्वामी परस्पर समझौता कर लें कि जब कभी कोई मकान जल जायगा तो उस अग्नि-कांड के फलस्वरूप क्षति को वे परस्पर बाँट लेंगे और वह क्षति जले हुये मकान के मालिक को अकेले ही सहन न करनी पड़ेगी, तो प्रत्येक मकान-मालिक की स्थिति सुविधाजनक हो सकती है। अब यदि आगामी वर्ष उस स्थान के दो घर अनिलदेव की भेंट हो जाते है तो इस हानि को पूर्ण करने के हेतु प्रत्येक गृह-स्वामी को केवल १०) ही देने होंगे। सारांश यह है कि इस प्रकार समय-

समय पर प्रत्येक गृह-स्वामी थोड़ी-थोड़ी रकम देकर अल्प क्षति वहन करता है; किन्तु भविष्य में सम्भावित महती क्षति से उसे सुरक्षा प्राप्त हो जाती है। अतएव बीमा साधारणतः एक साधन है जिसकी सहायता से कोई हानि किसी विशिष्ट जन-समुदाय के मध्य, जिसके प्रत्येक सदस्य पर वह आ सकती है, एक पूर्व निश्चित योजना के अनुसार विभाजित कर दी जाती है।

प्राचीन-काल में ठीक उपर्युक्त आधार पर ही बीमा हुआ करता था। इसे 'सहाय-निर्धारण-बीमा' (Assessment Insurance) कहा जाता था। किन्तु बीमे की इस प्रणाली में अनेक जन्मजात दोष थे। किसी भी व्यक्ति को कितना तथा कितनी बार सहायता (Contribution) दूसरों की क्षतिपूर्ति के लिये देनी होगी, अनिश्चित रहता था। इस प्रकार यह भी अनिश्चित रहता था कि किस समय उसे सहायता देनी होगी। बहुत सम्भव था कि उसे ऐसे समय अपना भाग देने की आवश्यकता पड़ जाय जिस समय उसे स्वयं ही धन की आवश्यकता हो। इन त्रुटियों के कारण इस प्रणाली में कालान्तर में सुधार हुए जिनका परिणाम आधुनिक बीमा प्रणाली है। आधुनिक काल में बीमे का अधिकांश कार्य संयुक्त-पूंजी कम्पनियों (Joint Stock Companies) के हाथ में है। ये कम्पनियाँ अन्य व्यक्तियों का बीमा करते समय, जिस जोखिम का उत्तरदायित्व लेती है, पारस्परिक समझौते से उस जोखिम के परिणाम को द्रव्य-रूप में आँक लेती है। बीमा की गई जोखिम के घटित होने पर वह रकम बीमा कराने वाले को कम्पनी से प्राप्त हो जाती है। इसके विनिमय में कम्पनी उस व्यक्ति से एक साथ अथवा नियत किश्तों में एक निश्चित रकम प्राप्त करती है। इसे प्रीमियम कहते है।

अब आधुनिक कार्य-पद्धति के अनुसार बीमा की परिभाषा निम्नांकित हो सकती है :—

बीमा दो पक्षों के बीच एक कॉन्ट्रैक्ट है जिसके द्वारा एक पक्ष दूसरे पक्ष को किसी विशिष्ट हानि के होने अथवा निश्चित घटना के घटित होने पर, एक निश्चित मुआवजे के बदले में, क्षति-पूर्ति करने का समझौता कर लेता है। जो

मुआवजा क्षति-पूर्ति करने वाला पक्ष प्राप्त करता है, उसे प्रीमियम कहते हैं।

बीमा कॉन्ट्रैक्ट की आवश्यकताएँ : उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान समय में बीमे का आधार कॉन्ट्रैक्ट है। भारतीय कॉन्ट्रैक्ट विधान में कॉन्ट्रैक्ट की परिभाषा यह है—'वे सभी समझौते कॉन्ट्रैक्ट होते हैं जो कॉन्ट्रैक्ट करने योग्य पक्षों के मध्य उनकी स्वेच्छापूर्ण सम्मति से किसी वैधानिक प्रतिफल (Consideration) के निमित्त वैधानिक उद्देश्य से किये गये हों और जिन्हें यहाँ पर स्पष्टतः अवैध घोषित नहीं कर दिया गया है।'‡

इस प्रकार किसी भी वैध कॉन्ट्रैक्ट में अधोलिखित बातों का विद्यमान होना आवश्यक है :—

(१) दोनों पक्षों के बीच समझौता अर्थात् एक पक्ष की ओर से प्रस्ताव हो और दूसरी ओर से उसकी स्वीकृति किसी प्रतिफल के लिये हो।

(२) समझौता करने वाले पक्ष कॉन्ट्रैक्ट करने योग्य हों अर्थात्, न तो नाबालिग़ अथवा पागल हों और न किसी अन्य कारण से कॉन्ट्रैक्ट करने के अयोग्य ठहरा दिये गये हों।

(३) समझौते के प्रति दी गई सम्मति स्वेच्छापूर्ण हो।

(४) जिस प्रतिफल (Consideration) के लिये समझौता किया जाय वह वैधानिक हो।

(५) जिस उद्देश्य से समझौता किया जाय वह वैधानिक हो।

(६) समझौता ऐसा न हो जिसे कॉन्ट्रैक्ट विधान में अवैध घोषित कर दिया गया है।

भारतीय कॉन्ट्रैक्ट विधान म कॉन्ट्रैक्ट की दी हुई परिभाषा अक्षरशः बीमा कॉन्ट्रक्टों पर लागू होती है। साथ ही कुछ अन्य बातें भी उनके लिये आवश्यक हैं जो साधारण वाणिज्य-कॉन्ट्रैक्टों में प्रायः आवश्यक नहीं होतीं, निम्नांकित हैं :—

---

‡भारतीय कॉन्ट्रैक्ट–विधान-धारा १०

१—मूलभूत-तथ्यों (Material Facts) का प्रदर्शन : बीमे के कॉन्ट्रैक्ट करने वाले पक्षों के मध्य एक 'पूर्ण विश्वास' (Absolute Good Faith) का कॉन्ट्रैक्ट होता है। इसका अर्थ यह है कि दोनों पक्ष के लिए परस्पर पूर्ण विश्वास तथा ईमानदारी का व्यवहार करना अनिवार्य है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उन्हे किसी भी मूल-भूत-तथ्य को एक दूसरे से गुप्त नहीं रखना चाहिये। मूलभूत-तथ्य (Material Fact) वह सत्य अथवा परिस्थिति होती है जिससे अभिज्ञ होने पर दोनों पक्षों में से किसी पक्ष के कॉन्ट्रैक्ट की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति का निराकरण होता है। इस प्रकार की किसी परिस्थिति अथवा सत्य को गुप्त रखने का परिणाम यह होता है कि जिस पक्ष से कोई बात छिपाई गई है उसे, अधिकार मिल जाता है कि यदि वह चाहे तो उस कॉन्ट्रैक्ट को रद्द कर दे अथवा उसमें नवीन शर्तें जोड़ दे अथवा पुरानी शर्तों में कुछ परिवर्तन कर दे। प्रायः मूलभूत-तथ्यों के प्रदर्शन का भार अधिकांश में उसी पक्ष पर होता है जो बीमा कराता है; क्योंकि जिस जोखिम का बीमा कराने का वह इच्छुक होता है, उसके विषय में उससे अधिक ज्ञान अन्य किसी व्यक्ति का नहीं हो सकता। यदि किसी मूलभूत-तथ्य को वह यह समझ कर कि वह मूलभूत नहीं है, पहले ज़ाहिर नहीं कर देता और पीछे से वह तथ्य मूलभूत सिद्ध होता है, अथवा, अनजाने अथवा उपेक्षा से गुप्त रक्खे हुए तथ्यों का वही प्रभाव होता है जो जानबूझ कर छिपा रखने का होता है।

२—बीमा-योग्य-हित की विद्यमानता : बीमा कान्ट्रैक्ट को वैध बनाने के हेतु बीमा-योग्य-हित की विद्यमानता भी अनिवार्य है। इससे रहित होने पर बीमा कॉन्ट्रैक्ट अवैध (Illegal) हो जाता है और एक प्रकार से जुए का रूप धारण कर लेता है। बीमा-योग्य-हित का अर्थ होता है कि बीमा कराने वाले व्यक्ति का उस विषय में, जिसके जोखिम का वह बीमा कराना चाहता है, आर्थिक स्वार्थ है। अथवा, यह कहना चाहिए कि बीमा कराने वाले को उस वस्तु के नष्ट हो जाने पर आर्थिक हानि

और सुरक्षित रहने पर आर्थिक लाभ होगा। यहाँ पर यह उल्लेख कर देना सम्भवतः अनुचित न होगा कि सभी प्रकार के बीमा कॉन्ट्रैक्टो में एक ही समय पर बीमा-योग्य-हित (Insurable Interest) की विद्यमानता आवश्यक नही होती। उदाहरणार्थ, जीवन-बीमे में किसी व्यक्ति का बीमा कराते समय उपर्युक्त हित का होना अति आवश्यक है। सामुद्रिक-बीमे में बीमा कराते समय उपर्युक्त हित का होना तनिक भी आवश्यक नही; किन्तु क्षति-पूर्ति का दावा करने समय उसकी उपस्थिति अनिवार्य है। इसी प्रकार अग्नि-बीमा के विषय में बीमा कराते समय तथा क्षति-पूर्ति का दावा करने समय, दोनो अवसरों पर, बीमा-योग्य-हित की विद्यमानता आवश्यक होती है।

३––साधारण शर्तों (Warranties) की पूर्ति : साधारण वाणिज्य कॉन्ट्रैक्टो में तो साधारण शर्तों का महत्व केवल इतना ही होता है कि यदि दोनो पक्षो में से कोई पक्ष उन्हे भग करता है, तो दूसरे पक्ष को दोषी पक्ष से क्षति-पूर्ति प्राप्त कर सकने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इन कॉन्ट्रैक्टो मे साधारण शर्तों के भग करने का परिणाम कॉन्ट्रैक्ट का रद हो जाना नही हो सकता। किन्तु बीमा कॉन्ट्रैक्टो में, इसके पूर्णतः विपरीत होता है अर्थात् यदि कोई पक्ष किसी साधारण शर्त को भग करता है अथवा उसका पालन नहीं करता तो उसका परिणाम दोषी-पक्ष से क्षति-पूर्ति का केवल दावा ही नही होगा, वरन् यदि निर्दोष पक्ष चाहे तो उस बीमे के कॉन्ट्रैक्ट को रद भी कर सकता है।

ये साधारण शर्तें दो प्रकार की हो सकती है –(१) प्रत्यक्ष (Expressed) (२) अप्रत्यक्ष (Implied)

प्रत्यक्ष साधारण शर्त : वे है जो बीमे की पालिसी में ही स्पष्टतः अंकित रहती है; यथा, सामुद्रिक बीमा में किसी निश्चित सीमा के अन्दर यात्रा करने का निषेध।

अप्रत्यक्ष साधारण शर्तें : वे है जो स्वयं बीमे की पालिसी में तो निहित

नही रहतीं, किन्तु बीमा पालिसियों में लागू समझी जाती है; यथा, समुद्री-बीमे में जहाज का समुद्र-यात्रा के योग्य होना।

बीमा कान्ट्रैक्ट के रूप : हम देख चुके है कि बीमा दो पक्षों के बीच कॉन्ट्रैक्ट होता है, जिसके आधार पर एक पक्ष दूसरे पक्ष की क्षतिपूर्ति का दायित्व, कुछ निश्चित मुआविजे के बदले में, अपने ऊपर ले लेता है। इस तत्व को दृष्टिकोण में रखते हुए बीमे को क्षति-पूरक कॉन्ट्रैक्ट (Contract of Indemnity) कह सकते है। किन्तु सभी बीमे क्षति-पूरक कॉन्ट्रैक्ट नही होते। अत उनको दो भागों मे विभाजित कर सकते है :—

(१) क्षति-पूरक-बीमा-कॉन्ट्रैक्ट, (२) जीवन-बीमा-कॉन्ट्रैक्ट।

क्षतिपूरक बीमा कॉन्ट्रैक्ट : जीवन-बीमे (जिसके अन्तर्गत 'जीवन' 'वैयक्तिक दुर्घटना' तथा 'स्वास्थ्य-बीमे' भी आ जाते है) के अतिरिक्त हर प्रकार के बीमे क्षतिपूरक कॉन्ट्रैक्ट होते हैं। इन क्षति-पूरक बीमो में सामुद्रिक तथा अग्नि-बीमे मुख्य है।

क्षतिपूरक कॉन्ट्रैक्टो में, बीमा करने वाले (बीमा-कम्पनी) तथा बीमा कराने वाले पक्षो में एक कॉन्ट्रैक्ट हो जाता है, कि जब कभी बीमा कराने वाले को किसी निश्चित दुर्घटना अथवा जोखिम से क्षति होगी, बीमा कम्पनी बीमे की शर्तों (Terms) के अनुसार उसकी हानि-पूर्ति कर देगी। किन्तु बीमा-कम्पनी , बीमा कराने वाले को हानि होने पर और उसकी पूर्ति का दावा करने पर, केवल वास्तविक हानि ही की पूर्ति करेगी। कल्पना कर लीजिये कि किसी व्यक्ति 'अ' ने अपने घर का २०,०००) का अग्नि के विरुद्ध बीमा कराया। अब यदि बीमे की अवधि के भीतर ही मकान में आग लग जाने के कारण उसे १,०००) की क्षति हो जाती है तो ऐसी स्थिति में 'अ' बीमा-कम्पनी से अपनी वास्तविक क्षति अर्थात् १,०००) ही प्राप्त कर सकता है, क्योंकि उसे केवल इतनी ही हानि वास्तव में हुई है।

जीवन-बीमा कॉन्ट्रैक्ट : जैसा कि पहले ही लिख चुके है, जीवन-बीमे के

अन्तर्गत वैयक्तिक-दुर्घटना तथा स्वास्थ्य-बीमे भी आ जाते हैं। जीवन बीमे सामुद्रिक तथा अग्नि आदि क्षति-पूरक बीमों से, पूर्णतया भिन्न होते हैं; क्योंकि यह क्षति-पूरक स्वभाव के नही हो सकते। इसका कारण यह है कि किसी जीवन की हानि से किसी को कितनी आर्थिक क्षति पहुँचेगी, इसका अनुमान कर सकना सम्भव नही। किसी लेखक के शब्दों में 'मानव-जीवन का मूल्य रूपयों में नही आँका जा सकता।' भला यह कौन कह सकता है कि एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के लिये क्या मूल्य और क्या महत्व है। स्पष्टत:, इस हानि की पूर्ति धन का असीम-कोष भी नही कर सकता। भले ही वह किसी न्यूनतम अंश में क्षति-ग्रस्त व्यक्ति को तनिक ढाढ़स दे सके। अत: जीवन-बीमे में बीमा-कम्पनी को बीमे की पूरी रकम देनी होती है। उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति ने २०,०००) का अपने जीवन का बीमा कराया है। उसकी मृत्यु से उसके आश्रितों को कितनी क्षति होगी, इसका अनुमान कोई नही लगा सकता। अस्तु, उसके आश्रितों को बीमा का पूर्ण धन बीमा कम्पनी से प्राप्त हो जायगा।

अध्याय ३

बीमा-व्यवसाय का संगठन और प्रकार

संगठन

बीमा-व्यवसाय विभिन्न प्रकार के व्यवसाय-गृहों द्वारा किया जाता है। उनके संगठन के दृष्टिकोण से उनके निम्नांकित भेद हो सकते हैं :—

१. संयुक्त-पूँजी-कम्पनियाँ (Joint-stock Companies.) इन कम्पनियों का संगठन अन्य संयुक्त-पुजी-कम्पनियों के समान ही किया जाता ह। इनकी पूजी कोई एक व्यक्ति नही लगाता, वरन् वह अनेक हिस्सों में विभाजित कर दी जाती है और उन हिस्सों के क्रयकर्त्ता कम्पनी के स्वामी होते हैं। स्वामी होने के कारण कम्पनी के बीमा-व्यवसाय से जो लाभ होता है, उस पर उनका अधिकार होता है। व्यवस्था-कार्य पूर्णतः हिस्सेदारों के अधीन रहता है। किन्तु अधिक संख्या में होने के कारण वे स्वयं उसका भार सँभालने में असमर्थ होते हैं। अतः वे अपने में से कुछ व्यक्तियो को निर्वाचित करके व्यवस्था-कार्य उन्हें सौंप देते हैं। वे व्यक्ति परस्पर मिलकर कम्पनी का प्रबन्ध एवं संचालन करते हैं। इनमें से प्रत्येक को डायरेक्टर और सबको मिलाकर डायरेक्टर-समिति (Board of Directors) कहते हैं। बीमा कराने वालों का ऐसी कम्पनियों के साथ वही सम्बन्ध रहता है जो क्रेता तथा विक्रेता के मध्य हुआ करता है—बीमा कराने वाले कम्पनियों से बीमा के द्वारा किसी जोखिम विशेष से सुरक्षा क्रय करते हैं, तथा कम्पनियाँ उस

सुरक्षा को उनके हाथ विक्रय करती है। अतः, बीमा कराने वालों का समुदाय कम्पनी से बिल्कुल भिन्न होता है।

संयुक्त-पूजी-कम्पनियों का कार्य बड़े सुचारुपूर्ण ढंग से चलता है। संचालकों को सदैव इस बात का ध्यान रहता है कि हर प्रकार से संचालन-व्यय में कमी की जाय ताकि कम्पनी को बीमा-विक्रय-मूल्य (Premium) अन्य संस्थाओं की अपेक्षा बढानी न पड़े। इस संगठन में व्यवसाय बड़े पैमानें पर होने के कारण कम्पनियों के पास पर्याप्त आँकड़े (Statistics) एकत्रित हो जाते हैं जिनके आधार पर वे अपने भावी दायित्व का उचित अंशों में परिशुद्ध आगणन कर सकती हैं। बीमितों (Insured) को भी संतोष रहता है, क्योंकि ऐसी कम्पनियों के पास एक बड़ी पूजी तथा संचित-कोष (Reserve Fund) रहता है जो उनके लिये एक प्रकार की गारण्टी का काम करता है और उन्हें विश्वास रहता है कि जब कभी दावे खड़े होंगे तो कम्पनी उनको सरलतापूर्वक चुका देगी।

पहले डायरेक्टर-समिति में बीमितों का कोई प्रतिनिधित्व नही रहता था जिसके कारण उन्हे कुछ असुविधाएँ होती थी। परन्तु अब जीवन-बीमा के क्षेत्र में इस सम्बन्ध मे उन्हे सुविधा प्राप्त हो गई है। इण्डियन इन्श्योरेन्स ऐक्ट की धारा ४८ के अनुसार डायरेक्टर-समिति में। कुल डायरेक्टरों के चौथाई डायरेक्टर बीमितों द्वारा ही चुने जाते है। इस प्रकार अब बीमित भी कम्पनी के संचालन कार्य मे हाथ बटाते है। आजकल प्रायः लाभ का ९० प्रतिशत बीमितों ही में वितरित हो जाता है और केवल १० प्रतिशत लाभांश हिस्सेदारों (Share Holders) के हाथ आता है।

२. पारस्परिक-कम्पनियाँ (Mutual Associations) : इस कोटि की कम्पनियों के स्वामी स्वयं बीमित (Insured) ही होते है और वे ही उनकी व्यवस्था भी करते है। ऐसी कम्पनियों का उद्देश्य बीमा व्यवसाय द्वारा लाभ-अर्जन नही होता—वे बीमितों के हितार्थ ही स्थापित की जाती हैं। अतः, जो कुछ भी लाभ होता है वह कम्पनी के सदस्यों के मध्य ही विभक्त

मिश्रित इन्हें इसलिये कहा जाता है कि इनमें उपर्युक्त दोनों प्रकार की कम्पनियों की विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं। आजकल संयुक्त-पूंजी-कम्पनियाँ प्रायः दो कार की बीमा-पालिसी निकालती है—लाभ-सहित तथा लाभ-रहित। लाभ सहित पालिसी लेने वाले व्यक्तियों को कम्पनी के स्वामियों के साथ-साथ लाभ में हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार होता है। इन दिनो संयुक्त-पूंजी-कम्पनियाँ अपने लाभ का अधिकांश भाग—कभी-कभी ९० प्रतिशत तक—बीमा कराने वालों के मध्य ही विभाजित कर देती है। हिस्सेदारों को अल्पतम लाभ दिया जाता है। यह प्रथा दिन प्रतिदिन वृद्धि कर रही है। इसी प्रकार पारस्परिकबीमा कम्पनियाँ लाभ-रहित बीमा पालिसी निकाल सकती हैं। इस प्रकार की पालिसी लेने वाले व्यक्ति लाभ में हिस्सा बाँटने के अधिकारी नही होते। लाभ-सहित पालिसियाँ जीवन-बीमा में ही मिल सकती हैं।

४. आश्वासक संघ (Underwriters Association) : ये एक विशेष प्रकार की बीमा-समितियाँ होती हैं जो विशेषकर सामुद्रिक-बीमे के क्षेत्र में ही पाई जाती हैं। इनकी कार्य-प्रणाली तथा संगठन अन्य बीमा-व्यवसाय-गृहों से पूर्णतः भिन्न होते हैं। ऐसे व्यक्ति जो बीमा करने के काम में रुचि रखते हैं, परस्पर मिलकर एक परिषद् बना लेते हैं। जब कोई बीमा कराने वाला इस परिषद् के पास जाता है तब परिषद् के विभिन्न सदस्य उस बीमा की जोखिम को परस्पर अपनी इच्छानुसार बाँट लेते हैं। इस प्रकार वे पूरे दायित्व के भाग कर लेते हैं और दायित्व-भार लेने वाला प्रत्येक सदस्य केवल अपने भाग के लिये ही, जिसे वह पालिसी पर लिख देता है, दायी समझा जाता है। मान लीजिये कि कोई व्यक्ति 'अ' किसी ऐसी परिषद् के पास २०,०००) की पालिसी लेने के लिये जाता है। परिषद् के दस सदस्य उसको स्वीकार करके समान रूप से अपने ऊपर उसका दायित्व ले लेते हैं और उसको पालिसी पर अंकित कर देते हैं। अब हानि होने पर उन दसों सदस्यों में से प्रत्येक केवल २,०००) के लिये उत्तरदायी होगा।

जो व्यक्ति ऐसी परिषद् के सदस्य होने के लिये प्रार्थी होते है, उनको एक भारी रकम जमानत के रूप में परिषद् के पास जमा कर देनी पड़ती है— जिसमे यदि किसी समय वे हानि होने पर उसे पूरा करने में असमर्थ हों तो परिषद् उनकी ओर से उसे पूरा कर सके। इस श्रेणी के आश्वासक-संघों का सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण इंग्लैण्ड की लायड्स-संघ (Lloyds Association) है जिसकी शाखाएं संसार भर मे प्रसरित है।‡

५. सरकारी-बीमा (State Insurance) : जब बीमे का कार्य सरकार स्वय ही करती है, तो वह सरकारी-बीमा कहलाता है। किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि सरकार उसी प्रकार बीमा-व्यवसाय चलाती है जिस प्रकार साधारण बीमा-कम्पनियाँ। सभी प्रकार के बीमे सरकार नही करती; क्योंकि ऐसा करने से पूजी-प्रधान-अर्थ-प्रणाली मे गम्भीर हस्तक्षेप होने की सम्भावना होती है जिसे पूजी-पति सहन नही कर सकते। सरकार कतिपय प्रकार के ही बीमे, जो सामाजिक-बीमे (Social Insurance) के अन्तर्गत आते है, करती है। सरकारी बीमे का प्रचार अभी बहुत प्राचीन नही है, कुछ ही देशो में यह दृष्टिगोचर होता है। भारत में डाक व तार के कर्मचारियों के जीवन का बीमा सरकार स्वय करती है और ऐसे बीमे की दर साधारण बीमा कम्पनियों के प्रीमियम की तुलना मे न्यून होती है। ऐसा बीमा, पोस्ट आफिसो द्वारा होता है और इसी कारण इसे 'पोस्टल-इन्श्योरेन्स' कहते है। इनके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों तथा सरकारी सहायता पाने वाले शिक्षण-संस्थाओं के कर्मचारी भी डाकखानों से बीमा करा सकते है। १९४५ के मार्च तक इस प्रणाली में बीमितों की सख्या ९२,९६० थी, जीवन-कोष (Life Fund) लगभग १०८० करोड़ था और कुल पालिसियों की रकम लगभग १९ करोड़ की थी।

‡विशेष वर्णन के लिये भाग ३ अध्याय १६ पृष्ठ १६८ पर देखिये।

६. स्वगत-बीमा (Self Insurance) : यह भी हो सकता है कि दूसरों से बीमा कराने के स्थान पर कोई मनुष्य स्वयं ही उस जोखिम का बीमा कर ले जिसका बीमा वह दूसरों से कराना चाहता है। यह इस प्रकार सम्भव हो सकता है कि जितना धन प्रीमियम के रूप में समय-समय पर वह किसी बीमा-कम्पनी को देता, एक पृथक् कोष में संचय करता चले और जब वह जोखिम उपस्थित हो जाय तब उस सचित द्रव्य से अपनी क्षतिपूर्ति कर ले। संक्षेप में यही स्वगत-बीमा है। यदि किसी जहाजी-कम्पनी के पास बहुत से जहाज है तो उसे उनके बीमे के लिये प्रति वर्ष पर्याप्त धन उनके बीमे के प्रीमियम के रूप में देना होगा। इस धन को वह कम्पनी स्वयं ही एकत्रित करती रहे और जिस जोखिम के रक्षार्थ वह बीमा कराना चाहती है, उसके उपस्थित होने पर परिणामस्वरूप क्षति को उस एकत्रित धन से पूरा कर ले।

बीमे के प्रकार : वैसे तो वर्तमान समय में भाँति-भाँति के बीमे प्रचलित है और प्रति दिन इस क्षेत्र में नूतन आविष्कार हुआ करते है, तथापि जीवन, सामुद्रिक तथा अग्नि बीमे ही उसके प्रधान भेद है।

अ—जीवन-बीमा : बीमा संसार में, जीवन-बीमा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। हमारे देश में अनेक कम्पनियाँ है जो केवल जीवन-बीमे से ही सम्बन्ध रखती है तथा अन्य किसी प्रकार के बीमे नही करतीं। इंगलैंड में ऐसा तो नही है, तथापि ८० प्रतिशत के लगभग बीमा-व्यवसाय जीवन से ही संयुत रहता है। कोई व्यक्ति दो उद्देश्यो से अपने जीवन का बीमा कराता है। उनमें से एक तो यह हो सकता है कि जब वह वृद्ध हो जायगा, उसके अंग-अंग शिथिल एवं निर्बल हो जायगे और वह अपनी जीविका तथा अपने आश्रितो के भरण-पोषण के निमित्त यथेष्ठ धन अर्जन न कर सकेगा, उस समय के लिये कुछ प्रबन्ध कर लेना, जिससे भविष्य में उसे तथा उसके आश्रितों को संकटों तथा विपत्तियों का सामना न करना पड़े। सम्भव है कि उसकी मृत्यु अपने आश्रितों के जीवन यापनार्थ कुछ धन संचय कर सकने के पूर्व ही हो जाय

उस दशा में उसके कुटुम्बियों को अनिवार्यतः कष्ट झेलने पड़ेंगे। अतः अपने जीवन का बीमा कराकर उस भावी आपदा से अपने आश्रितों को मुक्त कर लेना दूसरा उद्देश्य हो सकता है। इसी प्रकार जीवन-बीमा से और भी अनेक व्यावसायिक तथा आर्थिक लाभ होते हैं जिन पर विस्तार रूप में पुस्तक के द्वितीय भाग में विचार किया गया है। जीवन-बीमा-पालिसियों में प्रायः यह दिया रहता है कि बीमा की गई धन-राशि या तो मृत्यु होने पर, अथवा कुछ परिस्थितियों में निश्चित अवस्था की प्राप्ति पर, जो भी शीघ्रतर हो, अवश्य मिल जायगी। किसी भी जीवन का, जिसमें बीमा कराने वाले व्यक्ति का हित है, वह बीमा करा सकता है।

ब—सामुद्रिक-बीमा : महत्व के दृष्टि-कोण से सामुद्रिक बीमे का दूसरा स्थान है। समुद्रों पर चलने वाले जहाजों को सदैव ही अनेकों प्रकार की जोखिमें लगी रहती हैं, जैसे, मार्ग में एक जहाज की दूसरे जहाज से भिड़न्त हो सकती है, किसी में आग लग सकती है, समुद्री-डाकू उन्हें लूट सकते हैं अथवा उनका अपहरण कर सकते हैं, इत्यादि। यदि इस प्रकार कोई दुर्घटना हो जाती है, तो इसका अर्थ भारी हानि ही हो सकता है। जहाजों की इतनी महती क्षति को उनके स्वामी सहन नहीं कर सकते और इसका परिणाम होगा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का पतन, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय-व्यापार लगभग सम्पूर्णतः समुद्र द्वारा ही होता है। अस्तु, सामुद्रिक-बीमे व्यापार के दृष्टिकोण से बड़े मूल्यवान् हैं। सम्भवतः यही कारण है कि सर्व प्रथम इन्हीं का आविष्कार हुआ, जैसा कि पिछले अध्याय में कहा जा चुका है।

स—अग्नि-बीमा : अग्नि-बीमे, बीमा रूपी शरीर का तीसरा महत्वपूर्ण अंग बनाते हैं। वास्तव में अग्नि से प्रतिवर्ष कितनी हानि होती है, इसका अनुमान नितान्त दुर्लभ है। तथापि, यदि हम विभिन्न देशों के अग्निकांडों से क्षति के आँकड़ों का अवलोकन करें, तो अवश्य ही हमारे नेत्र विस्मय से विस्फारित रह जायंगे। फिर इन आँकडों में छोटे-छोटे अग्निकांडों की क्षति का तो

कोई उल्लेख ही नहीं रहता। संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अग्नि से मानव-जाति की प्रतिवर्ष अपार हानि होती है । इस प्रकार की हानि से अग्नि-बीमा की शरण लेकर त्राण मिल सकता है। हम अपने आवासों, उद्योग-गृहों, व्यवसाय-गृहों आदि का अग्नि-बीमा करा सकते हैं।

उपर्युक्त तीन प्रकार के बीमों के अतिरिक्त अनेक अन्य प्रकार के बीमे भी किये जाते हैं जिनमें से कुछ का वर्णन नीचे किया जाता है ।

८—सामाजिक-बीमा (Social Insurance) : यह एक प्रकार का औद्योगिक-बीमा है जिसका उद्देश्य कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों का हित-साधन होता है। चूंकि, इस प्रकार का बीमा समाज के किसी वर्ग विशेष के हितार्थ होता है और वर्ग के हित से अन्त में समाज का भी हित होता है, इसे सामाजिक-बीमा का नाम दिया गया है। यह एक नवीन बीमाप्रणाली है जिसका जन्म सर्वप्रथम इंगलैंड में हुआ था। अभी संसार के अनेक देशों में इसका प्रचार नही हुआ है। सामाजिक-बीमे के विभिन्न रूप हो सकते हैं। उनमें से कतिपय का नीचे उल्लेख किया जाता है :—

निरुद्यम-बीमा : इसके द्वारा बेकार व्यक्ति को बेकारी के समय में एक निश्चित आय प्राप्त होती रहती है।

मातृत्व-बीमा : इसके द्वारा माता बनने वाली नारी-श्रमिकों के शिशु-जन्म के कुछ समय पूर्व से कुछ समय पश्चात् तक उनके कार्य-काल की क्षति-पूर्ति के रूप में कुछ मुआविजा मिलता है।

रोगावस्था का बीमा : इसके अन्तर्गत रोगी को उसकी रोगावस्था की अवधि में उपचार तथा निर्वाह का व्यय प्राप्त होता रहता है।

पेन्शन का बीमा : इस प्रकार के बीमे के अन्तर्गत विश्राम-प्राप्त वृद्धों, किसी कारणवश कार्यायोग्य व्यक्तियों अथवा किसी प्रतिपालक की मृत्यु के पश्चात् उसके आश्रितों को, भरण-पोषणार्थ धन उपलब्ध होता रहता है।

श्रमिकों की क्षति-पूर्ति का बीमा : यह कारखानों में काम करने

वाले श्रमिकों के हितार्थ होता है। इसका उद्देश्य, काम करते समय यदि उन्हें किसी प्रकार की हानि–अंग-भंग होना, मृत्यु हो जाना आदि–हो जाय, तो उसकी क्षति-पूर्ति, किया जाना होता है।

सामाजिक-बीमे की सर्व-प्रधान विशेषता यही होती है कि बीमे के प्रीमियम का पूर्ण भार केवल उसी व्यक्ति के कन्धों पर नही पड़ता, जो बीमा कराता है अथवा जिसके लिये बीमा कराया जाता है, वरन् अन्य व्यक्तियो को भी उसका कुछ अंश वहन करना होता है। उदाहरणार्थ श्रमिकों की क्षति-पूर्ति के बीमे में केवल श्रमिकों अथवा मालिकों को ही नही प्रत्युत सरकार भी उनके प्रीमियम का कुछ भाग देती है।

य–वैयक्तिक दुर्घटना-बीमा : इस प्रकार के बीमा कॉन्ट्रैक्टों के अन्तर्गत यदि बीमा कराने वाले की बीमा की गई दुर्घटना के द्वारा मृत्यु हो जाती है, तो उसके उत्तराधिकारियों को बीमा-पत्र में अंकित पूरी रकम मिल जाती है। किन्तु यदि उस दुर्घटना के परिणामस्वरूप बीमा कराने वाले की पूर्णत: अथवा आशिक अंग-क्षति हो जाती है अथवा वह कार्याक्षम हो जाता है, तो उस दशा में उसे बीमा-पत्र में अंकित रकम से कुछ न्यून धन बीमा कम्पनी देती है। पर साथ ही, वह उसे कुछ साप्ताहिक निर्वाह-व्यय भी उस समय तक देती रहती है, जब तक कि वह पुन: अपना साधारण उद्योग करने के योग्य नही हो जाता। इस प्रकार दुर्घटना-बीमे का कॉन्ट्रैक्ट एक क्षति-पूरक कॉन्ट्रैक्ट नही होता क्योकि, इसमें एक पूर्व निश्चित घटना के घटित होने पर एक निश्चित रकम बीमा कराने वाले को प्राप्त हो जाती है। तात्पर्य यह है कि बीमा कम्पनी क्षति-पूरक बीमा कॉन्ट्रैक्टों के समान बीमा कराने वाले के किसी अन्य-पक्ष (Third Party) के विरुद्ध दावे का लाभ नहीं उठा सकती।

र–अन्य व्यक्तियों के प्रतिदायित्व का बीमा (Insurance Against liability to Third persons) : बीमा करने वाली कम्पनी

जब कभी इस प्रकार का बीमा करती है, तब इसका अर्थ यह होता है कि वह बीमा कराने वाले व्यक्ति को उस दशा में उतना धन देगी जितने का दायित्व उसके ऊपर किसी अन्य व्यक्ति के सम्बन्ध में आता है । उदाहरणार्थ मिलों में श्रमिक काम करते हैं । यदि काम करते समय उन्हें किसी प्रकार की क्षति पहुँचती है तो श्रमिकों की क्षति-पूर्ति-विधान (Workman's Compensation Act) के अन्तर्गत मिल-मालिको का यह दायित्व होता है कि वे इस क्षति की पूर्ति करें । मिल-मालिक इस क्षति-पूर्ति के दायित्व का बीमा करा सकते हे । ऐसे बीमे के अन्तर्गत बीमा कम्पनी बीमा कराने वाले के वैधानिक कार्यों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न दायित्व के लिये ही जिम्मेदार होगी । दायित्व-बीमे, जोखिम के प्रकार के अनुसार कई भाँति के हो सकते है । उनमें से मोटर तथा मिल-मालिकों के दायित्व के बीमे मुख्य हैं । मोटर - बीमे के द्वारा मोटर का स्वामी अपने उस दायित्व की सुरक्षा करा लेता है जो गाड़ी को राजपथ पर उपयोग करते समय किसी अन्य पक्ष (Third Party) के प्रति दुर्घटना के फलस्वरूप क्षति पहुँचने से उत्पन्न हो सकती है । मिल-मालिकों के दायित्व के विषय में हम पहले ही वर्णन कर चुके है ।

ल—गारन्टी-बीमा : इस भाँति की बीमा पालिसी के द्वारा कोई व्यक्ति स्वयं को अन्य पक्ष (Third Party) द्वारा किये जाने वाली अवहेलना, दुर्व्यवहार, धोखा, कार्य-अपूर्णता आदि की जोखिमों से सुरक्षित कर सकता है । गारन्टी-बीमे प्रायः दो प्रकार के होते हे : (१) विश्वस्ता-गारन्टी बीमे, (२) वाणिज्य-गारन्टी बीमे ।

विश्वस्ता-गारन्टी बीमे (Fidelity Guarantee Insurance) : ऐसे बीमे के द्वारा बीमा कम्पनी और बीमा कराने वाले के मध्य समझौता हो जाता है कि यदि किसी अन्य पक्ष (Third Party)—सेवक, एजेन्ट आदि की बेईमानी, विश्वासघात, अथवा धोखे के कारण बीमा कराने वाले को हानि होगी, तो बीमा-कम्पनी बीमा की रकम उसे देकर उस क्षति की पूर्ति करेगी । विश्वस्ता-गारन्टी बीमे अधिकतर निश्चित अवधि के लिये किये जाते हैं ।

वाणिज्य-गारन्टी बीमे (Commercial Insurance) : इसके द्वारा बीमा कम्पनी किसी अन्य पक्ष (Third Party) द्वारा कोई कॉन्ट्रैक्ट भंग किये जाने के फलस्वरूप बीमा कराने वाले की हानि को पूरा करने का दायित्व अपने ऊपर लेती है। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने पर बीमा कराने वाला अपनी क्षति की पूर्ति बीमा-कम्पनी से करा सकता है। ये वाणिज्य-गारन्टी बीमे तीन प्रकार के होते हैं :—

कॉन्ट्रैक्ट-बीमा : ऐसे बीमे की पालिसी को क्षति-पूरक-दस्तावेज (Indemnity Bond) भी कहते हैं। बैंक वाले, गोदामों के मालिक, ठेकेदार, सार्वजनिक-वाहकों के स्वामी इन्हें प्रायः लेते हैं।

उधार का बीमा (Credit Insurance) : इस श्रेणी के बीमों के अन्तर्गत बीमा कम्पनी बीमा कराने वाले की उस हानि को निर्धारित सीमा तक पूरा करने का दायित्व ग्रहण करती है जो अन्य पक्षों (Third Parties —यहाँ पर ऋणियों से तात्पर्य है) के दिवालिया हो जाने से उसे हो सकती है। इसे **'साख का बीमा'** भी कहते हैं।

अधिकार बीमा (Title Insurance) : इसके द्वारा कोई भी व्यक्ति स्वयं को पालिसी में निर्धारित रकम की सीमा तक उस हानि से सुरक्षित कर सकता है जो उसे किसी अचल-सम्पत्ति के खरीदार अथवा पट्टेदार की हैसियत में दोष होने के कारण हो सकती है।

अन्य प्रकार के बीमे : पिछली पंक्तियों में उल्लिखित बीमों के कुछ महत्वपूर्ण रूप हैं। अन्यथा इस भूतल पर स्यात् ही कतिपय जोखिमें हों, जिनका बीमा, बीमा-कम्पनियाँ आज न करती हों। वायुयान-यात्रा, व्यवसाय-लाभ, जहाज, मोटर, मकान, उपलवृष्टि आदि के बीमे तो अब साधारण-सी बातें हैं। अभिनेत्रियाँ अपने अभिनय का, नर्तकियाँ नृत्य के प्रधान आधार पैरों (एक पैर तथा आधे पैर का भी), कोकिल-कण्ठी अपने मधुर कण्ठ का बीमा बड़ी सरलतापूर्वक करा लेती हैं।

अध्याय ४

विविध

क्या बीमा अर्थोत्पादक है ?

सभी आर्थिक-कार्य (Economic Activities) अर्थोत्पादक होते हैं। बीमा भी अर्थोत्पादक है अथवा नहीं, यह जानने के लिये यह जानना आवश्यक होगा कि वह आर्थिक-कार्य है अथवा नही। आर्थिक-कार्य का अर्थ होता है 'वह कार्य जिसके सम्पादन से मनुष्य को सन्तोष (Satisfaction) प्राप्त हो अर्थात् उसकी किसी आवश्यकता की पूर्ति हो जिसके मूल्य को हम धन में नाप सकें।' इस तथ्य को दृष्टिकोण में रखते हुये यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि बीमा भी एक अर्थोत्पादक (Productive) कार्य है। क्योंकि बीमा कराकर सुरक्षा प्राप्त करने से जो सन्तोष प्राप्त होता है वह एक आर्थिक लाभ है। व्यवसाय-कार्यों में बीमे से महान् सुविधाएँ प्राप्त होती हैं; क्योंकि सम्भावित क्षति से, जिनके कारण उनका अस्तित्व भी लुप्त हो सकता है, सुरक्षा प्राप्त हो जाती है। अतः बीमा स्पष्टतः एक अति महत्वपूर्ण भौतिक एवं सामाजिक लाभ है। अप्रत्यक्ष रूप से समाज को यह लाभ होता है कि उसके सदस्य-विशेष की हानि अनेक सदस्यों के मध्य विभक्त हो जाती है। फलतः उसका भार नगण्य हो जाता है। साथ ही लोगों में मितव्ययता की भावना का भी उदय होता है; जैसे जीवन-बीमा में बीमा कराने वाले को बीमे का प्रीमियम किसी न किसी प्रकार धन बचा कर बीमा-कम्पनी को देना ही होता है। यदि उसे प्रीमियम देना अनिवार्य न रहा होता तो संकट झेलते हुये भी वह धन न बचाता। वास्तव में एक उपयोगी आर्थिक-कार्य के रूप में बीमे का महत्व असीम है।

क्या बीमे का कॉन्ट्रैक्ट जुआ है ?

वीमा किसी भी दृष्टिकोण से जुआ अथवा जुए का कॉन्ट्रैक्ट नहीं है, अपितु इसका विपरीत है। एक द्यूत कॉन्ट्रैक्ट (Wagering Contract) तथा अद्यूत कॉन्ट्रैक्ट की भिन्नता केवल इससे ही जानी जा सकती है कि कॉन्ट्रैक्ट करने वाले व्यक्ति का कॉन्ट्रैक्ट के विषय (Subject matter) में हित है अथवा नही। यदि कॉन्ट्रैक्ट के विषय में कॉन्ट्रैक्ट करने वाले का हित है/तो, कॉन्ट्रैक्ट द्यूत-कॉन्ट्रैक्ट कदापि नही हो सकता; और यदि उपरोक्त हित का उसमें अभाव है, तो कॉन्ट्रैक्ट द्यूत-कॉन्ट्रैक्ट से अधिक कुछ भी नहीं हो सकता। अब यदि हम उपर्युक्त कसौटी पर बीमा की परीक्षा करें तो तत्क्षण ही यह प्रमाणित हो जायगा कि बीमा द्यूत-कॉन्ट्रैक्ट नही है। जीवन-बीमा तथा उसी श्रेणी में आने वाले अन्य बीमों के अतिरिक्त, शेष सभी प्रकार के बीमे क्षतिपूरक कॉन्ट्रैक्ट (Contract of Indemnity) होते है। जिस जोखिम का कोई व्यक्ति बीमा कराता है, उसके उपस्थित होने पर उसे जो हानि होगी, उस हानि की पूर्ति में अवश्य ही उसका हित निहित होगा। जीवन-बीमा के सम्बन्ध में तो इतना कहना पर्याप्त होगा कि जिन जोखिमों के विरुद्ध उन्हें कराया जाता है वे निश्चित ही होती हैं, जैसे एक दिन बीमा कराने वाले की मृत्यु अवश्य होगी ही, अथवा किसी दिन वह निश्चित आयु प्राप्त अवश्य करेगा ही। किन्तु द्यूत-कॉन्ट्रैक्टों में (Wagering Contract) जिनमें भावी घटनाओं के घटित होने अथवा न होने पर दाँव लगाया जाता है, कॉन्ट्रैक्ट करने वाले पक्ष किसी भी प्रकार की जोखिम अथवा सम्पत्ति की हानि की क्षतिपूर्ति का विचार तक नही करते। इसका कारण केवल यही होता है कि कॉन्ट्रैक्ट के विषय (Subject matter) में, कॉन्ट्रैक्ट में निहित हित के अतिरिक्त उनका कोई पृथक् हित नही होता। एक सर्वांग द्यूत-कॉन्ट्रैक्ट में पक्षों का हित यही होता है कि किसी अनिश्चित भावी घटना के घटित होने अथवा न होने पर, एक निश्चित रकम एक दूसरे को देनी होती है। किन्तु जब तक घटना कोई निश्चित रूप धारण नहीं कर लेती, जय-पराजय का निश्चय

नहीं हो सकता। सर विलियम आनसन (Sir William Anson) के अनुसार 'किसी धन अथवा उसके मूल्य को किसी अनिश्चित घटना के निश्चय होने पर देने के कॉन्ट्रैक्ट' को द्यूत-कॉन्ट्रैक्ट कहते हैं। पर दूसरी ओर, बीमे के कॉन्ट्रैक्ट में उस विषय में ही बीमा कराने वाले का हित होता है, जिसका वह किसी जोखिम के विरुद्ध बीमा कराता है। वास्तविकता यह है कि किसी वस्तु का बीमा कराने वाला व्यक्ति प्रीमियम के बदले में उस वस्तु की सुरक्षा प्राप्त करता है जिसका वह बीमा कराता है। प्रीमियम के धन को दाँव पर लगाना उसका उद्देश्य कदापि नही होता। इस प्रकार यदि कोई व्यक्ति 'अ' एक निश्चित प्रीमियम के बदले में अपने मकान का अग्नि-कांड के विरुद्ध बीमा कराता है तो, यह वास्तविक बीमा है, द्यूत का कॉन्ट्रैक्ट नहीं; क्योंकि 'अ' का अपने घर को अग्नि से बचाने और जल जाने पर उसकी क्षति-पूर्ति कर सकने में हित है। इसी प्रकार यदि 'अ', 'ब' के मकान का अग्नि-कांड के विरुद्ध बीमा कराता है और यदि 'अ' का 'ब' के मकान में कोई हित नही है तो, बीमा का यह कॉन्ट्रैक्ट अवैध है अर्थात् द्यूत-कॉन्ट्रैक्ट है, और क्षति होने पर 'अ' को कुछ भी प्राप्त न हो सकेगा।

कुछ विशेष शब्द

एश्योरेन्स तथा इन्श्योरेन्स (Assurance and Insurance) : ऐतिहासिक दृष्टिकोण से एश्योरेन्स शब्द इन्श्योरेन्स से प्राचीनतर है। इन्श्योरेन्स शब्द का उपयोग सोलहवीं शताब्दी के अन्त तक कहीं भी प्रचलित नही था। उस समय तक एश्योरेन्स शब्द का ही प्रयोग प्रत्येक प्रकार के बीमे के लिये हुआ करता था, पीछे से एश्योरेन्स शब्द को जीवन-बीमा तक सीमित कर दिया गया ओर इन्श्योरेन्स का प्रयोग शेष सभी प्रकार के बीमों के लिये होने लगा।

कुछ लेखकों का मत है कि एश्योरेन्स शब्द का प्रयोग उन सभी प्रकार के बीमों के सम्बन्ध में होना चाहिये जिनमें जोखिम का उपस्थित होना अनिवार्य होता है, और जिन में बीमा कराने वाले को बीमा-पत्र में अंकित पूरी रक़म उपलब्ध हो जाती है। इन्श्योरेन्स शब्द का प्रयोग उन बीमों के सम्बन्ध में होना

चाहिये जिनमें जोखिम का उपस्थित होना अनिवार्य न हो---अर्थात् जोखिम हो सकता है, घटित हो अथवा न भी हो। इस मतानुसार एश्योरेन्स शब्द का प्रयोग जीवन-बीमा के सम्बन्ध में होना चाहिये क्योंकि उसमें मनुष्य की मृत्यु होगी ही। इस प्रकार इन्श्योरेन्स शब्द का प्रयोग सामुद्रिक, अग्नि तथा अन्य प्रकार के क्षति-पूरक कॉन्ट्रैक्टों के लिये होना चाहिये, क्योंकि इनकी बीमा की रकम की प्राप्ति क्षति होने अथवा न होने पर निर्भर करती है; और क्षति होगी ही, यह अनिश्चित रहता है।

अन्य व्यक्तियों का कथन है कि कोई व्यक्ति स्वयं को अथवा अपनी सम्पत्ति को इन्श्योर कराता है और बीमा कम्पनी उसे एश्योर करती (विश्वास दिलाती) है कि यदि सम्भावित जोखिम अथवा घटना के घटित होने से उसे हानि होगी तो वह पूर्वनिश्चित-आधार पर उसकी क्षति-पूर्ति कर देगी।

कुछ लोगों का यह भी कहना है कि एश्योरेन्स बीमा के सिद्धान्त तथा इन्श्योरेन्स उसके व्यवहारिक रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं।

किन्तु वर्तमान समय में प्राय: एश्योरेन्स तथा इन्श्योरेन्स के प्रयोग में कोई भेद नहीं किया जाता और दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रयुक्त होते है। हमारी सम्मति मे यही होना भी चाहिये क्योंकि व्यर्थ के शब्द जाल में उलझना निरर्थक ही होता है।

पुनर्बीमा (Reinsurance) : जब कोई बीमा कराने वाला यह देखता है कि उसने अपनी शक्ति से अधिक की जोखिम का भार ले लिया है, तो वह उस भार के किसी भाग का पुनर्बीमा किसी अन्य बीमा करने वाले से करा सकता है। अत: पुनर्बीमा एक कॉन्ट्रैक्ट है जिसके द्वारा वास्तविक बीमा करने वाला अपने दायित्व का आंशिक अथवा पूर्ण भार निश्चित प्रीमियम के विनिमय में किसी अन्य बीमा करने वाले पर डाल देता है। किन्तु वास्तविक बीमा करने वाले तथा बीमा कराने वाले के सम्बन्धों में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ता। वह पूर्ववत् ही बीमा कराने वाले के प्रति सम्पूर्ण दायित्व के लिये

उत्तरदायी रहता है। बीमा कराने वाला पुनर्बीमा करने वाले के विरुद्ध कोई भी दावा नहीं कर सकता।

उदाहरण : 'अ,' 'ब' के हाथों अपने जहाज का ८०,०००) का बीमा कराता है। बीमा कर चुकने के पश्चात् 'ब' सोचता है कि उसने अपनी शक्ति के बाहर जोखिम ले ली है। यह सोचकर वह 'स' के हाथों ४०,०००) का पुनर्बीमा करा लेता है। अब यदि जहाज डूब जाता है तो 'अ' को 'स' से कुछ भी प्राप्त कर सकने का अधिकार नही है, किन्तु यह 'ब' से पूरे ८०,०००) की रकम वसूल कर सकता है। इसी प्रकार 'ब' को 'स' से ४०,००० वसूल कर लेने का अधिकार है क्योंकि उसने पहले ही ४०,०००) का पुनर्बीमा 'स' के हाथों करा लिया था।

दुहरा बीमा (Double Insurance) : कोई व्यक्ति एक से अधिक बीमा करने वालों से अपनी एक ही सम्पत्ति का एक ही जोखिम के लिये यदि बीमा कराता है, तो कहा जाता है कि उस व्यक्ति ने दुहरा बीमा कराया है। यदि वह ऐसा किसी को धोखा देने के उद्देश्य से नहीं करता, तो उसे अधिकार प्राप्त हो जाता है कि हानि होने पर वह चाहे किसी एक से अथवा सब से अपनी हानि की पूर्ति करा सकता है, पर इस प्रकार कुल प्राप्त धन बीमा की गई सम्पत्ति के वास्तविक मूल्य से अधिक नहीं होता। यदि बीमा पालिसियों में अंकित रक़मों का योग बीमा की गई सम्पत्ति के मूल्य से अधिक है, तो वह वास्तविक मूल्य ही प्राप्त कर सकता है।

हम पहले ही कह चुके है कि बीमा कराने वाला किसी एक अथवा सब बीमा करने वालों से अपनी क्षति-पूर्ति करा सकता है। यदि वह किसी एक से ही सम्पूर्ण हानि पूरी कराता है, तो अन्य बीमा करने वालों को उनके साथ की गई बीमे की रकमों के अनुपात में क्षतिपूर्ति करने वाली बीमा-कम्पनी को रूपया देना होगा। इसी प्रकार यदि एक बीमा करने वाला पूरी क्षति-पूर्ति कर सकने में असमर्थ है तो बीमा कराने वाला दूसरे बीमा करने वालों से शेष क्षति की पूर्ति करा सकता है। किन्तु इस स्थिति में बीमा करने वालों की दरानुसार (Rateable)

अनुपात में परस्पर सहायता (Contribution in rateable proportions) करनी होती है।

स्थिति-लाभ का नियम (Doctrine of subrogations) : इस नियम का प्रयोग केवल सामुद्रिक तथा अग्नि बीमों ही में, जिन्हें क्षति-पूरक कॉन्ट्रैक्ट कहते हैं, होता है। इस नियम का तात्पर्य यह है कि बीमा करने वाला बीमा कराने वाले की क्षतिपूर्ति के पश्चात उसके उन सभी अधिकारों तथा उपायों (Rights and Remedies) का अधिकारी हो जाता है जो बीमा कराने वाले को क्षति पहुँचाने वाले अन्य पक्ष (Third Party) के विरुद्ध वैधानिक रूप से प्राप्त होते हैं। इस नियम के लागू होने के लिये निम्नांकित बातें आवश्यक है :—

(१) बीमा करने वाले को इस नियम का आश्रय ग्रहण करने के पूर्व बीमा कराने वाले की क्षतिपूर्ति अवश्य कर देनी चाहिये।

(२) बीमा करने वाले को वही अधिकार प्राप्त हो सकते हैं जो अन्य पक्ष के विरुद्ध बीमा कराने वाले को प्राप्त हैं।

(३) बीमा करने वाले को अन्य पक्ष के विरुद्ध बीमा कराने वाले के नाम से ही न्यायालय में अभियोग चलाना चाहिये, अपने नाम से नहीं।

जीवन-बीमा तथा अन्य बीमों में अन्तर

जीवन-बीमा तथा अन्य प्रकार के बीमों में निम्नांकित प्रधान अन्तर होते है :—

(१) अग्नि, सामुद्रिक तथा दुर्घटना के बीमे क्षति-पूरक कॉन्ट्रैक्ट होते हैं। बीमा कराने वाला पूरी बीमित-रकम (Insured amount) प्राप्त नहीं कर सकता, यदि उसकी हानि उस रकम से कम है। अन्य किसी परिस्थिति में भी बीमित-धन (Insured amount) से अधिक उसे प्राप्त नहीं हो सकता। यदि उसे किसी प्रकार क्षति होती ही नहीं, तो उसे कुछ भी नहीं मिल सकता। किन्तु जीवन-बीमा के मामले में निश्चित घटना के होने

अथवा निश्चित अवधि की समाप्ति पर सम्पूर्ण बीमित-धन बीमा कराने वाले अथवा उसके प्रतिनिधियों को अवश्य मिलता है।

(२) अग्नि, सामुद्रिक, दुर्घटना आदि के बीमों में बीमित-जोखिम (Insured Risk) सम्भव है, कभी उपस्थित हो अथवा न हो। किन्तु जीवन-बीमे में बीमित-जोखिम का आगमन किसी न किसी समय अनिवार्य होता है; जैसे बीमित (Assured) की मृत्यु कभी न कभी होगी ही। अतः अग्नि आदि के बीमों में, हो सकता है, बीमित (Assured) को बीमित-धन (Insured amouut) का कोई भी अंश प्राप्त न हो। किन्तु जीवन-बीमा में बीमित अथवा उसके प्रतिनिधियों को सम्पूर्ण बीमित-रकम अवश्य ही मिलेगी।

(३) अग्नि-बीमा प्रायः वर्ष भर और सामुद्रिक-बीमा उससे भी कम अवधि के लिये हुआ करते हैं। किन्तु जीवन बीमे-दीर्घकालीन होते हैं।

(४) अग्नि, सामुद्रिक आदि क्षतिपूरक बीमों का केवल सुरक्षा ही उद्देश्य होता है। किन्तु जीवन-बीमे में केवल सुरक्षा ही नहीं वरन् पूंजी-वृद्धि (Investment) का भी उद्देश्य होता है।

(५) अग्नि अथवा सामुद्रिक बीमों में यह आवश्यक होता है कि बीमित का बीमे के विषय में बीमा पालिसियों की शर्तों के अनुसार ही बीमायोग्य हित हो। ऐसे हित को धन के रूप में आँका जा सकता है, किन्तु जीवन-बीमे के मामले में केवल वैधानिक हित की ही आवश्यकता होती है और उस हित को धन के रूप में आँक सकना पूर्णतः असम्भव होता है। इस प्रकार किसी जहाज में लादे हुए माल के स्वामी का उसमें क्या हित है, धन के रूप में आँका जा सकता है, क्योंकि माल में उसके स्वामी का वही हित है जो उसका मूल्य है। किन्तु किसी व्यक्ति का अपने जीवन में, पुत्र का पिता के जीवन में, अथवा पत्नी का अपने पति के जीवन में क्या हित है, कभी भी धन के रूप में नहीं आँका जा सकता।

द्वितीय-भाग

जीवन-बीमा

अध्याय ५

जीवन-बीमे का आरम्भ, विकास तथा आधुनिक रूप

जीवन-बीमे का प्रारम्भिक रूप और विकास

पिछले भाग के प्रथम तथा द्वितीय अध्यायों में हमने बीमा की उत्पत्ति तथा उसके प्रारम्भिक रूप पर प्रकाश डाला था। उसी क्रम में हमने यह भी प्रदर्शित किया था कि सर्व प्रथम सामुद्रिक बीमे का उदय हुआ और उसके पश्चात् जीवन-बीमे का। प्राचीन काल में सिद्धान्ततः सामुद्रिक तथा जीवन बीमों में कोई भी मूलभूत अन्तर नहीं था। दोनों समान रूप से किये जाते थे और उनका आधार भी एक ही हुआ करता था अर्थात् सहाय निर्धारण (Assessment) दोनों में समान-पद्धति से किया जाता था। इस पद्धति द्वारा किये गये बीमों को सहाय-निर्धारण-बीमा (Assessment Insurance) कहा जाता है।

अब हम विस्तृत रूप से जीवन-बीमे के प्रारम्भिक रूप पर विचार करेंगे। किन्तु यदि इसके पूर्व उसके इतिहास का किंचित् परिचय दे दिया जाय तो सम्भवतः श्रेयस्कर ही होगा। जीवन-बीमे का सर्व प्रथम श्रीगणेश सोलहवीं शताब्दी में इंगलैण्ड तथा यूरोप के कतिपय देशों में हुआ। किन्तु उस समय बीमा करने वालों के पास मृत्यु-तालिकाएं (Mortality Tables) नहीं हुआ करती थीं। फलतः वे जो जोखिम अपने ऊपर लेते थे उनका कोई आधार नहीं हो सकता था और इसी लिये उनके बीमा कॉन्ट्रैक्ट पूर्णतः अनिश्चित से होते थे। थोड़े शब्दों में यही कहा जा सकता है कि वे बीमा न होकर एक प्रकार से जुआ के कॉन्ट्रैक्ट होते थे। आधुनिक जीवन-बीमा का आरम्भ अठारहवी शताब्दी के प्रारम्भ ही में हो सका। इस प्रकार, जीवन-बीमा के इतिहास को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—(१) सोलहवीं शताब्दी से अठारहवीं

शताब्दी तक जिसमें मृत्यु-तालिकाओं का अभाव था और जीवन-बीमा द्यूत के समझौते से कुछ अधिक नही था। इस भाग का महत्व इसलिये है कि इस काल में जीवन-बीमा का प्रवर्तन हुआ। (२) अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ से आगे, जिसमें मृत्यु-तालिकाओं का निर्माण तथा संकलन हुआ और जीवन-बीमे को एक वैज्ञानिक रूप दिया गया।

हाँ, तो हम जीवन-बीमे के प्रारम्भिक रूप के विषय में कह रहे थे और हमने कहा था कि उस समय सहाय-निर्धारण (Assessmentism) ही इसका आधार था। अब हम यह देखेंगे कि सहाय-निर्धारण क्या था। इसका अर्थ यह है कि कुछ व्यक्ति जीवन की अनिश्चितता देख कर अपना एक संघ बना लेते थे और परस्पर यह समझौता कर लेते थे कि उनमें से किसी भी सदस्य की मृत्यु होने पर उसके उत्तराधिकारियों को एक निश्चित रकम दे दी जायगी, और इस प्रकार की हानि को जीवित सदस्य समान रूप से बाँट लेंगे। साधारणतः तो यही प्रचलित प्रथा थी, किन्तु कभी-कभी ऐसे भी समझौते हुआ करते थे जिनके अनुसार विभिन्न सदस्यों के उत्तराधिकारियों को विभिन्न रकमें मिलने की व्यवस्था होती थी। इसी प्रकार जीवित सदस्यों के क्षति-सहन के परिमाण भी पृथक्-पृथक् हो सकते थे। किन्तु इस बीमा-प्रणाली में कई जन्मजात त्रुटियाँ थी। इसमें न तो यह निश्चय रहता था कि किसी सदस्य को कितनी बार दूसरे सदस्यों की क्षतिपूर्ति करनी होगी और न यही निश्चय रहता था कि हर बार कितना धन इस प्रकार देना होगा। साथ ही समय का भी कुछ निश्चय नहीं रहता था कि किस समय इस प्रकार क्षति-पूर्ति की आवश्यकता पड़ जायगी। इन दोषो के कारण लोगों का ध्यान कोई ऐसी बीमा-प्रणाली की खोज की ओर गया जो इन दोषों से विहीन हो।

कालान्तर में उन्होंने एक नवीन बीमा-प्रणाली उपस्थित की। इसे वार्षिक-चलन-बीमा-प्रणाली (Yearly Renewable Term Insurance) के नाम से पुकारा जाने लगा। इस बीमा-प्रणाली तथा सहाय-निर्धारण प्रणाली में कोई विशेष अन्तर नहीं था। जो भी था, वह यह कि इस नवीन प्रणाली के अन्तर्गत क्रमशः प्राप्त अवस्था पर बीमक (Insurer) के

पूर्वानुभव के सहारे बीमितों (Insured) को अपना वार्षिक प्रीमियम अग्रिम दे देना पड़ता था, और अपना बीमा इस प्रकार प्रति वर्ष नया कराना पड़ता था। यदि किसी समय बीमित अपना प्रीमियम इस प्रकार अग्रिम नही दे सकता था तो उसकी बीमा-पालिसी रद समझ ली जाती थी। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति क्रमशः वृद्धिशील प्रीमियम अदा करके प्रति वर्ष अपना अस्थायी बीमा भी करा सकता था।

जीवन-बीमा का आधुनिक रूप

किसी भी अधिक वय की मृत्यु-दर (Death Rate) पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रीमियम की दर उस समय असहनीय रूप से गुरु हो जायगी, जब कि बीमित अपने कार्यरत जीवन से पृथक् हो रहा होगा। उस समय, जब उसके आय-साधन नगण्य होंगे और वह अपने अन्यान्य व्ययों को कम कर रहा होगा, इस प्रकार के भारी प्रीमियम अनिवार्यतः उसके लिये बड़े ही असुविधा जनक होते होंगे। इस प्रकार जब इस नवीन प्रणाली की असफलता भी स्पष्टतः प्रतिभासित होने लगी तब लोगों ने एक तीसरी प्रणाली का आश्रय लिया। वही प्रणाली वर्तमान समय में भी प्रचिलित है। इस वर्तमान बीमा-प्रणाली को समान-प्रीमियम-योजना (Level Premium Plan) कहते है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि आयु-वृद्धि के साथ-साथ मरण-सम्भावना की भी वृद्धि होती है। अतः वास्तविक प्रीमियम भी प्रति वर्ष बढ़ते जायँगे और अन्त में वे इतने भारी हो जायंगे कि कोई भी उन्हें चुकाना पसन्द नहीं करेगा। किन्तु यदि प्रारम्भिक वर्षो में वास्तविक प्रीमियम से कुछ अधिक बीमित से प्राप्त किया जाय, और उसको किसी व्याज-अर्जक साँधन में लगा दिया जाय, तो पिछले वर्षो में भारी प्रीमियम वसूल करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यदि पर्याप्त सतर्कता से सम्भावित मृत्यु-दर से सम्बन्धित मृत्यु-तालिका (Mortality Table) का चयन किया जाय और साथ ही प्रारम्भिक वर्षों में प्राप्त वास्तविक प्रीमियम से अधिक धन, जिस व्याज-दर

से एकत्रित होता रहेगा, उसे भी मान लिया जाय, तो अत्यन्त सरलतापूर्वक कोई भी व्यक्ति यह ज्ञात कर सकता है कि उपस्थित होने वाले सभी मरण-दावों (Death claims) की पूर्ति के निमित्त कितने वार्षिक प्रीमियम की आवश्यकता होगी। समान-प्रीमियम, अवस्था की वृद्धि के साथ वृद्धि नही करता वरन् प्रति वर्ष समान ही रहता है, क्योंकि प्रारम्भिक वर्षो के प्रीमियम जोखिम के भार तथा चालू खर्चो को पूरा करने से अधिक और पिछले वर्षो में न्यून होते हैं। अतः यह अतिरिक्त प्रीमियम तथा लाभ एक कोष में, जिसे जीवन-कोष (Life fund) अथवा समयोपयोगी कोष (Reserve) कहते हैं, एकत्रित होते रहते हैं। प्रथम वर्ष में कार्य उपलब्ध करने का व्यय, डाक्टरी-परीक्षा का शुल्क (Medical), टिकट-कर तथा दावों के भुगतान आदि मिल कर लगभग प्रथम वर्ष के प्रीमियम के तुल्य हो जाते है। फलतः प्रथम वर्ष में जीवन-कोष शून्य होता है। इस विषय को हम पृष्ठ ३७ पर दिये हुये रेखा- चित्र की सहायता से सरलता पूर्वक समझ सकते है।

उस रेखा-चित्र पर ध्यान देने से समयोपयोगी-कोष (Reserve) के निर्माण का आधारभूत सिद्धान्त स्वतः समझ में आ जायगा। रेखा-चित्र का रेखांकित भाग (Shaded Portion) समान प्रीमियम का स्वाभाविक प्रीमियम से आधिक्य प्रदर्शित करता है और वह समयोपयोगी-कोष के निर्माण में उपयुक्त होता है। व्यवसाय की प्रगति के साथ-साथ बीमकों के इस कोष में भी वृद्धि होती जाती है और कभी-कभी परिमाण करोड़ों-अरबों रूपयों तक होता है। कोष के निर्माण के साथ-साथ आधुनिक जीवन-बीमा-प्रणाली का दूसरा महत्वपूर्ण गुण भी विकसित होने लगता है। यह गुण रूपया लाभार्थ लगाने (Investment) का है। इस कोष तथा इसको लगाने से (Investment) अर्जित लाभ को उस समय दावों के चुकाने में उपयोग किया जाता है जब कि समान प्रीमियम स्वतः अपर्याप्त होते है। बीमितों के हितार्थ इस प्रकार अर्जित होने वाले ब्याज, अथवा कहना चाहिये

समयोपयोगी कोष के निर्माण का प्रदर्शन

REPRESENTATION OF CREATION OF RESERVE

(BASED ON ASSUMED RATES OF PREMIUM)

चक्रवृद्धि-व्याज को बीमों का प्रीमियम निकालते समय ध्यान में रक्खा जाता है, जिससे उन्हें आवश्यकता से अधिक प्रीमियम न देना पड़े।

बीमे के प्राचीन रूप के दोष

सहाय-निर्धारण तथा वार्षिक-चलन-बीमा-प्रणालियों के विषय में हम पहले ही संकेत कर चुके हैं कि सिद्धान्ततः उनमें कोई अन्तर न था। आवश्यक स्थान पर हम उनका अन्तर भी बतला चुके है। अब हम उनके उभयनिष्ठं दोषों का वर्णन करेंगे। प्रणाली के अनुसार कार्य आरम्भ करने के कुछ समय तक मृत-संख्या बहुत न्यून होती थी। फलतः, वार्षिक प्रीमियम भी अल्प हुआ करता था। किन्तु कुछ वर्षों के व्यतीत होने के पश्चात् मृत्यु-संख्या को दर लगातार बढ़ने लगती थी जिसका फल वार्षिक प्रीमियम में वृद्धि होता था। इन बातों का परिणाम यह होता था कि नवीन-व्यक्ति बीमा-संघ का सदस्य बनने से झिझकते थे। इसी प्रकार विद्यमान सदस्यों में जो स्वस्थ तथा नीरोग होते थे, अपने संघ का परित्याग कर नवीन संघों का सदस्य बनना अपने हित में पाते थे, क्योंकि वहाँ उन्हें कम प्रीमियम देना पड़ता था। एक परिणाम यह भी होता था कि संघ के शेष सदस्यों को सदस्यों की कम तथा मृतकों की संख्या अधिक होने के कारण भारी प्रीमियम देने होते थे। ये प्रीमियम कभी-कभी इतने भारी हो जाते थे कि बेचारे वृद्ध-सदस्य अपनी अल्प-आय में से उन्हें चुका नही सकते थे। प्रीगियमों का धन एकत्रित न हो सकने के परिणाम स्वरूप बीमा-संघ का अस्तित्व ही मिट जाता था। वास्तविकता यह है कि सहाय- निर्धारण तथा स्वाभाविक-बीमा-प्रणाली तभी सफल हो सकती है जब कि देश विशेष के एक निश्चित अवस्था से अधिक के सँभी व्यक्तियों के लिये उसे अनिवार्य कर दिया जाय। स्वाभाविक रूप से जहाँ एक ओर वृद्धों की मृत्यु होने से प्रति वर्ष बीमितों की संख्या कम होगी, दूसरी ओर नवयुवकों के प्रवेश से उस संख्या में वृद्धि भी होगी। इसका प्रतिफल यह होगा कि बीमा कराने वालों की औसत अवस्था और प्रीमियम लगभग स्थायी ही रहेंगे।

जीवन-बीमा की विशेषता

संरक्षण और पूंजी-वृद्धि (Protection and Investment) : जीवन-बीमा जीवन की जोखिमों से छुटकारा पाने का उपाय तो है ही, किन्तु साथ ही साथ पूजी-वृद्धि का भी एक सुलभ साधन है। हम जीवन-बीमा तथा अन्य बीमों के अन्तर की चर्चा करते समय बता चुके है कि अन्य बीमों में पूजी-वृद्धि का गुण नहीं होता।

हम अपनी बचत को उद्योग तथा व्यवसाय-गृहों, बैंकों और डाक-घरों तथा सरकारी, ग़ैर-सरकारी और अर्द्ध-सरकारी कर्जों में लगाते है। परन्तु बैंक में रूपया जमा करने वाले को, और यदि उसकी मृत्यु हो जाय तो उसके प्रतिनिधियों को, बैंक से उतना ही धन प्राप्त होगा जितना कि उसने उसमें जमा किया था। साथ ही उस धन पर उसे व्याज भी प्राप्त होगा। यही बात अन्य साधनों में रूपया लगाने के विषय में भी सत्य है। इन साधनों में रूपया लगाने से धन-वृद्धि अवश्य होती है, क्योंकि उस पर ब्याज मिलता है। अतः इन्हें पूजी-वृद्धि का साधन कहा जा सकता है।

इसी प्रकार हम देखेंगे कि अग्नि-सामुद्रिक तथा इसी श्रेणी के अन्य क्षति-पूरक बीमों में केवल सुरक्षा या संरक्षण (Protection) का तत्व ही मिलता है, पूंजी-वृद्धि का नहीं। मान लीजिये, कि किसी व्यक्ति ने अपना मकान अग्नि की जोखिम से १०,०००) में बीमा कराया है। अब यदि मकान में आग लग जाती है जिसके फलस्वरूप उसे सचमुच ही १०,०००) की हानि होती है, तो बीमा-कम्पनी १०,०००) देकर उसकी क्षति-पूर्ति कर देगी। किन्तु यदि मकान में आग नही लगती और इस प्रकार गृह-स्वामी को कोई हानि नहीं होती, तो बीमा-कम्पनी से उसे कुछ भी प्राप्त न हो सकेगा। संक्षेप में बीमा-कम्पनी अग्नि-बीमे की शर्तों के अनुसार गृह-स्वामी को केवल संरक्षण ही प्रदान करती है, पूंजी-वृद्धि का उसमें प्रश्न ही नही उठता। तात्पर्य यह है कि अग्नि आदि के बीमे पूंजी-वृद्धि के साधन न होकर केवल संरक्षण के ही साधन होते है।

किन्तु जीवन-बीमा की विशेषता है कि संरक्षण का एक साधन होते हुए वह पूंजी-वृद्धि का भी साधन होता है ।

बीमित-व्यक्ति समय-समय पर जो प्रीमियम बीमा-कम्पनी को देता है, उसे कम्पनी व्याज पर लगा देती है और वह एक कोष (fund)के रूप में निरन्तर बढ़ता जाता है । यदि यह कोष अबाध रूप से बढ़ने दिया जाय तो बीमा की अवधि की समाप्ति पर वह बीमित-रकम के तुल्य हो जायगा । बीमे का दावा चुकाते समय यह रकम उस भुगतान के लिये पर्याप्त होगी । इस प्रकार जीवन-बीमा पूजी-वृद्धि का भी एक साधन है, क्योंकि बीमा कराने वाले को उसी के ारा प्रीमियम के रूप में दी हुई रकम व्याज सहित लौटा दी जाती है । किन्तु यदि ऐसा हो कि प्रीमियम की सभी किस्तों को अदा करने के पूर्व ही बीमित की मृत्यु हो जाय, तो उसके उत्तराधिकारियों को बीमा की पूरी रकम प्राप्त हो जायगी । इस प्रकार जीवन-बीमा संरक्षण का भी एक साधन होता है ।

अतः हम देखते हैं कि जीवन-बीमा में संरक्षण और पूंजी-वृद्धि दोनों ही तत्व विद्यमान रहते हैं । जैसे-जैसे समय व्यतीत होता जाता है, धन-वृद्धि का तत्व (Investment element) बढ़ता जाता है, और उसी मात्रा में संरक्षण (Protection) का भाग घटता जाता है; क्योंकि समय व्यतीत होने के साथ-साथ जीवन-कोष की रकम बढ़ती जाती है और बीमित तथा कोष की रकमों का अन्तर घटता जाता है । फलतः एक निश्चिन्तता का तत्व यहाँ से पनपने लगता है ।

भारत में जीवन-बीमे के धीमे विकास के कारण

(१) भारत की जन संख्या में अधिकांश हिन्दू हैं । हिन्दुओं में संयुक्त-परिवार की प्रथा है । यह प्रथा बीमे की आवश्यकता को बहुत दूर तक पूरा कर देती है क्योंकि अपाहिज तथा विधवाओं का भरण-पोषण संयुक्त-परिवार के कार्य-योग्य सदस्यों का धर्म समझा जाता है ।

(२) जीवन-बीमे का विचार हिन्दुओं के धार्मिक, दार्शनिक एवं आत्मिक विचारों से, जो सहस्रों वर्षों से जड़ जमाए हुए हैं, संघर्ष करता है । अपने आश्रितों

के लिये एक कृत्रिम साधन से, जो मृत्यु के पश्चात कार्यशील होगा, भरण-पोषण की व्यवस्था करना, उन्हें क्षुब्ध कर देने वाला प्रतीत होता है

(३) बीमा की प्रगति के निमित्त एकत्रित धन को व्याज पर लगा सकने की सुविधाओं की उपलब्धिता परम वांछनीय होती है। किन्तु इस देश में अभी निकट पूर्व तक ऐसी सुविधाओं का अभाव-सा था।

(४) सूदखोरी इस्लाम तथा हिन्दू दोनों धर्मों के विरुद्ध है--विशेषकर प्रथम*के। अतः इस कारण भी बीमे की प्रगति को बाधा पड़ी।

(५) भारतीयों की निर्धनता, अज्ञानता तथा धार्मिक दृष्टिकोण ने बीमा की उन्नति नहीं होने दी है।

किन्तु अब जैसे-जैसे शिक्षा का प्रचार बढ़ता जा रहा है, और लोग बीमे की उपयोगिता को समझते जा रहे हैं, बीमे की उन्नति भी होती जा रही है।

जीवन बीमा से लाभ

जीवन-बीमे से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से अनेक लाभ होते हैं। इससे केवल बीमित व्यक्ति का ही हित नही होता, वरन् उसके सम्बन्धियों, जाति, समाज, देश तथा अन्त में सम्पूर्ण मानव-समाज का भी हित होता है। केवल इतना ही नही, इससे उद्योग धन्धो के विकास, व्यवसाय के विस्तार, व्यापार की उन्नति तथा जीवन-माप को ऊँचा उठाने में भी यथेष्ट सहायता प्राप्त होती है। एक महान लाभ समाज को जीवन बीमे से यह भी हो सकता है कि अपने जीवन-निर्वाह के लिये पराश्रित व्यक्तियों की संख्या अत्यन्त न्यून हो सकती है, और इस प्रकार उसका भार हलका हो सकता है। अब हम जीवन-बीमे के लाभों का मनन विभिन्न दृष्टिकोण से करेंगे।

---

*महात्मा गांधी भी बीमे के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने स्वयं ही अपनी जीवन-बीमा पालिसी को समाप्त कर दिया था—'आत्म कथा' (गुजराती में) भाग २ का चौथा अध्याय, पृष्ठ १४-१६

वैयक्तिक तथा कौटुम्बिक दृष्टिकोण . . (१) अपनी स्थिति के अनुसार यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी आय का दशमांश भी जीवन-बीमे में लगाता रहे, तो भविष्य में न तो उसे और न उस पर आश्रित उसके कुटुम्बियों को ही किसी प्रकार का संकट झेलने की आवश्यकता होगी। वह पूर्ण निर्द्वन्द्वता तथा निर्भयता पूर्वक अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकेगा, क्योंकि भविष्य में उदरपूर्ति की चिन्ता उसे व्याप न सकेगी। अतः उसे असीम मानसिक-शान्ति का भी अनुभव होगा। वृद्धावस्था में शिथिल अंग तथा कार्याक्षम हो जाने पर यह आवश्यकता उसे न होगी कि वह किसी का आश्रित अथवा समाज का बोझ बने। उस समय बीमें का धन प्राप्त कर के वह पूर्ववत् सम्मान का जीवन व्यतीत कर सकता है। जीवन-बीमे के द्वारा वह अपने आश्रितों को अपनी मृत्यु के उपरान्त उनकी दुर्दशा से रक्षा भी कर सकता है, क्योंकि उसकी मृत्यु के पश्चात् उन्हें एक निश्चित रकम मिल जायगी जिससे कुछ समय तक तो अवश्य ही वे अपना जीवन-निर्वाह कर सकते हैं। इस बीच में भविष्य के लिये वे अपना कुछ प्रबन्ध भी कर लेंगे। इस प्रकार 'मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरे बाल-बच्चो का क्या होगा' इस चिन्ता से वह छुटकारा पा जाता है।

(२) मनुष्य अपनी जीवनावस्था ही में अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा, विवाहादि का प्रबन्ध कर जाता है।

(३) इससे मनुष्य में आत्म-प्रतिष्ठा की वृद्धि होती है और स्वाभिमान जागृत होता है।

(४) बैंकों से केवल उतना ही धन व्याज सहित प्राप्त हो सकता है जितना उसने उसमें जमा किया है, किन्तु बीमा कम्पनी से अपनी इच्छानुसार बीमा कराया हुआ धन बीमित अथवा उसके उत्तराधिकारियों को प्राप्त हो सकता है।

(५) यदि मनुष्य की स्वयं अथवा उसकी पत्नी की जीवन-बीमा पालिसी का प्रीमियम उसकी आय का १/६ से अधिक नहीं होता, तो उसे उस पर आय-कर नहीं देना पड़ता।

(६) बीमित थोड़ा-सा धन प्रारम्भिक प्रीमियम के रूप में देकर एक बड़ी

सम्पत्ति (बीमा-पालिसी) का स्वामी हो जाता है, जिसका मूल्य वह अपने सुभीते से छोटी-छोटी किस्तो में चुकाता है ।

(७) कौटुम्बिक लाभ के लिये ली गई जीवन-बीमा पालिसी पर महाजनों का कोई अधिकार नहीं होता । अर्थात् डिग्री वसूल करते समय वे उसको नहीं ले सकते ।

(८) इससे मितव्ययता का विकास होता है ।

औद्योगिक दृष्टिकोण से : बीमा कार्य इतने अटल सिद्धान्तों तथा निश्चित गणना पर आधारित है कि कोई भी सुव्यवस्थित रूप से संचालित बीमा-कम्पनी थोड़े ही समय में अपने जीवन-कोष के रूप में एक विशाल धन-राशि प्रगतिशील व्यवसाय द्वारा एकत्रित कर सकती है । फिर बैंकों के समान बीमा-कम्पनियों के सहसा जोखिम में पड़ जाने का भय भी नही होता । अत: जीवन-बीमा कम्पनियाँ बड़ी सरलता से उस धन को देश के उन उद्योग-धन्धों के विकास में लगा सकती है जो उसको समृद्धिशाली बनाने में सहायक हो सकते हैं ।

सामाजिक दृष्टिकोण से : जीवन-बीमा समाज को पेन्शन, दान, भिक्षा आदि ग्रहण करने के अपमान से बचाता है, क्योंकि जब लोगों के पास स्वयं ही जीवन-यापनार्थ पर्याप्त धन होगा तो वे दान अथवा भिक्षा-वृत्ति स्वीकार ही क्यों करेंगे । इस प्रकार समाज का भार हलका हो जाता है । साथ ही समाज को बाल-श्रम से मुक्ति मिल जाती है, तथा बेचारे अनाथ बालकों को सार्वजनिक धर्मार्थ संस्थाओं की शरण लेने की आवश्यकता नही होती । इसका एक मात्र ध्येय यही है कि निर्धन, अभागों तथा भिखारियों के समाज में बढ़ते रहने की सम्भावना को कम कर दिया जाय । यदि बीमा की सुविधाएँ न होतीं तो ऐसे आश्रितों के होने के कारण समाज पर इसका बड़ा बोझ पड़ता। बीमा होने पर मृत व्यक्ति के उत्तराधिकारियों को दूसरों की दया-दृष्टि पर नही वरन् अपने सहारे खड़े होने का बल प्राप्त हो जाता है ।

बीमा संस्थाओं द्वारा समाज की औद्योगिक उन्नति भी होती है । बीमितों द्वारा प्रीमियम के रूप में दिया हुआ धन एकत्रित होकर एक बड़े कोष का रूप

धारण कर लेता है और यह देश के औद्योगिक तथा व्यावसायिक कार्यों में ही प्रयुक्त होता है। इस प्रकार देश के ऐसे व्यक्तियों का धन, जो साधारणतया इतना कम रहता है कि बड़े-बड़े उद्योगों में नहीं लगाया जा सकता, बीमा कम्पनियों द्वारा एकत्रित कर लिया जाता है और उसे वृहद् औद्योगिक योजनाओं में प्रयोग किया जाता है। इससे राष्ट्र एवं समाज की उन्नति होती है।

व्यावसायिक दृष्टि.कोण से : जीवन-बीमा बीमित व्यक्ति की साख उत्पन्न करने तथा उसे बनाए रखने का एक बड़ा शक्तिशाली साधन है। जिस प्रकार बीमा की हुई सम्पत्ति का स्वच्छंदतापूर्वक उपयोग व्यापार कार्य के लिये हो सकता है, तथा उस पर ऋण लिया जा सकता है, उसी प्रकार बीमित-व्यक्ति भी अपने जीवन-बीमे की पालिसी पर ऋण प्राप्त कर सकता है। जिस प्रकार शेअर (Share) दस्तावेज आदि ऋण-प्राप्ति के लिये साख-पत्र समझे जाते हैं, उसी प्रकार जीवन-बीमे की पालिसी भी एक साख-पत्र समझी जाती है। इस प्रकार जीवन-बीमा-पालिसी अन्य साख-पत्रों के समान साख-मुद्रा की वृद्धि में भी सहायक हो सकती है। साथ ही ऋणी न्यून दर पर ऋण भी अपने जीवन-बीमे की पालिसी की जामिनी (Security) पर प्राप्त कर सकता है।

साझेदारी के फर्मों (Partnership firms) में प्रायः साझीदार (Partners) अपने जीवनों का संयुक्त-बीमा करा लेते हैं, जिसके भुगतान की शर्त किसी भी साझीदार की मृत्यु होती है। जब साझीदार की मृत्यु हो जायगी तब मृत-साझीदार के उत्तराधिकारी को उसका भाग देने की आवश्यकता पड़ेगी। सम्भव है कि एक साथ लम्बी रकम व्यवसाय से पृथक् कर देना फर्म के लिए कठिन हो, उस अवस्था में संयुक्त-पालिसी का धन प्राप्त कर के मृत-साझीदार का भाग अत्यन्त सरलतापूर्वक चुकाया जा सकता है।

इसी प्रकार जब कोई महाजन देखता है कि वह अपना ऋण ऋणी से उसके जीवन ही में चाहे तो वसूल कर सकता है, उसकी मृत्यु के पश्चात नहीं, तब वह अपने ऋणी के जीवन का बीमा करा लेता है। इसके फल स्वरूप यदि ऋणी

बिना ऋण चुकाए स्वर्ग की ओर कदम उठा दे तो भी महाजन को कोई हानि नही हो सकती, क्योंकि तब बीमा-कम्पनी उस ऋण का भुगतान करेगी।

सरकार के दृष्टिकोण से : सरकार के लिये भी जीवन-बीमा अति लाभप्रद है, क्योंकि बीमे का अधिकाधिक प्रचलन होने से उसे क्रमशः कम धन बेकारों, अपाहिजों आदि के भरण-पोषण में व्यय करना होगा। इसी प्रकार पेन्शनों का व्यय भी घट जायगा।

सर जोजेफ़ बर्न का कथन है कि 'बीमा तथा सभ्यता सहगामी हैं। किसी देश अथवा जाति की उन्नति का पता इस बात से सहज ही लग सकता है कि वह बीमे के लाभों को क्या स्थान देती है। बीमा सभ्यता का केवल परिणाम ही नहीं प्रत्युत उसकी ओर ले जाने वाली एक महत्वपूर्ण शक्ति तथा समाज की स्थायी दशा का लक्षण भी है।' वास्तव में बीमे के महत्व तथा लाभ महान हैं। हमारे देश को, जब कि हमारी संयुक्त-कुटुम्ब-प्रणाली अत्यन्त तीव्र गति से छिन्न-भिन्न हो रही है, जीवन बीमे के प्रचार की अधिकाधिक आवश्यकता है।

अध्याय ६

जीवन-बीमा-कॉन्ट्रैक्ट की आवश्यकताएं

अन्य प्रकार के बीमों के समान, जीवन-बीमा भी बीमित और बीमक के मध्य एक कॉन्ट्रैक्ट होता है, जिसके अनुसार किसी निश्चित घटना के उपस्थित होने पर, बीमित अथवा उसके उत्तराधिकारियों को उन छोटी-छोटी रकमों के बदले में जो वह निश्चित रूप से समय-समय पर कम्पनी को देता है, एक निश्चित रकम देने का समझौता कर लिया जाता है ।

जीवन-बीमे के कॉन्ट्रैक्ट के लिये आवश्यक बातें

किसी भी वैध बीमा कॉन्ट्रैक्ट के लिये जैसा कि हम किसी पिछले अध्याय में देख चुके हैं कॉन्ट्रैक्ट करने वाले पक्षों के बीच समझौता, उनकी कॉन्ट्रैक्ट करने की योग्यता, कॉन्ट्रैक्ट के लिये वैधानिक प्रतिफल तथा उद्देश्य, बीमा कराने में हित, बीमा के मूलभूत तथ्यों का प्रदर्शन तथा साधारण शर्तों की पूर्ति आवश्यक होती है । ये सब शर्तें जीवन-बीमे की वैधता के लिये भी अपेक्षित हैं । अब हम यह देखेंगे कि अन्तिम तीन आवश्यकताओं का अर्थ जीवन-बीमे के सम्बन्ध में क्या होता है।

मूलभूत तथ्यों का प्रदर्शन : बीमा कराने के इच्छुक व्यक्ति के लिये आवश्यक है कि अपने प्रस्ताव-पत्र (Proposal form) में सब प्रश्नों का सही उत्तर लिखे । इसी प्रकार डाक्टरी परीक्षा के समय डाक्टर के सामने भी उसे पूर्णतः सच्ची बातें ही कहनी चाहिये और कुछ छिपाना नहीं चाहिये, क्योंकि

बीमा पूर्ण-विश्वास (Absolute good faith) का कॉन्ट्रैक्ट होता है। अतः प्रस्तावक वास्तविकता प्रगट कर देने के लिये वाध्य होता है। यदि प्रस्ताव अथवा डाक्टरी विवरण में असत्य बातें लिखा दी गई अथवा कुछ गुप्त रक्खा गया, तो बीमा-पालिसी के रद हो जाने की सम्भावना रहती है।

मूलभूत तथ्यों के (Material facts) प्रदर्शन का सिद्धान्त बीमा कॉन्ट्रैक्ट के दोनों पक्षों पर लागू होता है। किन्तु, चूकि जीवन-बीमा एक ऐसा कॉन्ट्रैक्ट है जिसमें बीमा किये जाने वाले विषय की अधिक सूचना बीमा कराने वाले ही को हो सकती है, अतः इस सिद्धान्त का उपयोग भी अधिकतर उसी के प्रति होता है। भारतीय बीमा विधान (१९३८) के अनुसार बीमा पालिसी लेने के दो वर्ष पश्चात् उसे रद नहीं किया जा सकता। बीमा कॉन्ट्रैक्ट में दोनों पक्षों द्वारा परम् सद्विश्वास का पालन करने की आवश्यकता होती है और सभी तथ्यों को, एक पक्ष को दूसरे को प्रदर्शित कर देना चाहिये। किसी प्रकार का मिथ्या भाषण, जानबूझ कर अथवा अनजान में, नही होना चाहिये। इसीलिये (Caveat Emptor) का सिद्धान्त (क्रयकर्त्ता सचेत रहे), जो साधारण विक्रय-कॉन्ट्रैक्टों (Contracts of sale) में लागू होता है, बीमा-कॉन्ट्रैक्ट (Insurance contract) पर लागू नहीं होता। बीमा-कॉन्ट्रैक्ट में पूर्ण-विश्वास (Absolute good faith) का पालन दोनों ही पक्षों को करना पड़ता है।

बीमा-योग्य हित (Insurable Interests) : जीवन-बीमे के कॉन्ट्रैक्ट के वैध होने के लिये बीमा कराते समय बीमा कराने वाले का उसके जीवन में, जिसका बीमा किया जा रहा है, बीमा-योग्य हित की विद्यमानता अति आवश्यक है। प्रत्येक मनुष्य का अपने जीवन में बीमा-योग्य हित होता है। बीमा-योग्य हित दूसरों के जीवन में आर्थिक-स्वार्थ, रक्त-सम्बन्ध अथवा विवाह द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। बीमा-योग्य हित के निम्नलिखित उदाहरण हैं :—

(१) प्रत्येक व्यक्ति का अपने जीवन में बीमा-योग्य हित होता है।

(२) पति का पत्नी तथा पत्नी का पति के जीवन में बीमा-योग्य हित होता है।

(३) पिता का पुत्र के जीवन में बीमा-योग्य हित होता है, यदि पिता पुत्र पर निर्भर हो और उसको पुत्र से आर्थिक सहायता प्राप्त होती हो।

(४) पुत्र का पिता के जीवन में बीमा-योग्य हित होता है, यदि पुत्र पिता के आश्रित हो और पिता से उसको आर्थिक सहायता मिलती हो।

(५) महाजन (Creditor) का ऋणी (Debitor) के जीवन में बीमा-योग्य हित होता है, किन्तु उसका बीमा-योग्य हित वही तक सीमित रहता है जितना कि उसने ऋण दिया है।

(६) भगिनी का भ्राता के जीवन में बीमा-योग्य हित होता है, यदि वह बहिन को आर्थिक सहायता देता है।

(७) बहुत-सी कम्पनियाँ अपने अध्यक्षों तथा अन्य अफसरों का जीवन-बीमा कराती है यदि उनको उनकी मृत्यु से आर्थिक हानि पहुँचती हो। ऐसी दशा में कम्पनी का अध्यक्षों तथा अफसरों के जीवनों पर बीमा-योग्य हित होता है।

(८) ट्रस्टी का ट्रस्ट की वस्तु में बीमा-योग्य हित होता है।

जीवन-बीमे का कॉन्ट्रैक्ट बीमा-योग्य हित से विहीन होने पर जुएबाजी का कॉन्ट्रैक्ट मात्र रह जाता है जो अवैध (Void) होता है। जीवन-बीमा कराते समय ही बीमा-योग्य हित का होना आवश्यक होता है। बीमे का दावा अथवा पालिसी को किसी अन्य व्यक्ति के नाम से प्रदान (Assign) करते समय बीमा-योग्य हित न होने से भी कोई हानि नहीं होती।

साधारण शर्तों की पूर्ति (Warranties) : पालिसी में दी हुई बातें साधारण शर्तों (Warranties) के रूप में होती हैं। यदि बीमित उनका पालन नहीं करता तो पालिसी कम्पनी द्वारा रद की जा सकती है।

बीमा कराने की विधि

बीमा कराने के लिये जो बातें आवश्यक होती हैं उनका उल्लेख नीचे किया जाता ह :—

प्रस्ताव-पत्र की पूर्ति : किसी भी कम्पनी में बीमा कराने के लिये सर्व प्रथम उस कम्पनी का प्रस्ताव-पत्र भरना आवश्यक होता है। प्रस्ताव-पत्र में अपना नाम, पता, आयु, व्यवसाय, बीमे का प्रकार, बीमे का कारण आदि बातों का स्पष्टीकरण करना होता है। इसमें व्यवसाय के लिये केवल नौकरी, व्यापार आदि सांकेतिक शब्दों से काम नही चलता। व्यवसाय का स्वभाव, उसमें प्रस्तावक का कार्य आदि बातें स्पष्ट रूप से लिखनी चाहिये।

यह प्रस्ताव पत्र, जिसे आवेदन-पत्र भी कहते है, आगे होने वाले बीमा-कॉन्ट्रैक्ट का आरम्भ है। प्रस्ताव-पत्र में ही कुछ ऐसे प्रश्न रहते है जिनके उत्तरों से वे सभी आवश्यक बातें प्रस्तावक के सम्बन्ध में ज्ञात हो जाती हैं जिनके आधार पर कम्पनी प्रस्तावक का बीमा स्वीकार करने अथवा न करने का निर्णय कर सकती है। अतः प्रस्तावक को प्रश्नों के उत्तर अत्यन्त सावधानी तथा सतर्कता-पूर्वक लिखना चाहिये, क्योंकि किसी प्रश्न के उत्तर में असत्य लेख देने अथवा जान बूझ कर सत्य के स्थान पर असत्य बात लिख देने से बीमें को रद कर दिये जाने का भय रहता है।

प्रस्ताव-पत्र में प्रायः तीन प्रकार के प्रश्न रहते हैं : (१) साधारण प्रश्न—जो प्रस्तावक के नाम, पता, बीमे की रकम इत्यादि से सम्बन्धित होते हैं। (२) आवश्यक प्रश्न—वे होते हैं जिनके द्वारा बीमा-कम्पनी प्रस्तावक के व्यवसाय, स्थित, जीवन-प्रणाली इत्यादि का ज्ञान प्राप्त करती है। कम्पनी को प्रस्तावक के जीवन की जोखिम का निर्णय करने में उसके व्यवसाय-सम्बन्धी उत्तर महत्वपूर्ण सहायता देते हैं। प्रस्तावक को प्रस्ताव-पत्र में अपने एक अथवा दो परिचित व्यक्तियों के नाम और पते भी देने पड़ते हैं, जिससे आवश्यक होने पर उसके जीवन के सम्बन्ध में उनसे पूछताछ की जा सके।

(३) पूर्व बीमा सम्बन्धी प्रश्न---ये प्रश्न यह जानने के लिये होते हैं कि प्रस्तावक ने पहले भी कभी बीमा कराया है अथवा नहीं ? अथवा कभी उसके लिये प्रयत्न भी किया है या नही ? यदि किया है, तो किस कम्पनी में ? इत्यादि। उदाहरण के लिये नीचे एक साधारण प्रस्ताव का नमूना दिया जाता है :—

एजेन्ट जिसके द्वारा प्रस्ताव किया जाता है .... संख्या { हेड आफिस ......
एजेन्सी.........

बीमा कम्पनी का नाम

स्थापना का सन्

कम्पनी के हेड आफिस का पूरा पता

बीमे का प्रस्ताव

प्रस्तावक को इन प्रश्नों का उत्तर अवश्य देना चाहिये। उत्तर स्पष्ट और पूर्ण होने चाहिये।

१. (अ) प्रस्तावक का पूरा नाम	(अ)
(ख) वर्तमान पूरा पता	(ख)
(ग) स्थायी पता	(ग)
(घ) अपने पिता का पूरा नाम	(घ)
२. (अ) वर्त्तमान पेशे का पूरा ब्योरा	(अ)
(क) क्या आप अपने वर्तमान पेशे को बदलना चाहते है ? यदि विचार ह, तो कौन-सा नया पेशा करना चाहते हें ?	(क)

(ख) आप का पहले क्या पेशा था ? उसके बदलने की तारीख बतलावें ।	(ख)				
(ग) क्या आपका हवाई, समुद्री या फौजी सेना में नौकरी करने का विचार या सम्भावना है ?	(ग)				
(घ) क्या आप ने यात्री की तरह या अन्यथा हवाई जहाज से पलायन किया है ?	(घ)				
(ङ) यदि आप फौज में नौकरी करते ह, तो क्या आप लड़ाई सम्बन्धी जोखिम का बीमा चाहते ह ?	(ङ)				
(च) क्या आप का अपने देश से वास-स्थान बदलने का विचार ह ?	(च)				
३. (अ) आप अपने जन्म का विवरण दीजिये.	(अ)				
(क) आप की आयु जो आप की निकटतर वर्षगाँठ पर होती हो, और अपना जन्म दिन बतलाइये।	(क) दिन	मास	वर्ष	निकटतर वर्ष-गाँठ पर आयु	

४. बीमे की योजना	
(अ) किस प्रकार का बीमा कराना चाहते हैं	(अ)
(ख) बीमा और किस्त की संख्या	(ख) बीमे की किस्त वार्षिक, छमाही या तिमाही दी जायगी
(ग) मुनाफा किस प्रकार लेना चाहते हैं	(ग)
(घ) बीमे की रकम	(घ)
५. (अ) क्या पहले कभी इस कम्पनी में या अन्य किसी कम्पनी में आप के जीवन-बीमे का प्रस्ताव भेजा गया था ? यदि भेजा गया हो, तो कब और किस कम्पनी में ?	(अ)
(क) क्या वह साधारण दर पर स्वीकार कर लिया गया ?	(क)
(ख) यदि अधिक दर पर स्वीकार किया गया, तो किस दर पर ?	(ख)
(ग) क्या आपका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया ?	(ग)

(घ) यदि पहले आप का बीमा हो चुका है, तो कम्पनी का नाम, बीमे की संख्या इत्यादि का पूरा व्योरा दीजिये ।	(घ) कम्पनी का नाम . . . . बीमित-धन . . . . बीमे का प्रकार . . . . बीमे का आरम्भ . . . .
६. (क) अपने हिताधिकारी का नाम व पूरा पता लिखिये, जिसे आप बीमित-धन अपनी मृत्यु के पश्चात् दिलाना चाहते हैं । (ख) हिताधिकारी की आयु और जन्म तिथि बतलाइये यदि किस्त पर उसका प्रभाव पड़ता हो ।	(क) (ख)
७. जीवन बीमे का क्या अभिप्राय है ?	
८. क्या आपने कुछ पेशगी भी जमा किया है ? यदि हाँ तो किसको और कितना ?	

९. मैं——————जिसका पता आदि ऊपर लिखा है और जिसके जीवन का प्रस्ताव किया जा रहा है, इस लेख के द्वारा अपनी स्वीकृति देता हूँ

कि यह वर्णन और यह घोषणा और डाक्टरी जाँच के समय जो बयान मैंने दिया है या दूंगा वह और कम्पनी के डाक्टर के प्रश्नों का जो उत्तर मैंने बीमे के सम्बन्ध में दिया है या दूंगा और तत्सम्बन्धी घोषणा, वह सब मेरे और कम्पनी के बीच में एक कॉन्ट्रैक्ट की बुनियाद होगा और यह कॉन्ट्रैक्ट उस समय तक जारी नही समझा जायगा जब तक कि मैं पहले प्रीमियम की किस्त जमा कर के अपनी स्वस्थ दशा में कम्पनी की पक्की रसीद हासिल न कर लू ।

मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि मैंने अपने बयानों और घोषणाओं में कोई बात नहीं छिपाई और अगर इनमें कोई भी बात झूठ हो तो तमाम रूपया, जो कि बीमे के विषय में दिया गया होगा वह सब ज़ब्त हो जायगा और बीमे का कॉन्ट्रैक्ट भी बिलकुल रद हो जायगा । मैं यह भी इकरार करता हूँ कि यदि प्रीमियम की रकम कम्पनी की स्वीकृति से २० दिन तक जमा न कर दी गई तो कम्पनी को पूरा अधिकार इस बात का होगा कि मुझसे वह रूपया वसूल कर ले जो उसने मेरी डाक्टरी जांच इत्यादि पर खर्च किये है ।

मैंने अपने हाथ से आज स्थान————पर तारीख———महीना——— सन्————ई० को सही की ।

गवाह के हस्ताक्षर———बीमा कराने वाले के साधारण हस्ताक्षर———

पेशा——————————

पता——————————

स्वास्थ्य-परीक्षा (Medical Examination) : प्रस्ताव-पत्र भर जाने के पश्चात् कम्पनी द्वारा नियुक्त डाक्टर प्रस्तावक के स्वास्थ्य की परीक्षा करता है। यदि बड़ी रकम के लिये बीमे का प्रस्ताव होता है, तो उस दशा में प्रस्तावक की स्वास्थ्य-परीक्षा प्रायः दो डाक्टर पृथक-पृथक् करते हैं, क्योंकि उसमें जोखिम की मात्रा अधिक होती है ।

स्वास्थ्य-परीक्षा-पत्र, में दो श्रेणी के प्रश्न होते हैं । एक तो वे जिनके उत्तर

प्रस्तावक डाक्टर के पूछने पर देता है और दूसरे वे जिनके उत्तर डाक्टर स्वयं लिखता है।

स्वास्थ्य-परीक्षा की रिपोर्ट में प्रस्तावक के नाम, पता, आयु, विवाह सम्बन्धी प्रश्नों के अतिरिक्त एक प्रश्न यह भी रहता है कि उसके परिवार के रक्त-सम्बन्धी जीवित हैं अथवा नही। और जो मर चुके हैं, वे किन-किन रोगों से पीड़ित होकर मृत्यु को प्राप्त हुए थे। इन प्रश्नों के उत्तरों से पारिवारिक-रोगों तथा आयु की सम्भावना का पता चल जाता है, और प्रस्तावक के जीवित रहने की सम्भावना का भी अनुमान कर लिया जाता है। तदनुसार प्रस्ताव की जोखिम का निर्णय किया जाता है। इन सब बातों के अतिरिक्त प्रस्तावक के वज़न, ऊँचाई, वक्ष की चौड़ाई आदि की तालिका भी प्रस्तुत की जाती है। डाक्टर की रिपोर्ट में जीवन-मरण तथा रोग सम्बन्धी विवरण भी समन्वित रहता है।

नीचे स्वास्थ्य-परीक्षा रिपोर्ट और प्रस्तावक के स्वकीय बयान का एक उदाहरण दिया जाता है :—

एजेन्ट———————कम्पनी———————

प्रस्ताव-पत्र की संख्या————

प्रस्तावक का स्वकीय बयान

प्रस्तावक को निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर डाक्टर के सम्मुख स्पष्ट और उचित शब्दों में देना चाहिये। डाक्टर इन प्रश्नों के अतिरिक्त अन्य प्रश्न भी पूछ सकता है।

---

१. (क) प्रस्तावक का पूरा नाम	(क)
(ख) पूरा पता	(ख)
(ग) जाति और धर्म	(ग)
(घ) अगले जन्म-तिथि पर आयु	(घ)
(ङ) पेशा	(ङ)

(च) क्या किसी मदिरा का सेवन किया जाता है ? यदि हाँ, तो कौन-सी और कितनी दैनिक ली जाती है ?	(च)
(छ) कुंवारा, विवाहित, विधुर	(छ)
(ज) क्या तम्बाकू पी जाती है ?	(ज)
(झ) क्या अफीम, भंग या अन्य किसी निद्रा-उत्पादक नशे का सेवन किया है ?	(झ)
(ञ) क्या निश्चित प्रकार से शारीरिक व्यायाम किया जाता है ? या टेनिस इत्यादि खेल नियमित प्रकार से खेला जाता है ?	(ञ)
२. (क) क्या आप के शीतला निकल चुकीं ? यदि हाँ, तो कब निकलीं ?	(क)
(ख) क्या शीतला के चिह्न आप के शरीर पर हैं ?	(ख)
(ग) क्या आप ने शीतला का टीका लिया था ? कब ? क्या उसका निशान है ?	(ग)

३. क्या आप को कभी कोई सख्त चोट लगी है ? क्या आप ने कभी आप-रेशन कराया है ? क्या आप को अब किसी डाक्टर ने किसी रोग के लिये आपरेशन कराने की अनुमति दी है ? पूरा व्योरा दीजिये ।	
४. क्या हाल में आप के शरीर का तौल अधिक परिमाण में घट गया या बढ़ गया ?	
५. क्या किसी अस्पताल, चिकित्सालय, सैनेटोरियम में आप रहे हैं ? यदि रहे हैं, तो पूरा व्योरा लिखिये ।	
६. क्या आप के घर पर या और कहीं पिछले दो वर्ष में किसी क्षय रोगी से आप का सम्पर्क रहा है ? क्या आपने उसकी सेवा की है ?	
७. क्या आप को निम्न लिखित बीमा-रियाँ या इनमें से कोई बीमारी हुई है :— (क) सिर दर्द, चक्कर, मूर्छा, दौरा, मिरगी, पागलपन या मस्तिष्क की अन्य गड़बड़ी	(क)

(ख)	क्षय, स्थायी खांसी, थूक के साथ रुधिरपात, गुजराती, दमा, जुकाम नजला, गला बैठना, इन्फ्लुएन्जा या छाती का कोई अन्य रोग	(ख)
(ग)	अपच, मन्दाग्नि, पेचिश, दस्त, संग्रहणी, कब्ज, पीलिया, जलोदर, बवासीर, तिल्ली की वृद्धि, कुलञ्ज	(ग)
(घ)	जोड़ों में दर्द, दिल की धड़कन, हृदय रोग, टखनों पर सोजिश, श्वासोच्छ्वास, गुर्दा दर्द, आँत का उतरना।	(घ)
(ङ)	आतिशक, सूजाक, प्रमेह, लिङ्ग में सलाई, अण्डकोष-वृद्धि, पेशाब या पाखाने में खून आना, बहुमूत्र, मधुमेह।	(ङ)
(च)	मलेरिया बुखार, लाल बुखार, श्लेष्म ज्वर, काला बुखार, गठिया बुखार, मोती झूरा या अन्य प्रकार का ज्वर, प्रत्येक रोगों के साथ लिखिये कि कब और कितने समय तक आप पीड़ित रहे?	(च)

८. उपरोक्त रोगों के अतिरिक्त यदि किसी अन्य रोग से आप पीड़ित रहे हों तो बताव कि कब और कितने समय तक आपको उसके कारण पलंग पर या घर में पड़ा रहना पड़ा और इलाज कराना पड़ा ।	
९. (क) जहाँ तक आप जानते हैं, आप स्वस्थ हैं या नहीं ? (ख) क्या कोई ऐसा कारण आप को प्रतीत होता है जिससे आप को जीवन की सम्भावना में कमी हो ?	(क) (ख)
१०. क्या आप के रक्त-सम्बन्धियों में से किसी को तपेदिक, नासूर, पागलपन, मिरगी, गठिया, लकवा, मधुमेह हुआ है ? यदि इनमें से किसी रोग से मृत्यु हुई हो, तो बतलाइये किसकी, कब और किस आयु में ?	

११

	जीवित		मृत					
पारिवारिक इतिहास	आयु	स्वास्थ्य अच्छा या बुरा	आयु	मृत्यु का वर्ष	मृत्यु का विशेष कारण	बीमारी का समय	पहले का स्वास्थ्य
पिता							
माता							
संख्या भाई जीवित की संख्या मृत की संख्या मृत की संख्या जोड़							
संख्या बहिन जीवित की संख्या मृत की संख्या मृत की संख्या जोड़							
पति या पत्नी							
संख्या बच्चे बच्ची मृत की संख्या जीवित की संख्या							

प्रस्तावक ने मेरे समक्ष —————— ——स्थान पर——— ————दिन—सन्—ई० हस्ताक्षर स्वास्थ्य-परीक्षक	मैं विश्वास दिलाता हूँ कि उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर और बयान सही हैं और—————बीमा कम्पनी को जो मैं प्रस्ताव भेज रहा हूँ उसके ये अङ्ग हैं और मैं या मेरे बीमे के हिताधिकारी या होने वाले हिताधिकारी हम सब कानूनी मनादी को बरखास्त करते हैं कि कोई भी डाक्टर या अन्य व्यक्ति जो मेरा इलाज कर चुका है या मेरी बीमारी में मेरी सेवा कर चुका है, या भविष्य में ऐसा करे वह मेरे रोग और चिकित्सा के सम्बन्ध में किसी भी समाचार को जो उसको ज्ञात हुआ हो, प्रकट कर सकता है। —————— स्वास्थ्य-परीक्षक के समक्ष प्रस्तावक यहाँ पर हस्ताक्षर करता है।

स्वास्थ्य-परीक्षक की गुप्त रिपोर्ट

————————के जीवन के सम्बन्ध में

नोट : स्वास्थ्य-परीक्षक से निवेदन किया जाता है कि निदान की अपेक्षा प्रस्तावक के शारीरिक चिह्न और लक्षणों पर विशेष कर ध्यान दिया जाय।

१. (क) क्या प्रस्तावक से आप स्वयं परिचित हैं ?	(क)

(ख) क्या आपने स्वयं उसकी चिकित्सा की है ? यदि हाँ तो कब और किस रोग में।	(ख)
(ग) आप का परिचय उस से किसके द्वारा हुआ ?	(ग)
(घ) यदि उसके शरोर पर कोई पहिचान के चिह्न हों, तो लिखिये ।	(घ)
२. (क) क्या ऐसे चिह्न शीतला के है ?	(क)
(ख) क्या चेचक का टीका लगाने का कोई पर्याप्त प्रमाण है ?	(ख)
(ग) प्रस्तावक ने जो अपनी आयु बतलाई है, क्या उतनी आयु उसके शरीर से प्रतीत होती ह अथवा नही ?	(ग)
(घ) क्या उसके शारीरिक पतन के कोई चिह्न दृष्टिगोचर होते ह ?	(घ)
(ङ) क्या स्ट्रमस रोग का कोई प्रमाण प्रतीत होता है ?	(ङ)
३. (क) क्या शरीर की बनावट में कोई हीनता है ?	(क)
(ख) क्या कोई कारण प्रतीत होता ह जिससे सन्देह हो सके कि प्रस्तावक ने मदिरा सेवन में या किसी अन्य एसे पदाथ के सेवन में अतिक्रमण किया है या कर रहा ह ?	(ख)

४. साधारण शकल-सूरत (क) रङ्ग (ख) बनावट (ग) पुष्टि	(क) (ख) (ग)
५. लम्बाई—फीट—इंच यदि वजन अधिकतर है तो परम्परागत या मदिरा पीने से, या अधिक भोजन करने से, या शारीरिक अति परिपक्कण से है ? यदि कम वजन है तो परम्परागत या तपेदिक के कारण है ?	वजन स्टोन पाउण्ड
६. क्या आप ने लम्बाई और वजन की जाँच कर ली है ?	
७. कारडियो वैसक्यूलर सिस्टम हृदय के सम्बन्ध में Cordio Vascular System	
(क) कारडायक इम्पल्स का स्थान लिखिये	(क)
(ख) यदि हृदय की वैसक्यूलर प्रगति न्यूनाधिक है तो हृदय की व्यायाम प्रतिक्रिया की परीक्षा करें और सब विशेष शब्दों और स्वरों का वर्णन करें	(ख)

(ग) नाड़ी की चाल और संख्या लिखिये	(ग)————प्रति मिनट चाल
(घ) प्रस्तावक का ब्लडप्रेशर लेकर (उसका वर्णन करें)	(घ)

८. रैस्पीरेटरी सिस्टम (फेफड़ा और श्वास के सम्बन्ध में)

(क) यदि रचना में कोई अति-क्रमण हो तो लिखिये	(क)
(ख) सबक्लेवीक्यूलर (Sub-clavicular) वृद्धि को बयान कीजिये कि यथेष्ट है या समान या कम ?	(ख)
(ग) श्वासोच्छ्वास के शब्द का वर्णन करें कि हल्का, बढ़ा हुआ, या रुग्ण है ?	(ग)
(घ) परकशन (Percussion) नोट का वर्णन कीजिये कि आवाजदार, सुस्त या अन्यथा है ?	(घ)
(ङ) वोकल रिज़ोनैन्स और फ्रेमिटस (Vocal resonance and fremitus)	(ङ)
(च) श्वास की गति बतावें	(च)————प्रति मिनट
(छ) उरस्थल का माप	(छ) प्रबलता से श्वास भीतर लेने पर———— प्रबलता से श्वास बाहर निकालने पर————

९. एलिमैण्टरी सिस्टम	
(क) क्या मुख में पायोरिया विकार है ?	(क)
(ख) नाभी पर उदर का माप	(ख)
(ग) क्या सब अंग साधारण माप के और सुस्थान और कोमलता से शून्य है ?	(ग)
१०. प्रकीर्ण बातें	
(क) क्या गुठनों के झटके साधारण है ?	(क)
(ख) क्या दोनों नेत्रों की पुतलियाँ समान है और दृष्टि की दशा साधारण है ?	(ख)
(ग) क्या कोई कम्पन है या मस्तिष्क, रीढ़ की हड्डी या रगों में रोग का प्रमाण पाया जाता है ?	( )
(घ) क्या श्रवणशक्ति ठीक है ?	(घ)
(ङ) क्या कान, नाक या किसी नासूर से पीप तो नही बहता ?	(ङ)
(च) क्या नल का रोग तो नही है ? यदि है तो नल कितना उतरा है ?	(च)
(छ) क्या अण्डकोष की वृद्धि तो नहीं है ? यदि है तो उसका माप क्या है ?	(छ)

११. क्या प्रस्तावक ने आप के सम्मुख मूत्र किया था ?	मूत्र की स्पेमोफिक ा	प्रति क्रिया	रङ्ग	अन्तर्गत पदार्थ	शक्कर. . .परीक्षा ग्लव्यू. . .परीक्षा मन

१२. शारीरिक परीक्षा और परिवार के स्वास्थ्य-इतिहास से क्या आप प्रस्तावक के जीवन को प्रथम कक्षा का समझते हैं ? यदि नही समझते है तो क्यों ?	

ता०. . . . . .स्थान. . . . . .दिन. . . . . .मास. . . . . .१९. . . .ई०

हस्ताक्षर परीक्षक——————————————

परीक्षक की डिग्री और उसे प्राप्त करने का वर्ष——————

विश्वविद्यालय का डिप्लोमा——————————

कन्जॉयण्ट डिप्लोमा——————————

गवर्नमेंट स्वीकृत संस्था डिप्लोमा——————

पता——————————————

एजेन्ट तथा मित्र की रिपोर्ट : प्रस्तावक के स्वास्थ्य-परीक्षा के पश्चात् कम्पनी उसके सम्बन्ध में अपने उस एजेन्ट से एक रिपोर्ट लेती है जिसके द्वारा प्रस्ताव हुआ है। प्रस्तावक के एक अथवा दो मित्रों से भी रिपोर्ट मँगाई जाती है। इन रिपोर्टों का कम्पनी प्रस्ताव-पत्र और स्वास्थ्य-परीक्षा-रिपोर्ट से मिलान करती है। यदि किसी विषय में उनमें भेद लक्षित होता है तो उस विषय में कम्पनी प्रस्तावक को लिखती है। इसके पूर्व कि कम्पनी जोखिम को स्वीकार करे, इन सब रिपोर्टों पर विचार कर लेती है। एजेन्ट और मित्रों से जो रिपोर्टे

ली जाती है वे भी प्रश्नोत्तरी के रूप में होती है, और उनके छपे हुये फार्म कम्पनी की ओर से दिये जाते हैं ।

एजेन्ट की गुप्त रिपोर्ट

प्रस्तावक का नाम——————————

पता——————————

१. (क) क्या आप उनसे स्वयं परिचित हैं?	(क)
(ख). यदि हाँ, तो कितने समय से, या आप का उन से क्या सम्बन्ध है ?	(ख)
२. क्या आप का निश्चय है कि कम्पनी के डाक्टर से परीक्षा कराने वाला व्यक्ति प्रस्तावक ही है ?	
३. उनकी आयु कितनी जान पड़ती है ? (अनुमान से लिखिये)	
४. (क) क्या वे नियत और संयत जीवन व्यतीत करते है ?	(क)
(ख) क्या वे अब पूर्णतया स्वस्थ है ?	(ख)
५. (क) उनकी माहवारी आमदनी क्या ह ?	(क)
(ख) उनकी आमदनी का क्या साधन ह ?	(ख)

६. (क) क्या उनके किसी निकट सम्बन्धी की मृत्यु क्षय, कसर या ऐसी ही बीमारी से हुई ह अथवा पीड़ित ह ?	(क)
(ख) क्या आप की जानकारी में वे कभी अधिक समय तक बीमार रहे है ? (कृपया किसी विश्वसनीय साधन द्वारा इसका पता लगाइये)	(ख)
७. क्या आप का किसी प्रकार से इस बीमे में कोई हित है ?	
८. (क) क्या आप को पूर्णतया विदित है कि भूतकाल में प्रस्तावक ने अपने जीवन-बीमे के लिये प्रस्ताव-पत्र इस कम्पनी या किसी अन्य कम्पनी में दिया था ?	(क)
(ख) क्या वह कभी अस्वीकृत किया गया है ?	(ख)
(ग) क्या वह कभी अधिक किस्त पर या प्रस्तावित योजना के अतिरिक्त अन्य किसी योजना पर स्वीकृत हुआ है ?	(ग)

९. क्या आप उनकी बीमा स्वीकृति की सिफारिश बिना संकोच के करते हैं ?	
१०. वे कहाँ काम करते है ?	
११. मालिक का पूरा पता तथा नाम लिखिये, जहाँ वे काम करते हों।	

पूर्ण छानबीन के पश्चात् मैं यह घोषित करता हूँ कि ऊपर दिये गये उत्तर मेरी जानकारी तथा विश्वास के अनुसार ठीक है।

स्थान——————————तारीख————मास———वर्ष १९४ ई०

एजेन्ट के हस्ताक्षर——————मेरा वर्तमान लाइसेन्स नं०———ता०———

पूरा पता————————————————————————

प्रस्तावक के मित्र की रिपोर्ट

——————————बीमा कम्पनी के डाइरेक्टरों के प्रश्न——————को बाबत————————के स्वास्थ्य और स्वभाव

१. आप प्रस्तावक को कब से जानते है ?	(१)
२. क्या आप उनसे वहुधा मिला करते है ?	(२)
३. आप पिछली बार कब मिले थे ?	(३)
४. उनका साधारण स्वास्थ्य कैसा ?	(४)

५. जहाँ तक आप जानते है उनका स्वास्थ्य आज कल अच्छा है या नही ?	(५)
६. क्या आप जानते ह या आपने सुना है कि वे कभी बहुत बीमार हुये ? ऐसा हो तो सविस्तार वर्णन कीजिये ?	(६)
७. क्या उनके रक्त सम्बन्धियों में से कोई व्यक्ति क्षय, गठिया, पागलपन या किसी अन्य ऐसे रोग से ग्रस्त हुआ है ?	(७)
८. क्या उनका स्वभाव और जीवन-प्रकार नियमित और सुष्टु रहा है ?	(८)
९. क्या आपने सुना ह या आप जानते है कि उन्होंने अपनी आदतों में अतिक्रमण किया है ?	(९)
१०. उनके गत या वर्तमान स्वभाव, स्वास्थ्य या पेशे में कोई ऐसी बातें है जिनसे उनके शरीर में दुर्बलता हो जाय या उनका जीवन घट जाय या उनके जीवन-बीमे का जोखिम असाधारण हो जाय ?	(१०)
११. क्या आपका इनके इस बीमे में कोई निजी या अन्य प्रकार का स्वार्थ है ?	(११)

स्थान——————————तारीख——————————

मास..................१९४ .ई०

हस्ताक्षर मित्र.....................

उसका पेशा, वृत्ति या व्यवस्था ....

पता....................

प्रस्ताव की स्वीकृति : उपरोक्त सभी पत्रों के पहुँचने और उन पर विचार कर लेने के पश्चात् कम्पनी स्वीकृति अथवा अस्वीकृति का पत्र प्रस्तावक के पास भेजती है। यदि कम्पनी प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है तो प्रस्तावक से प्रीमियम की पहली किस्त चुकाने के लिये निवेदन करती है। प्राय: पहली किस्त जमा करने के लिये दो सप्ताह से लेकर एक मास तक का समय दिया जाता है किन्तु बीमा कम्पनी का उत्तरदायित्व उसी दिन से आरम्भ होता है जिस दिन प्रीमियम की पहली किस्त अदा कर दी जाती है । कुछ समय के पश्चात् कम्पनी प्रस्तावक के पास पालिसी भेज देती है।

आयु का प्रमाण (Proof of Age) : वैसे यह तो आवश्यक नहीं कि जब तक प्रस्तावक द्वारा बताई गई उसकी आयु प्रमाणित न हो जाय तब तक उसे पालिसी न दी जाय, तथापि श्रेयष्कर यही होता है कि प्रस्ताव के साथ ही साथ आयु का प्रमाण भी दे दिया जाय। यदि उसे पीछे ही देना हो तो अधिकाधिक शीघ्रता करनी चाहिये, क्योकि यदि पहले ही से आयु प्रमाणित नही है तो अन्त में दावे के भुगतान के समय कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं। निम्नांकित प्रमाणों में से कोई भी आयु सिद्ध करने के लिये दिया जा सकता है:—

(१) म्यूनिसिपैलिटी आदि में जन्म के समय के कागजों से सप्रमाणित

(२) यदि ईसाई हो तो बपतिस्मे का प्रमाण-पत्र, यदि उसमें जन्म तिथि अथवा आयु अंकित हो।

(३) जन्म-काल के समय का बना हुआ वास्तविक जन्म-पत्र।

(४) स्कूल अथवा कालिज के रजिस्टरों से प्रमाणित नकल, यदि उनमें आयु अथवा जन्म-तिथि अंकित हो।

(५) सरकारी अथवा सरकारी माने जाने वाले कार्यालयों के कर्मचारियों के सर्विस-रजिस्टर की नकल, यदि उनमें जन्म अथवा स्कूल के प्रमाण-पत्र के अनुसार आयु लिखी गई हो।

अन्य आवश्यक बातें

बीमे की किस्तें : बीमे की किस्तें वार्षिक, छमाही, तिमाही अथवा प्रतिमास भी चुकाई जा सकती हैं। बीमे की किस्तें विभिन्न पालिसियों के लिये विभिन्न होती हैं। किस्त की दर प्रस्तावक की आयु के अनुसार न्यूनाधिक होती है।

जितनी ही अधिक आयु में बीमा कराया जाता है, प्रीमियम की किस्त की दर उतनी ही अधिक होती है। बीमा कम्पनियों की विवरण-पत्रिका में जो दरें दी हुई रहती हैं, वे सदैव १०००) के बीमित-धन के लिये ही होती हैं।

साधारणत: किस्तें वार्षिक ही चुकाई जाती है, किन्तु बीमितों की सुविधा के लिये छमाही, तिमाही अथवा मासिक रूप में भी बीमा-कम्पनियाँ उन्हें स्वीकार करती हैं। छमाही, तिमाही और मासिक किस्तें मशः वार्षिक प्रीमियम के १/२, १/४, और १/१२ से कुछ अधिक होती हैं। ये रक़में जो ठीक अनुपात से अधिक प्राप्त की जाती है, उनका उद्देश्य कम्पनी की ब्याज की हानि तथा वसूली के व्यय की पूर्ति होता है।

यदि कोई मासिक, तिमाही अथवा छमाही किस्तों में अपना प्रीमियम

हो जाय, तो दावे का भुगतान करते समय जितनी किस्तें बीमा-पत्र के वर्ष की शेष रह गई हैं, उनकी रकम बीमित-धन से काट ली जाती है।

वार्षिक, छमाही तथा तिमाही किस्तों के चुकाने के लिये एक महीने की अवधि दी जाती है। किन्तु मासिक किस्तों के चुकाने के लिये केवल पन्द्रह दिनों का ही समय दिया जाता है।

किस्तों के चुकाने की तारीख की सूचना बराबर बीमित-व्यक्ति को बीमा कंम्पनी द्वारा दी जाती है, जिससे वह अपनी थोड़ी-सी भूल के कारण बीमे के लाभ से हाथ न धो बैठे। परन्तु कानून की दृष्टि से कम्पनी इस प्रकार की सूचना देने के लिये वाध्य नहीं होती। प्रीमियम की किस्त न चुका सकने पर सूचना प्राप्त न कर सकने का कारण व्यर्थ समझा जाता है। बीमा कम्पनियों द्वारा प्रकाशित प्रीमियम की किस्तों की दरें औसत व्यक्तियों (Average lives) पर ही लागू होती हैं, अर्थात् वे उन्हीं व्यक्तियों के लिये होती हैं जो युद्ध अथवा ऐसे ही अन्य भयप्रद व्यवसाय अथवा स्वास्थ्य के लिये हानिप्रद जलवायु में नहीं पड़ते।

बीमा-पत्र (The Policy) : बीमा कम्पनी पहला प्रीमियम अथवा उसकी पहली किस्त प्राप्त होने पर बीमित (Insured) के पास बीमा-पत्र भेज देती है। उसमें बीमा-कॉन्ट्रैक्ट की सभी शर्तें अंकित रहती है। बीमा-पत्र पर कम्पनी की मुहर और दो डायरेक्टरों तथा मैनेजरों के हस्ताक्षर भी रहते हैं। उसमें साधारणतः निम्नांकित बातें लिखी रहती है :—

(१) बीमित का नाम, पता, व्यवसाय और दूसरे जन्म-दिवस पर उसकी अवस्था;

(२) बीमित-रकम और पालिसी की किस्म—लाभ-सहित अथवा लाभ-रहित;

(३) प्रीमियम की रकम और उसे चुकाने का समय;

साय को अपनाता है तो यह सूचना बीमा कम्पनी को देने का बीमित का उत्तरदायित्व;

(५) पालिसी रद हो जाने के मामले;

(६) बीमे की समाप्ति तथा पुनर्जीवन (Lapsation and per-ival);

(७) पालिसी का तात्कालिक-मूल्य (Surrender Value);

(८) पालिसी का नाम-लेखन (Nomination);

(९) दावे का भुगतान।

पालिसी का प्रदान (Assignment) : सन् १९३८ के भारतीय बीमा-विधान की ३८वी और ३९वी धाराओं के अनुसार पालिसी को किसी अन्य व्यक्ति के नाम में प्रदान करने की सूचना कम्पनी के कार्यालय में रजिस्ट्री कराने के लिये भेजनी चाहिये। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं:—

(१) इस प्रकार की लिखा-पढ़ी या तो पालिसी की पीठ पर ही अथवा एक पृथक् कागज़ पर टिकट लगा कर बीमित के हस्ताक्षरों द्वारा की जा सकती है। इस पर एक गवाह का हस्ताक्षर होना भी आवश्यक है।

(२) पालिसी और प्रदान-पत्र (Deed of Assignment) सहित प्रदान की लिखित सूचना एक रूपया प्रति परिवर्तन-शुल्क के साथ कम्पनी के पास भेजनी चाहिये। इसके बदले में कम्पनी एक लिखित स्वीकृति-पत्र भेज देगी।

यदि पालिसी को किसी के नाम में प्रदान करने के पूर्व ही बीमित की मृत्यु हो जाती है, तो बीमे का रूपया उसके उत्तराधिकारियों को मिलता है। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि जिसके नाम में बीमित पालिसी प्रदान करता है उसका बीमित के जीवन में बीमा-योग्य हित का होना आवश्यक नहीं होता।

अध्याय ७

जीवन बीमे के सिद्धान्त

प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि भविष्य अनिश्चित है। आगे चल कर उसके जीवन में कब क्या होगा, कोई भी निश्चयपूर्वक नही कह सकता, वह स्वयं भी नही। जीवन भी इसी प्रकार अनिश्चित तथा अस्थिर होता है। कब किसी व्यक्ति की जीवन-लीला का अन्त हो जायगा, यह कौन कह सकता है! सम्भव है, वह पूरे १०० वर्ष अथवा उससे भी अधिक समय तक जीवित बना रहे; किन्तु साथ ही यह भी असम्भव नही कि दूसरे ही क्षण उसकी हृदय-गति रुक जाय और उसे इस संसार रूपी पथिकाश्रम से कूच कर देना पड़े। तथापि बीमा कम्पनियाँ अधिकांशतः इस बात का सही अनुमान लगा लेती है कि बीमितों में से किसी अमुक वर्ष में कितने मृत्यु को प्राप्त होंगे तथा कितने जीवित रहेंगे। यद्यपि उनका यह अनुमान ही होता है, पर सत्य तथा इस अनुमान में विशेष अन्तर नहीं हुआ करता। अतएव, यह कहा जा सकता है कि बीमा-कम्पनियाँ अनिर्दिष्ट में से निर्दिष्ट को खोज निकालती हैं। उनकी इस क्रिया का आधार उनके अतीत का अनुभव होता है। दूसरे शब्दों में, बीमा-कम्पनियाँ अपने बीमितों को उनकी आयु के अनुसार कई श्रेणियों में विभक्त कर लेती हैं। फिर किसी अमुक आयु-श्रेणी की भूतकालीन मृत्यु-संख्या का औसत निकाल कर किसी भी वर्ष के लिये उस आयु-श्रेणी की मृत्यु-संख्या की सम्भावना प्राप्त कर लेती हैं। उदाहरणार्थ हो सकता है कि पिछला अनुभव यह हो कि बीमा-योग्य पच्चीस वर्षीय प्रति दस सहस्र व्यक्तियों में से औसतन ६५—६६ व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है, अथवा तीस वर्षीय प्रति दस सहस्र व्यक्तियों में से औस-

तन ७३—७४ व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। यद्यपि इन व्यक्तियों में से यह तो कोई भी निश्चय पूर्वक नहीं कह सकता कि वह अमुक अवस्था तक अवश्य ही जीवित रहेगा, तथापि बीमा-कम्पनियाँ अपने उपर्युक्त श्रेणी के अनुभव के आधार तथा विद्यमान परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए यह अनुमान लगा सकती है कि इस वर्ष अमुक आयु-श्रेणी के कितने व्यक्तियों की मृत्यु होगी। अतः वे यह भी निश्चय कर सकती है कि किस समय कितने दावों, का भुगतान करना होगा। उपर्युक्त तथ्यों का अनुमान बीमा-कम्पनियाँ औसत के सिद्धान्त पर लगाती है।

अब हमें देखना है कि यह औसत का सिद्धान्त, जिसकी सहायता से बीमा-कम्पनियाँ इतना कठिन कार्य सम्पादित कर लेती हैं, क्या है। श्री जेम्स बर्नोइली (James Bernouilli) ने इस सिद्धान्त को अधिक-संख्या प्रयुक्त सिद्धान्त (Theorem of Large numbers) कह कर पुकारा है। उनके अनुसार यह सिद्धान्त निम्न प्रकार है:—

(१) किसी एक परीक्षा में घटनाओं के जिस अनुपात के होने की सम्भावना होती है, उसी अनुपात से किसी दूसरे अनुपात की अपेक्षा सम्भावना बड़ी संख्या की घटनाओं के परीक्षणों में भी पाई जाती है। (That the probability of events in numbers proportionate to their respective chances in a single trial is greater, the greater the number of trial and observations)

(२) इस तथ्य को जानने के लिये किसी ऐसी संख्या तक प्रयोगों को दुहराते जाने की आवश्यकता पड़ती है, जिससे सम्भावनाओं का परिणाम हमारे इच्छानुकूल अनुपात के निकटतम आ जाय। इस बात को जेम्स बर्नोइली द्वारा इस प्रकार कहा गया है। (That the number of observations or experiments may be so determined that the probability of events happening in numbers within any specified limits of deviation from the proportion, just

mentioned, however narrowly those limits may be, approach to certainty as closely as is wished.)*

इस सिद्धान्त को समझने के लिये एक उदाहरण लीजिये। कल्पना कीजिए कि एक सिक्के को ऊपर की ओर उछाला जाता है। वह पृथ्वी पर कभी चित पड़ेगा और कभी पट।† एक बार इस क्रिया को ४०४० बार दुहराया गया। तब सिक्का २०४८ बार चित गिरा और १९९२ बार पट गिरा। ऐसा ही प्रयोग फिर किया गया। इस बार सिक्का ४०९२ बार उछाला गया और वह २०४८ बार चित तथा २०४४ बार पट गिरा। अर्थात् सहस्रों बार उछालने पर भी सिक्का लगभग समान संख्या में चित और पट पड़ा। ऐसे परीक्षणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक बार परीक्षा करने पर जो परिणाम निकलता है और उसमें घटनाओं की सम्भावनाओं में जो पारस्परिक अनुपात होता है, वही अनुपात बार-बार परीक्षण करने पर भी स्थिर रहता है। इसे अंक-शास्त्रीय नियमन का सिद्धान्त (Law of Statistical Regularity) भी कहते हैं।

ाी सिद्धान्त को जीवन और मृत्यु के सामञ्जस्य पर भी लागू कर सकते हैं। मान लीजिये कि एक ही समय १००० शिशु जन्म लेते हैं और स्थानीय-संस्थाएँ (Local bodies) उनके जीवन-मरण का ठीक-ठीक विवरण रखती हैं। यदि ऐसे लेख से यह ज्ञात होता कि प्रथम वर्ष पूर्ण होने पर हजार में से केवल ९०० शिशु ही जीवित बचते हैं, तो हम कह सकते हैं कि प्रत्येक बालक की एक वर्ष तक जीवित रहने की सम्भावना ९००/१००० अथवा ९/१० है। यह सम्भावना और भी दृढ़ हो जायगी यदि हम शिशुओं की संख्या एक सहस्र के स्थान पर अगणित मान लें। इस उदाहरण से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि जब असंख्य बार किसी घटना की परीक्षा की

---

*दे० Mowbray, A. H. : Insurance : Its theory and Practice in the United States (1937) ; p. 16.

†दे० T. E. Young : Insurance ; p. 16

जाती है और अनुभव प्राप्त किये जाते है और यदि इन अनुभवों में कोई विशेष अन्तर नही पड़ता, तो उस घटना की सम्भावना निश्चितप्राय हो जाती है। इसी नियम को सम्भावनाओं का सिद्धान्त (Theory of Probability) कहते हैं। इसी सम्भावनाओं के सिद्धान्त पर बीमा की परिपाटी की रचना हुई है।

अमुक आयु के कितने मनुष्यों की अमुक वर्षो में मृत्यु होगी, इसका कारण दैवी संयोग नही कहा जा सकता। यह वास्तव में इसी सम्भावनाओं के सिद्धान्त (Theory of Probability) अथवा औसत का सिद्धान्त (Theory of Average) अथवा अधिक-संख्या प्रयुक्त सिद्धान्त (Theorem of Large numbers) पर ही अवलम्बित है। यह नियम इतना अचल और विश्वसनीय है कि इसी के आधार पर जीवन-बीमा के व्यवसाय के विस्तृत-भवन का निर्माण किया गया है।

इसी सिद्धान्त के अनुसार मृत्यु-संख्या की तालिकायें तैयार की जाती हैं। इनसे एक ही समय में जन्म लेने वाले मनुष्यों में से प्रतिवर्ष कितनी आयु के कितने मनुष्यों की मृत्यु होगी और कितने जीवित रहेगे, इसका ज्ञान हो जाता है। इनकी सहायता से इस बात का निश्चय भी सरलतापूर्वक किया जा सकता है कि अमुक आयु के प्रस्तावकों से अमुक अवधि की पालिसी के लिये कितना प्रीमियम लेना चाहिये।

उपर्युक्त सिद्धान्तों तथा उदाहरणों से यह प्रगट हो जाता है कि जीवन-बीमा में जोखिम, विशिष्ट अवस्था में रकम के भुगतान की सम्भावना से नापी जाती है। बीमा का कॉन्ट्रैक्ट, आरम्भ होने के साथ बीमित-धन ही जोखिम का माप होता है।

आरम्भ में अपनी जोखिम की सीमा निश्चित करने में बड़ी सतर्कता से काम लेना पड़ता है। एक ही जीवन पर जोखिम का पूर्ण भार छोड़ देना अति अहितकर होता है, क्योंकि यदि वह एक व्यक्ति मर जाय तो उसके बीमे का भुगतान कम्पनी के लिये एक अड़चन की बात हो सकती है। बीमितों की

संख्या बढ़ने के साथ-साथ जोखिम की मात्रा भी क्रमशः अल्पतर होती जाती है, क्योंकि वह उनके बीच विभक्त होती जाती है। जब तक बीमितों की संख्या न्यून रहती है तब तक यह सम्भावना बनी रहती है कि उनमें से यदि कई व्यक्ति एक साथ ही मर जायँ, तो उनके दावे एक ही समय पर चुकाने में कम्पनी को कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। किन्तु जब बीमितों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। तो जोखिम की मात्रा भी अधिक नही रहती, क्योंकि सम्भावनाओ के सिद्धान्त के अनुसार सभी बीमित व्यक्तियों की मृत्यु एक ही समय पर होना असम्भव है।

बीमा-योग्य व्यक्तियों का चयन

बीमा-योग्य व्यक्तियों का सतर्कतापूर्वक चयन बीमा-संस्था के लिये परमावश्यक है। माता-पिता और भाई-बहिन के जीवन, उनके स्वास्थ्य तथा मृत्यु के कारणों का निरीक्षण, प्रस्तावक के स्वभाव का अध्ययन आदि स्वास्थ्य-परीक्षा के साथ बीमा कराने के प्रस्ताव भेजने पर कम्पनी द्वारा किया जाता है। स्वास्थ्य-परीक्षक डाक्टर की इन बातों पर जो सम्मति होती है, उस पर बीमा-कम्पनी विचार करती है और प्रस्तावकों में से केवल उन्ही व्यक्तियों का बीमा स्वीकृत करती है जिनके विषय में दीर्घ-जीवन की सम्भावना होती है।

इस प्रकार चुनाव करने से कम्पनी के पास ऐसे व्यक्तियों का समूह हो जाता है जिनका स्वास्थ्य अपेक्षाकृत उत्तम होता है। अच्छा स्वास्थ्य होने के कारण उनकी अकाल-मृत्यु की सम्भावना बहुत कम रह जाती है। यदि डाक्टरों द्वारा कठिन परीक्षा करा कर बीमा कराने के इच्छुक व्यक्तियों में से बीमा-योग्य व्यक्तियों का चुनाव किया जाय तो कम से कम.एक निश्चित अवधि तक मृतकों की संख्या अधिक नहीं होगी। इस प्रकार एक नव-स्थापित बीमा-कम्पनी को आरम्भ में बहुत थोड़ी संख्या में दावे भुगतान करने होंगे। फलतः, उसका स्थायी-कोष बढ़ता जायगा। इससे बीमा-कम्पनी को यह लाभ होगा

कि आरम्भ में बीमा कराने वाले प्राणियों के दावों को चुकाने के लिये नियत समय के आगमन के पूर्व ही कई अन्य स्वस्थ व्यक्ति बीमा करा लेंगे और उनसे प्राप्त किस्तों से कम्पनी का कोष और भी बढ़ जायगा। सावधानी से चुने हुए व्यक्तियों का बीमा करने से केवल नवीन-संस्थाओं को ही लाभ नहीं होता। इससे पुरानी कम्पनियों को भी अनेक लाभ होते हैं। इसका कारण यह होता है कि उनके यहाँ अच्छे स्वास्थ्य वाले वृद्धो के साथ-साथ नवयुवकों की संख्या भी बढ़ती जाती है। परिणाम यह होता है कि मृत्यु-दर (Death rate) अधिक होने की सम्भावना अधिक नही हो पाती और कम्पनी के दावे भुगतान करने का दायित्व भी लगभग पूर्ववत् ही रहता है।

अध्याय ८

मृत्यु-तालिकाएँ

बीमा-व्यवसाय को सफलतापूर्वक चलाने के लिये मृत्यु-तालिकाएँ अर्थात् मृत्यु सम्बन्धी अतीतानुभवों के लेखों की विद्यमानता अति आवश्यक होती है, क्योंकि उक्त अनुभवों के आधार पर ही बीमा-व्यवसायी अपने बीमितों की भावी मृत्यु-संख्या तथा उसके फलस्वरूप उदय होने वाले दावों का अनुमान लगा सकते हैं। अस्तु, एक मृत्यु-तालिका की निम्नांकित परिभाषा हो सकती है।

'यह वह साधन है जिसके द्वारा मृत्युओं के अतीतानुभव के आधार पर भावी मृत्यु-दर का अनुमान लगाया जा सकता है।'*

वैसे यह कहना तो एक प्रकार से असम्भव ही है कि किसी अमुक व्यक्ति की मृत्यु अमुक समय पर होगी; किन्तु एक विशिष्ट जन-समुदाय के कितने सदस्य प्रतिवर्ष काल-कवलित होते रहेंगे, इसका एक समीचीन अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है। इस अनुमान का साधन मृत्यु-तालिकाएँ ही होती है, जैसा कि हम अभी कह चुके हैं।

इतिहास

प्राथमिक मृत्यु-तालिकाएँ : जिस समय सर्वप्रथम मृत्यु-तालिकाओं की आवश्यकता बीमा-व्यवसायियों को अनुभव हुई, उस समय उन सामग्रियों का

*The mortality table has been defined as "the instrument by means of which are measured the probability of life and death." Maclean : Life Insurance (1945); p. 72.

नितान्त अभाव था जो उनकी रचना के निमित्त आवश्यक होती हैं; जैसे, मृत्यु सम्बन्धी लिखित पूर्वानुभव, किसी निश्चित अवस्था में मरने वालों की यथार्थ संख्या आदि। अतः उस समय उन्होंने स्मशान-बहियों (Burial Registers) को ही अपनाया। इन बहियों के अतिरिक्त उनके पास अन्य कोई साधन न था। इनसे कम से कम साधारण मृत्यु-संख्या तो प्राप्त की ही जा सकती थी। अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ से अन्त तक तीन मृत्यु-तालिकाओं की रचना उपर्युक्त सामग्री की ही सहायता से हुई—(१) ब्रेसलू (Breslau) नामक जर्मन नगर की सन् १६८७-१६९१ तक की स्मशान-बहियों के आधार पर तत्कालीन प्रसिद्ध ज्योतिषी श्री० एडमन्ड हेली (Edmund Halley) द्वारा रचित 'हेली-तालिका', (२) लन्दन नगर के सन् १७२८-१७३७ तक के मृत्यु-पत्रों (Bills of Mortality) के आधार पर कप्तान ग्रान्ट (Captain Graunt) द्वारा रचित 'ग्रान्ट-तालिका' और (३) नार्थहैम्पटन नगर की सन् १७३५-१७८० तक की स्मशान-बहियों के आधार पर निर्मित 'नार्थहैम्पटन-तालिका'।

उक्त मृत्यु-तालिकाओं का सर्वप्रधान अवगुण यही था कि वे केवल मृत्यु-दर पर ही आधारित थीं। अतएव, उनसे यह तो अवश्य ज्ञात किया जा सकता था कि किसी अमुक आयु के जन-समूह के कितने व्यक्ति किसी वर्ष में संसार से प्रयाण करेंगे; किन्तु उस वर्ष कितने व्यक्ति जीवित रहेंगे, यह अनुमान लगा सकना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता था। इस कठिनाई का मुख्य कारण यह था कि उस समय जन-संख्या के निर्माण के तत्व, जन-संख्या के आँकड़े आदि अप्राप्य थे। इसलिये मृत्यु-तालिकाओं की रचना करते समय यह पूर्व-कल्पना कर ली जाती थी कि प्रति वर्ष जन्म तथा मृत्यु संख्याएँ समान ही रहती हैं। इस कल्पना के द्वारा जनसमूह विशेष के जीवित सदस्यों की संख्या किसी भी वर्ष के लिये ज्ञात की जा सकती थी। इन बातों का अर्थ यह हुआ कि मृत्यु-तालिकाओं के रचयिता यह पहले से ही मान लेते थे कि जन-संख्या सदैव स्थिर रहती है—न्यूनाधिक नहीं होती। किन्तु संसार के किसी भी कोने में ऐसा कभी नहीं हुआ और न इसकी

सम्भावना ही है, क्योंकि यह उसके स्वभाव के जो अस्थिर तथा परिवर्तनशील है, प्रतिकूल है। किसी भी भूभाग की जन-संख्या तभी स्थिर रह सकती है जब कि वहाँ आवास-प्रवास न होता हो; निवासियों के स्वास्थ्य तथा जीवन-शक्ति में कोई परिवर्तन न होता हो; जीवन-यापन के तारतम्य में कोई व्यवधान उपस्थित न होता हो और जितने व्यक्ति वहाँ उत्पन्न होते हों उतने ही प्रतिवर्ष मर जाते हों।

जो हो, प्रारम्भिक तालिकाओं में अनेक मूलभूत दोष होते हुए भी उनका प्रचार हुआ और नार्थहैम्पटन-तालिका ने सर्वाधिक ख्याति प्राप्त की। श्री० जेम्स डॉसन तथा टॉमस सिमसन ने हेली-तालिका के आधार पर बीमा के प्रीमियम की क़िस्तें निश्चित की। उनके प्रयोग से लोगों ने कालान्तर में अनुभव किया कि यदि प्रीमियम की दरें केवल मृत्यु-दर पर ही आधारित की जाती हैं तो वे आवश्यकता से अधिक भारी होंगी।

कारलिस्ली तालिका (Carlisle Table) : इस त्रुटि का संशोधन श्री० जोशुआ मिल्स नामक सज्जन ने किया। उन्होंने मृत्यु-संख्या को ही अपनी तालिका का आधार नहीं बनाया, वरन् एक विशिष्ट जन-समुदाय में से पृथक्-पृथक् आयु के एक वर्ष में मरने तथा जीवित रहने वाले व्यक्तियों के पारस्परिक अनुपात के सिद्धान्त को अपनाया। अपनी तालिका के लिये आँकड़े उन्होंने कारलिस्ली क्षेत्र की दो बस्तियों के मृत्यु-लेखों तथा उस क्षेत्र की १७८० और १७८७ की जन-गणनाओं से प्राप्त किये थे। कारलिस्ली क्षेत्र के आँकड़ों पर आधारित होने के कारण ही यह तालिका 'कारलिस्ली-तालिका' के नाम से विख्यात हुई। पर्याप्त समय तक बीमा संस्थाएँ अपना व्यवसाय इसी के आधार पर चलाती रहीं। पूर्ववर्ती तालिकाओं से अधिक विश्वस्त तथा वास्तविक होने के कारण ही इसकी प्रसिद्धि हुई। वर्त्तमान समय में भी कहीं-कहीं इस का उपयोग किया जाता है। संक्षेप में कारलिस्ली-तालिका मृत्यु-तालिकाओं के विकास का द्वितीय अध्याय समाप्त करती है।

आधुनिक तालिकाएँ : जीवन-बीमा के प्रचार के साथ-साथ बीमा-संस्थाओं का मृत्यु-संख्या सम्बन्धी ज्ञान क्रमशः वृद्धि करता गया, जिसके फलस्वरूप वे तत्सम्बन्धी आँकड़े विशाल परिमाण में संगृहीत कर सकीं। उनके वे आँकड़े स्पष्टतः अधिक विश्वसनीय थे क्योंकि इनका संकलन उन्होंने स्वानुभव से किया था। विभिन्न बीमा-कम्पनियों ने प्रथम तो उक्त अनुभव के आधार पर अपनी-अपनी पृथक् तालिकाएँ बनाने की योजनाएँ बनाई। किन्तु कालान्तर में उन्होंने देखा कि किसी एक संस्था द्वारा एकत्रित आँकड़ों के आधार पर रची हुई तालिका उतनी उपयोगी तथा विश्वस्त नहीं हो सकती जितनी कि कई संस्थाओं द्वारा एकत्रित आँकड़ों के आधार पर निर्मित संयुक्त तालिका। अतः उन्होंने परस्पर सहयोग कर के संयुक्त तालिकाओं का निर्माण किया। इसी प्रकार की तालिकाएँ आधुनिक मृत्यु-तालिकाओं का प्राथमिक रूप हैं।

सन् १८४३ ई० में कई बीमा-विशेषज्ञों ने एक परिषद् की स्थापना कर के १७ बीमा-संस्थाओं के जीवन-मरण सम्बन्धी आँकड़े एकत्रित किये और सर्व-प्रथम संयुक्त मृत्यु-तालिका की रचना की। फिर सन् १८६९ ई० में बीमा-गणितज्ञ (Actuaries) संस्था की ओर से २० बीमा कम्पनियों के आँकड़े संगृहीत करके एक तालिका बनाई गई। उक्त बीस कम्पनियों में से कुछ तो इंगलैण्ड की थीं और कुछ स्काटलैण्ड की। यह तालिका "स्वस्थ्य पुरुष ५" [H. M. 5—H=Healthy] (स्वस्थ), M=Males (पुरुष), 5=पाँच अर्थात् बीमा होने के प्रथम पाँच वर्ष पश्चात्) के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसे दीर्घकालीन विशाल अनुभव के आधार पर अत्यन्त सावधानी एवं चातुर्य से बनाया गया था। अतः प्रकाशन के पश्चात् शीघ्र ही लगभग सभी बीमा-कम्पनियों ने उसे अपना लिया और वह प्रामाणिक समझी जाने लगी। सन् १८९३ तक, जब कि ब्रिटिश कम्पनियों की तालिकाएँ प्रकाशित हुईं, उसका सर्वत्र प्रचार रहा।

ये नवीन तालिकाएँ साधारण पुरुषों के जीवन के अनुभव के आधार पर बनाई गई थीं और "साधारण पुरुष ५ तालिकाएँ" (O. M. 5 Tables) के नाम

से विख्यात हुईं । इन के निर्माण के उद्देश्य "स्वस्थ पुरुष ५ तालिका" की यथार्थता की समीक्षा और उसमें संशोधनों के उपाय खोजने थे । लगभग ६० बीमा-संस्थाओं के आँकड़ों पर ये आश्रित थी । प्रकाशन के पश्चात् शीघ्र ही इन्होंने स्वस्थ पुरुष ५ तालिका को पदच्युत कर दिया । सबसे अन्त में सन् १९३४ में बीमा-गणितज्ञों की तालिकाएँ प्रकाशित हुईं । इन अन्तिम तालिकाओं की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इन्होंने यह स्पष्टतः प्रदर्शित कर दिया है कि डाक्टरों द्वारा परीक्षित तथा अपरीक्षित व्यक्तियों की मृत्यु-दरों में कोई विशेष अन्तर नहीं होता । इस यथार्थता के प्रकाश में आने का परिणाम यह हुआ है कि वर्त्तमान समय में बीमा का क्षेत्र अत्यन्त विशाल हो गया है और वह प्रति दिन विस्तृत होता जा रहा है ।

हमारे देश में मृत्यु-तालिका सम्बन्धी कोई उल्लेखनीय अनुसंधान नहीं हुआ है । अपने अनुभव के आधार पर केवल ओरिएण्टल बीमा कम्पनी ने हिन्दुओं के स्वस्थ जीवन की मृत्यु-तालिका का निर्माण किया है किन्तु इसकी व्यापक प्रामाणिकता के विषय में ठीक से नही कहा जा सकता । वास्तव में, इस देश में मृत्यु-तालिका तैयार करने में अनेक कठिनाइयाँ है ।* पहली कठिनाई यह है कि जीवन-बीमा-कम्पनियाँ अधिकांशतः इस क्षेत्र में नई है अतएव उनके अनुभव का क्षेत्र अभी संकुचित है और इनके व्यवसाय के आँकड़े (Statistics) मृत्यु-तालिका के लिये पर्याप्त नही है । इसके अतिरिक्त बीमा-गणितज्ञों (Actuaries) की संख्या भी कम है । फिर इस कार्य को सम्पादित करने के लिये हमारे देश में कोई केन्द्रीय संस्था नहीं है ।

मृत्यु-तालिकाओं का निर्माण
(Construction of Mortality Tables.)

जब हम किसी जनसमूह की तृत्यु-तालिका निर्मित करना चाहते हैं, तब हमें तीन बातों की आवश्यकता होती है : (१) उस जनसमूह की आयु,

*दे० National Planning Committee : Report on Insurance (1948); pp. 89—90.

(२) उस आयु के प्रारम्भिक वर्ष में जीवित व्यक्तियों की संख्या और (३) उस आयु के एक वर्ष में मरने वालों की संख्या। उक्त बातें निम्नांकित उदाहरण द्वारा अधिक स्पष्ट हो जायेंगी।

मृत्यु-तालिका

जनसमूह की आयु Age of the Group	आयु के प्रारम्भिक वर्ष में जीवित व्यक्तियों की संख्या No. of lives exposed to risk of death	एक वर्ष में मृतकों की संख्या No of deaths during the year	मृत्यु-दर प्रति सहस्र Mortality rate per thousand
२४	२,०००	८	४·०
२५	१,५००	१०	६·७
२६	१,२००	९	७·५
२७	१,९००	१२	६·३

किसी आयु के जनसमूह में एक वर्ष में हुई मृत्युओं को यदि आरम्भ की जीवित-संख्या से विभाजित कर दिया जाय तो उस की मृत्यु-दर ज्ञात हो जाती है। व्यावहारिक रूप में उसे प्राय: प्रति १००० व्यक्तियों पर ही आँका जाता है। जब इसका प्रयोग किया जाता है, तब यह कल्पना कर ली जाती है कि भूत-कालीन अनुभव के सदृश ही भविष्य का अनुभव भी होगा।*

बीमा-संस्थाओं की मृत्यु-तालिकाएँ

ये दो प्रकार से बनाई जा सकती हैं—एक तो जन-गणना द्वारा प्राप्त जन-संख्या के आँकड़ों के आधार पर और दूसरे बीमा-कम्पनियों के भूतकालीन अनुभव अर्थात् जीवन-बीमा के आँकड़ों के आधार पर।

*Maclean : Life Insurance; p. 7[illegible] (1935)

जीवन-बीमा के आँकड़ों के आधार पर निर्मित मृत्यु-तालिकाएँ: कोई भी बीमा-कम्पनी बीमितों के मृत्यु-सम्बन्धी अपने अतीतानुभव के अंकों का निरीक्षण कर के अपनी निजी तालिका बना सकती है। इसके लिये उसे एक सारिणी (Schedule) बनानी पड़ती है। उसके एक स्तम्भ में विगत वर्ष के सभी बीमितों को उनकी आयु के अनुसार पृथक्-पृथक् समूहों में विभक्त करके दिखलाया जाता है और दूसरे स्तम्भ में उसी वर्ष में प्रत्येक समूह की मृतक-संख्या को। इसे सर्वप्रथम बीमा-योग्य आयु से लेकर अन्तिम बीमा-योग्य आयु तक बनाया जाता है—अस्सी, नब्बे अथवा इससे भी अधिक वर्ष की अवस्था तक। इस प्रकार किसी समूह के एक वर्ष में मृतकों और उसी वर्ष के आरम्भ में जीवितों की संख्या में जो अनुपात होता है वही समूह विशेष की मृत्यु-दर होती है। किन्तु इस मृत्यु-दर को उक्त रूप ही में नहीं रखते; उसे प्रति सहस्र के हिसाब से दिखलाया जाता है। एक बीमा कम्पनी की एक वर्ष के अनुभव पर आधारित मृत्यु-तालिका का एक अंश नीचे उदाहरण-स्वरूप दिया जा रहा है।

मृत्यु-तालिका

आयु Age	बीमितों की संख्या Numbers Insured	मृतकों की संख्या No. of Deaths	मृत्यु-दर प्रति सहस्र Mortality Rate per thousand
१५	१,८००	५	२·८
१६	१,६००	६	३·८
१७	१,५००	१०	६·७
१८	१,४००	५	३·६
१९	१,२००	९	७·५
आदि	आदि	आदि	आदि

इस प्रकार एक वर्ष के अनुभव के आधार पर मृत्यु-दर निकाली जा सकती है। किन्तु इससे अधिक उपयोगी और विश्वसनीय दर ज्ञात करने के लिये पिछले कई वर्षों के अनुभव का आश्रय लेना पड़ेगा। इस भाँति निकाली हुई दरों पर हम अधिक मात्रा में निर्भर कर सकते हैं, क्योंकि यह बहुत संभव है कि किसी एक वर्ष का किसी कारणवश मृत्यु-संख्याओं में अत्यधिक वृद्धि हो जाय। यह भी संभव है कि किसी वर्ष में मृत्यु बहुत अल्प हों। अतः किसी एक वर्ष की मृत्यु-दरें हमारा पथ-प्रदर्शन पूर्ण सत्यता के साथ नही कर सकती। किन्तु यदि हम कई वर्षों के अनुभवों का आधार लें, तो उक्त प्रकार की असाधारणता के प्रादुर्भाव की सम्भावना नहीं होगी। क्योंकि औसत के नियमानुसार असाधारणताएँ अधिक परिमाण में लेने पर स्वयं नष्ट हो जाती है। इस प्रकार हम ऐसे परिणाम पर पहुँच सकते हैं जिस पर पूर्णतया निर्भर किया जा सकता है। उदाहरण के लिये यदि हम किसी पिछली वर्ष की, जिसमें महामारी प्रबल वेग से फैली थी, मृत्यु-दर निकालें तो वह अवश्य ही असाधारण रूप से अधिक होगी। यदि उस वर्ष में किसी प्रकार की बीमारी का प्रकोप नहीं हुआ, जब कि प्रायः किसी न किसी प्रकार की वीमारी फैला ही करती है, तो मृत्यु-दर सदैव से अवश्य ही न्यून होगी। किन्तु ये दोनों ही दरें साधारण नहीं कही जा सकतीं। अब यदि हम अधिक वर्षों की मृत्यु-संख्याओं के आधार पर मृत्यु-दर निकालें तो वह अधिक विश्वसनीय होगी क्योंकि कुछ वर्षों की असाधारण अधिकता दूसरे वर्षों की असाधारण न्यूनता द्वारा संतुलित हो जायगी।

आगामी वर्ष की मृत्यु-संख्या का अनुमान उक्त तालिका द्वारा अति सरलता से ज्ञात किया जा सकता है। तालिका में वर्त्तमान वर्ष के बीमितों की संख्या पृथक्-पृथक् आयु पर दिखलायेंगे और इस संख्या की विभिन्न अवस्थाओं के लिये पूर्व निश्चित मृत्यु-दर प्रति सहस्र से गुणा करके एक हज़ार से भाग दे देंगे। बीमा कम्पनियाँ इसी पद्धति से भावी मृत्यु-संख्या का अनुमान लगाती है। भविष्य में दावों के रूप में दिये जाने वाले धन का अनुमान, प्रत्येक आयु पर मृत्यु-दर को सम्पूर्ण बीमित धन से गुणा करके, किया जा सकता है।

प्रामाणिक मृत्यु-तालिका (Standard Mortality) : किसी एक कम्पनी द्वारा अर्जित अनुभव के आधार पर बनी हुई तालिका अधिक सारपूर्ण एवं लाभप्रद नहीं हो सकती। अधिक संख्या-प्रयुक्त अथवा अंकशास्त्रीय नियमन के सिद्धान्तानुसार जितनी ही अधिक संख्या तक किसी प्रयोग की पुनरावृत्ति होगी, परिणाम सत्य के उतना ही अधिक निकट होगा। अतः अधिक उपयोगी और निर्भरणीय निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये यह आवश्यक होता है कि विभिन्न स्थानों में स्थित जीवन-बीमा संस्थाओं के मृत्यु सम्बन्धी अंकों की समीक्षा करके संयुक्त मृत्यु-तालिकाएँ बनाई जायें। जो मृत्यु-तालिकाएँ इस प्रकार बनाई जाती हैं, उन्हें प्रामाणिक मृत्यु- तालिकाएँ कहते हैं।

अनुभव से यह भी स्पष्ट हो गया है कि आयु की वृद्धि के साथ-साथ मृत्यु-दर में भी परिवर्द्धन होता जाता है। यदि हम पच्चीस और पचास वर्ष की अवस्थाओं वाले व्यक्तियों के दो पृथक्-पृथक् समूह बना लें तो हम पायेंगे कि पच्चीस वर्ष की अवस्था वाले समूह की मृत्यु-दर पचास वर्ष वाले समूह से अल्प होगी। प्रायः यह देखा जाता है कि साठ-सत्तर वर्ष की आयु के पश्चात् मृत्यु-दर क्रम की अपेक्षा अधिक तीव्रता से बढ़ जाती है। नीचे हम एक प्रामाणिक मृत्यु-तालिका के अंतिम भाग का एक अंश उपर्युक्त सत्य के स्पष्टीकरण के लिये उद्धृत कर रहे हैं।

प्रामाणिक मृत्यु-तालिका (अन्तिम भागांश)

आयु Age	आयु पर जीवित व्यक्ति Survivors at the Age	आयु तथा आगामी ऊँची आयु के मध्य मृत्यु-संख्या Deaths between the age and the next higher age
८५	४४५	७८
८६	३६७	७१
८७	२९६	६४
८८	२३२	५१
८९	१८१	३९
९०	१४२	३७
९१	१०५	३०
९२ आदि	७५ आदि	२१ आदि

चयित मृत्यु-तालिका (Select Mortality Table) : प्रामाणिक मृत्यु-तालिका से यह तो ज्ञात हो जाता है कि किसी एक वर्ष में किस आयु-समूह के कितने बीमितों की मृत्यु होगी। किन्तु यह देखा गया है कि समान आयु के बीमितों के दो समूहों में मृत्यु-दर समान नहीं होती। यदि यह कल्पना कर लें कि पचास २ व्यक्तियों के दो जन-समूह हैं, जिनमें से प्रत्येक की आयु ३५ वर्ष की है; और साथ ही यह भी मान लें कि उक्त दो समूहों में से पहिले समूह का बीमा दो वर्ष पूर्व ही हुआ है तथा दूसरे का दस वर्ष पूर्व,तो हम देखेंगे कि इन दोनों समूहों की अवस्था समान होते हुए भी मृत्यु-दरें असमान होंगी। दूसरे शब्दों में पहिले समूह की मृत्यु-दर दूसरे की अपेक्षा न्यून होगी। इस अन्तर का कारण यह होता है कि पहले समूह का बीमा केवल दो वर्ष पूर्व ही हुआ है और उस समय डाक्टरों ने स्वास्थ्य-परीक्षा करके उच्च कोटि के स्वस्थ व्यक्तियों को ही बीमा के लिये चुना होगा। दो वर्ष के समय में अकाल-मृत्यु अथवा किसी भयानक रोग से ग्रस्त हो जाने की सम्भावना अधिक नहीं हो सकती। किन्तु दूसरे समूह का बीमा हुये दस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। यह समय यथेष्ट रूप से दीर्घ है। अतः इसमें अनेक प्रकार के रोगों से आक्रान्त अथवा किसी अन्य असाधारण बात के उपस्थित हो जाने की सम्भावना भी अधिक होगी। सर्व-प्रथम डाक्टर स्प्रेग का ध्यान (Dr. T. B. Sprague) इस ओर आकर्षित हुआ था। उनका कहना है कि जैसे-जैसे समय व्यतीत होता जाता है, डाक्टरी परीक्षा द्वारा चयन (Selection) का प्रभाव भी क्रमशः नष्ट होता जाता है और लगभग पाँच वर्ष की अवधि में वह पूर्णतः विलीन हो जाता है। उन्होंने ही सर्वप्रथम उक्त तथ्य को दृष्टिकोण में रखते हुये मृत्यु-तालिकाएँ बनाई थीं। जो तालिकाएँ मृत्यु-दर पर चयन के प्रभाव को दिखलाती हैं उन्हें ही 'चयित मृत्यु-तालिकाएँ' कहते हैं। इनमें समान आयु प्राप्त बीमितों से सम्बन्धित दस विभिन्न मृत्यु-दरें अंकित रहती हैं।

चयित मृत्यु-तालिका में प्रदर्शित मृत्यु-दरों को 'चयित मृत्यु-दर' कहते हैं। हम पहले ही कह चुके हैं कि पाँच वर्ष के पश्चात् चयन का प्रभाव समाप्त हो

जाता है। अतः तब एक ही आयु के सभी बीमितों की मृत्यु-दरें लगभग समान हो जाती हैं। यह समान मृत्यु-दर "अंतिम-मृत्यु-दर" (Ultimate Mortality Rate) कहलाती है।

"चयित-मृत्यु-तालिका" में केवल अवस्था वर्ग के अनुसार ही नहीं वरन् चयन के अनुसार भी मृत्यु-दरों को लिखा जाता है। अतः इसमें एक तो 'प्रामाणिक-तालिका' की भाँति प्रत्येक अवस्था के अनुसार मृत्यु-दर दी रहती है तथा डाक्टरी जाँच पूरी होने के क्रमशः एक, दो, तीन, चार, पाँच वर्षों के पश्चात की मृत्यु-दरें भी दी रहती हैं जिनसे चयन का मृत्यु-संख्या पर पड़ने वाला प्रभाव का ज्ञान हो जाता है। 'चयित-मृत्यु-तालिका' तथा 'अन्तिम-मृत्यु-तालिका' का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है।

"चयित" तथा "अन्तिम" मृत्यु-तालिका

(मृत्यु-दर प्रति सहस्र)

प्रवेश-काल की आयु	बीमा कराने का वर्ष						प्राप्त आयु
	१	२	३	४	५	६ और उससे अधिक	
१५	२.४७	३.२४	३.४१	३.६५	३.७२	३.९२	२०
१६	२.५२	३.३१	३.४८	३.६३	३.८२	४.०२	२१
१७	२.५६	३.३७	३.५५	३.७३	३.९२	४.१२	२२
१८	२.६१	३.४४	३.६४	३.८१	४.००	४.१८	२३
१९	२.६६	३.५२	३.७२	३.८९	४.०७	४.२५	२४
२०	२.७३	३.५९	३.८०	३.९६	४.१३	४.३१	२५
२१	२.७८	३.६६	३.८६	४.०१	४.१८	४.३५	२६
२२	२.८३	३.७२	३.९१	४.०६	४.२१	४.३९	२७
२३	२.८६	३.७६	३.९६	४.०८	४.२४	४.४१	२८
२४	२.९१	३.८०	३.९९	४.११	४.२६	४.४३	२९
इत्यादि	इत्यादि	इत्यादि	इत्यादि	इत्यादि	इत्यादि	इत्यादि	इत्यादि

समन्वित मृत्यु.तालिका (Aggregate Mortality Table) : इस तालिका की रचना में डाक्टरी परीक्षा द्वारा चुनाव का किंचित भी विचार नहीं किया जाता। समान आयु प्राप्त समस्त बीमितों को, चाहे उनकी डाक्टरी-परीक्षा निकटपूर्व में हुई हो अथवा सुदूरपूर्व में, एक साथ ही रक्खा जाता है। जब किसी नवीन व्यक्ति का बीमा करना होता है तो उसे उसकी आयु के अनुसार ऐसे ही किसी समूह में स्थान दिया जाता है।

तुलना करने पर स्पष्ट हो जायगा कि समन्वित मृत्यु-तालिका की मृत्यु-दर चयित मृत्यु-तालिका की अपेक्षा आरम्भ में कुछ अधिक होती है। किन्तु जैसे-जैसे चयन का प्रभाव विलीन होता जाता है, मृत्यु-दर भी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। समन्वित मृत्यु-तालिका में ऐसा नही होता क्योंकि नवीन स्वस्थ बीमितों के निरन्तर आते रहने से औसत के अनुसार मृत्यु-दर लगभग पूर्ववत् ही रहती है, अधिक बढ़ने नहीं पाती।

मृत्यु-दर की क्रमितता (Graduation of Mortality) : अंक-शास्त्रीय आँकड़ो के आधार पर ज्ञात की गई मृत्यु-दरें उसी रूप में ज्यों की त्यों कभी नहीं रह सकती जिसमें उन्हें ज्ञात किया जाता है। वास्तविकता यह है कि वे वर्ष प्रति वर्ष समान नहीं रहती—घटती-बढ़ती रहती है। बहुत सम्भव है कि चौंतीस वर्ष की अपेक्षा पैंतीस वर्ष की अवस्था में मृत्यु-दर न्यून हो, और छत्तीस वर्ष की अवस्था में वह असाधारणतः बढ़ जाय। किन्तु यह स्थिति साधारण नहीं होती—आकस्मिक ही होगी, क्योंकि दीर्घकालीन अनुभव के आधार पर यह जाना गया है कि अवस्था की वृद्धि के साथ-साथ मृत्यु-दर भी बढ़ती जाती है। अतः इस असाधारणता को सुविधा के लिये दूर करना अथवा मृत्यु-दर को सम (Smooth) बनाना आवश्यक हो जाता है। यह हम क्रमितता (Graduation) के द्वारा कर सकते हैं। उसको प्रयोग में लाने का सरलतम साधन औसत है। अन्य शब्दों में दो, तीन अथवा अधिक वर्षों की मृत्यु-दरों को आधार मान कर कार्य करने से उक्त वर्णित प्रतिकूलता का सामना नहीं करना

पड़ता । बीमा-विशेषज्ञों का अनुभव है कि क्रमित मृत्यु-दरें लगभग सभी प्रकार के प्रयोगों और परीक्षणों में पूर्णतः उपयुक्त होती हैं । यदि हम उनकी तुलना अक्रमित मृत्यु-दरों से करें, तो ज्ञात होगा कि दोनों में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं होता; और कुल मृत्यु-संख्या के सम्बन्ध में उनकी समान प्रवृत्ति होती है ।

उपर्युक्त औसत साधारण गणित-प्रणाली के अतिरिक्त वर्ग-पत्र (Graph Paper) के द्वारा भी ज्ञात कर सकते है । जिन वर्षों का औसत निकालना है, उनकी संख्या आवश्यकतानुसार अन्तर से (दो, तीन, चार वर्ष इत्यादि) उस पर अंकित कर लेंगे । फिर उनके बिन्दुओं को संयुक्त कर देने से एक वक्र-रेखा निर्मित हो जायगी । यह रेखा कभी तो ऊँची होगी और कभी नीची; किन्तु साधारणतः ऊपर की ओर उठती ही जायगी । इससे यह स्पष्टतः प्रतिभासित होगा कि आयु की वृद्धि के साथ-साथ मृत्यु-दर भी क्रमशः बढ़ती ही जाती हैं, यद्यपि कही-कहीं पर व्यवधान उपस्थित अवश्य हो जाते हैं । इस प्रवृत्ति को हम और भी अधिक लक्षित कर सकेंगे यदि हम खिचित वक्र रेखा के सहारे एक वृतांश (Curve) खींच दें ।

जन-गणना द्वारा प्राप्त जन-संख्या के आँकड़ों पर आधारित मृत्यु-तालिकाएँ : पूर्वकाल में जब बीमा कम्पनियों के पास बीमा सम्बन्धी अनुभव तथा आँकड़े नही थे,उस समय जन-गणना द्वारा प्राप्त अंकों के आधार पर ही मृत्यु-तालिकाएँ बनाई जाती थी । किन्तु उस समय भी उनके निर्माण में उन्ही सिद्धान्तों और नियमों का अनुसरण किया जाता था जिनका कि इस समय । उन तालिकाओं में बीमितों की संख्याओं के स्थान पर जीवित व्यक्तियों की संख्या का प्रयोग होता था । मृत्यु-संख्या किसी सरकारी विवरण-पत्रिका से प्राप्त कर ली जाती थी । किसी आयु पर मृत्यु-दर, मृत्यु-संख्या को जीवित व्यक्तियों की संख्या से विभाजित कर के ज्ञात कर ली जाती थी ।

इस कोटि की तालिकाएँ जीवन-बीमा संस्थाओं के लिये अधिक उपादेय नहीं हो सकतीं । जिन लोगों का बीमा किया जाता है, बीमा करते समय उनके

स्वास्थ्य की परीक्षा कर ली जाती है। इस कारण उन की मृत्यु-दर अधिक नही होती। किन्तु जन-गणना में ऐसा कोई विचार नही किया जाता—स्वस्थ तथा अस्वस्थ, नीरोग तथा रोगग्रस्त सभी व्यक्तियों की गणना एक साथ समान रूप से की जाती है। जर्जर स्वास्थ्य के कारण जिन व्यक्तियो का बीमा कोई भी बीमा-संस्था स्वीकार नही करेगी, उनको भी जन-गणना में सम्मिलित कर लिया जाता है। अत: इस प्रकार की मृत्यु-तालिकाओं की मृत्यु-दर अधिक होगी। इनसे यथार्थ मार्ग-प्रदर्शन प्राप्त न कर सकने के कारण बीमा कम्पनी इनको व्यवहार में नही लाती।

आरम्भ में ऐसी ही मृत्यु-तालिकाएँ बनती थी। हेली, ग्रान्ट आदि मृत्यु-तालिकाएँ, जिनका वर्णन इस अध्याय के आरम्भ में किया जा चुका है, इसी श्रेणी की थीं।

अध्याय ६

प्रीमियम

प्रीमियम और उसकी किस्तें

बीमा-संस्थाओं को बीमित से जो रक़म कॉन्ट्रैक्ट की शर्तों के अनुसार प्राप्त होती है, उसे प्रीमियम कहते हैं। इसे विभिन्न प्रकार की किस्तों में बीमित अपनी सुविधा के अनुसार चुकाते हैं। यदि हम किसी बीमा-कम्पनी की विवरण-पत्रिका का अध्ययन करें तो ज्ञात होगा कि ये किस्तें प्रति एक हजार रुपए पर एक वर्ष के लिये ही दी होती हैं और स्वस्थ तथा बीमा-योग्य व्यक्तियों पर ही लागू होती हैं। किन्तु बीमितों की सुविधा के लिये छमाही, तिमाही तथा मासिक रूप में भी किस्तें चुकाई जा सकती हैं। छमाही किस्त वार्षिक किस्त की १/२ से कुछ अधिक होती है। इसी प्रकार तिमाही तथा मासिक किस्तें भी वार्षिक किस्त के १/४ और १/१२ से कुछ भारी होती हैं। इसका कारण यह होता है कि कम्पनी को प्रीमियम की वार्षिक किस्तों के स्थान पर छमाही, तिमाही आदि किस्तों के रूप में रूपया लेने में व्याज की हानि उठानी पड़ती है और साथ ही कम्पनी को किस्त वसूली की नोटिस इत्यादि बार-बार भेजने में भी व्यय उठाना पड़ता है। इस प्रकार की हानि की पूर्ति ही छमाही, तिमाही और मासिक किस्तों के किंचित आधिक्य का कारण होती है।

शुद्ध तथा मिश्रित प्रीमियम : बीमा-कम्पनियों को प्रीमियम की किस्तों के निश्चय करने में निम्नांकित तीन बातों पर ध्यान देना पड़ता है—(१) मृत्यु-दर, (२) व्याज-दर और (३) व्यवस्था-व्यय।

प्रथम दो बातों के आधार पर शुद्ध-प्रीमियम (Net Premium) का अनुमान किया जाता है। यदि कम्पनी के बीमितों की मृत्यु-दर निश्चित हो, और जो रुपया कम्पनी को प्रीमियम के रूप में प्राप्त हो उसे प्राप्त होते ही निश्चित व्याज-दर पर उठा दिया जाय, तो शुद्ध-प्रीमियम की सम्पूर्ण किस्तों से प्राप्त धन व्याज-सहित कम्पनी के प्रति दावों (Claims) का भुगतान करने के लिये पर्याप्त होगा। किन्तु व्यवस्था-व्यय आदि के लिये कुछ भी नहीं बचेगा।

अतः शुद्ध-प्रीमियम में व्ययों के औसत अंश को भी मिला देते हैं। प्रीमियम के इस मिश्रित रूप को मिश्रित-प्रीमियम (Gross Premium) कहते हैं। यही मिश्रित-प्रीमियम विभिन्न प्रकार की किस्तों के रूप में बीमितों से कम्पनी को प्राप्त होता है। हम पहले ही कह चुके हैं कि शुद्ध प्रीमियम बीमित रक़म के भुगतान के लिये ही पर्याप्त हो सकता है। इसीलिये किस्तों के रूप में प्राप्त प्रीमियम से ब्याज की हानि, व्यवस्था-व्यय आदि को पूरा करने के लिये बीमा कम्पनी शुद्ध प्रीमियम से कुछ अधिक वसूल करती है।

किस्त-भार (Loading) : सभी प्रकार के बीमों की किस्तों पर व्यय-भार समान अनुपात में नहीं डाला जाता। लाभ-सहित बीमों के प्रीमियम की दरें लाभ-रहित बीमों के प्रीमियम की दरों से अधिक होती हैं, क्योंकि लाभ-सहित बीमों के भुगतान के समय केवल बीमित-रकम ही नहीं, वरन् लाभ का कुछ अंश भी बीमित को प्राप्त होता है। अतः उन पर व्यय-भार कुछ अधिक मात्रा में डाला जाता है। अवस्थानुसार भी व्यय-भार न्यूनाधिक होता है। कुछ कम्पनियाँ प्रीमियम का दस से पच्चीस प्रतिशत तक लाभ-रहित और बीस से तीस प्रतिशत तक लाभ-सहित बीमों पर व्यय-भार के रूप में वसूल करती हैं। औसत के आधार पर व्यय-भार प्रीमियम की किस्तों पर डालना अति सुविधाजनक तथा न्यायसंगत होता है। यदि व्यय का औसत प्रीमियम की किस्तों में सम्मिलित न कर दिया जाय तो अधिक आयु में बीमितों को भारी किस्तों के रूप में व्यय का अधिक भाग उठाना पड़ेगा। यह उनके साथ अन्याय होगा, क्योंकि कम्पनी को कम तथा अधिक आयु वाले दोनों ही प्रकार के बीमादारों के लिये

व्यवस्था-व्यय समान ही करना पड़ता है। इसलिये शुद्ध-प्रीमियम की किस्त-दर पर जो व्यय-भार का अंश डाला जाता है, उसके दो भाग होते हैं—(१) बीमा-कम्पनी की व्यवस्था तथा प्रबन्ध का व्यय और (२) कमीशन तथा लाभ चुकाने का व्यय।

साधारणतः मिश्रित—प्रीमियम की किस्त-दर जानने के लिये निम्नलिखित व्यवस्था-व्यय शुद्ध-प्रीमियम की किस्त में औसत के अनुसार जोड़ दिये जाते हैं * :–

(१) प्रारम्भिक व्यय (Initial Expenses)

(अ) स्वास्थ्य-परीक्षा का शुल्क,

(ब) पालिसी पर लगने वाले टिकट का व्यय,

(स) एजेन्ट का कमीशन (Procuration Commission) जो प्रथम वर्ष के प्रीमियम पर एक निश्चित प्रतिशत दर के हिसाब से दिया जाता है, और

(द) बीमितों को पालिसी देने में कम्पनी का व्यय।

(२) आवर्तक व्यय (Recurring Expenses)

(अ) पुनर्चलन का कमीशन (Renewal Commission), जो एजेन्ट को प्रथम वर्ष के अतिरिक्त अन्य वर्षों के प्रीमियम पर एक निश्चित दर से दिया जाता है। यह कमीशन ऐक्ट के अनुसार वार्षिक प्रीमियम के पाँच प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती।

(ब) किस्तों को चुकाने की सूचना आदि देने में कम्पनी-व्यय।

स्वाभाविक तथा समान प्रीमियम (Natural & Level Premium) : जीवन-बीमों के प्रीमियम की किस्तों की दरें स्वाभाविक अथवा समान प्रीमियम प्रणाली में से किसी के भी आधार पर निश्चित की जा सकती हैं। वर्त्तमान समय में समान प्रीमियम प्रणाली ही सर्वत्र प्रचलित है।

स्वाभाविक प्रीमियम प्रणाली : इसके अन्तर्गत समय व्यतीत होने के साथ-

* दे० S. G. Leigh : Guide to Life Assurance, pp. 35-36.

साथ जैसे-जैसे मृत्यु-दर बढ़ती जाती है, उसी मात्रा में प्रीमियम की किस्त-दर भी बढ़ती जाती है। यदि किसी व्यक्ति का जीवन-बीमा स्वाभाविक प्रीमियम परि-पाटी के अनुसार किया जाय तो उसे प्रति वर्ष क्रमशः अधिक प्रीमियम देना होगा, क्योंकि प्रत्येक वर्ष उस जन-समूह विशेष की मृत्यु-दर बढ़ती जायगी जिसके अन्त-र्गत उसका बीमा हुआ है। मृत्यु-दर की क्रमशील वृद्धि के साथ-साथ कम्पनी को क्रमशः अधिक धन बीमितों के दावों को भुगताने में व्यय करना पड़ेगा। किन्तु जो धन कम्पनी को दावों के भुगताने में व्यय करना होगा उसे वह जीवित बीमा-दारों से प्रीमियम के रूप में वसूल कर लेगी। फलतः जो बीमित जीवित रहेंगे उनको क्रमशः वृद्धिशील प्रीमियम प्रति वर्ष देने पड़ेंगे। सारांश यह है कि जैसे-जैसे आयु तथा मृत्यु-दर बढ़ती है वैसे ही बीमितों के प्रीमियम की दरें भी अधिक होती जाती हैं। हो सकता है कि किसी बीमित के प्रीमियम की दर बढ़ कर इतनी अधिक हो जाय कि उसका चुकाना उसको असम्भव प्रतीत होने लगे, क्योंकि वृद्धा-वस्था में जब कि उसकी आय बराबर घटती जा रही होगी, प्रीमियम की प्रति वर्ष बढ़ती हुई किस्तें चुकाना उसके लिये स्पष्टतः अत्यन्त कठिन होगा।

$$\text{स्वाभाविक प्रीमियम} = \frac{\text{मृत्यु संख्या} \times \text{बीमा की रकमें}}{\text{जीवित बीमितों की संख्या}}$$

समान प्रीमियम-प्रणाली : यह प्रणाली पूर्व वर्णित प्रणाली के दोषों से रहित है। प्रीमियम की जो किस्त बीमा आरम्भ करते समय निश्चित की जाती है वही दर बराबर क़ायम रहती है, आयु-वृद्धि और जीवन की जोखिम इन दोनों ही तत्वों को दृष्टिकोण में रखते हुए आरम्भ से ही वास्तविक प्रीमियम की दर के स्थान पर कुछ अधिक दर रख दी जाती है और वही बीमा कॉन्ट्रैक्ट के अन्त तक चालू रहती है। न्यून आयु के विचार से प्रीमियम की जो दर होनी चाहिये उससे कुछ अधिक दर के हिसाब से कम्पनी प्रीमियम वसूल करती है। यह अधिक प्राप्त की हुई रकम चक्रवृद्धि ब्याज पर इस प्रकार बढ़ती रहती है कि भविष्य में प्रीमियम की किस्त की दर बढ़ाने की आवश्यकता ही नहीं होती। इस प्रकार बीमित को समान रूप से प्रीमियम की किस्त चुकाते रहने में सन्तोष

और सुविधा होती है। बीमे के आरम्भ ही में वह यह ज्ञात कर सकता है कि प्रीमियम के रूप में उसे कितना धन बीमा-कम्पनी को देना होगा और उसे अथवा उसके उत्तराधिकारियों को कितना रूपया मिलेगा।

शुद्ध प्रीमियम तथा मिश्रित प्रीमियम की किस्त-दरों का निकालना (Calculation of Net and Office Premiums) : शुद्ध तथा मिश्रित प्रीमियम का निकालना एक दुरूह कार्य है। यह कार्य एक्चुअरियों (Actuaries) द्वारा सम्पादित किया जाता है। यहाँ पर इसके सिद्धान्तों को संक्षेप में दिया जाता है।

सर्व प्रथम वास्तविक किस्त निकाली जाती है। मृत्यु-तालिकाओं से यह ज्ञात कर लिया जाता है कि बीमितों के किसी समूह-विशेष के कितने व्यक्ति प्रति वर्ष मृत्यु को प्राप्त होंगे और इस भाँति बीमा-कम्पनी को दावों के भुगतान में कितनी रक़म देनी पड़ेगी। इस रक़म में से प्राप्त होने वाले ब्याज को निकाल दिया जाता है। अब जो शेष बचता है उसको उस जन-समूह विशेष के सदस्यों में एक निश्चित नियम के अनुसार विभक्त कर दिया जाता है।

इस वास्तविक किस्त में उन सभी व्ययों को जोड़ दिया जाता है, जिनका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। इस प्रकार प्राप्त की गई प्रीमियम की किस्त को मिश्रित-किस्त (Gross Premium) कहते है। व्ययों के रूप में जो रक़म वास्तविक-किस्त में जोड़ देते हैं, उससे वास्तविक-किस्त भारी हो जाती है। इस क्रिया को 'किस्त का भारी बनाना' (Loading) कहते हैं। इस कार्य के लिये (Dr. Sprague) ने एक नियम (Formula) दिया है जिसे (Sprague's Formula) कहते हैं। उक्त नियम के अनुसार मिश्रित प्रीमियम की किस्त ज्ञात करने के लिये शुद्ध प्रीयियम की किस्त में निम्नलिखित व्यय जोड़ देने चाहिये :—

(१) बीमित-धन का एक प्रतिशत एजेन्ट के कमीशन के लिये,

(२) प्रीमियम की किस्त का ६½ प्रतिशत पुनर्ज्वलन कमीशन (Renewal Commission) के लिये, और

(३) बीमित-धन का २ शिलिंग ६ पेन्श प्रतिशत व्यवस्था-व्यय के लिये।
इस प्रकार एक पौंड की बीमित-रक़म के लिये उक्त नियम के अनुसार मिश्रित-प्रीमियम निम्नांकित होगा :—

$$१००७५ \left(\text{शुद्ध प्रीमियम} + \frac{\text{१ पौंड}}{\text{जीवन पर १ पौंड की वार्षिक वृत्ति का मूल्य}} + \text{२ शि० ६ पेंस} \right.$$

इस विधि का उपयोग लाभ-रहित पालिसियों के सम्बन्ध में किया जाता है। लाभ-सहित पालिसियों का किस्त-भार (loading) ज्ञात करने के लिये प्राय: निम्नांकित विधि का प्रयोग होता है। इसका उदाहरण मैक्लीन ने अपने "लाइफ इन्स्योरेन्स" में इस प्रकार दिया है :—

साधारण आजीवन-बीमे के लिये— { = साधारण पालिसी के 'वास्तविक' प्रीमियम का २५ प्रतिशत।

सीमित-आजीवन-बीमे के लिये — { = साधारण वास्तविक प्रीमियम का १२½ प्रतिशत तथा सीमित आजीवन-बीमे के वास्तविक प्रीमियम का १२½ प्रतिशत।

दो बस्ती बीमे के लिये— { = साधारण-आजीवन-पालिसी के वास्तविक प्रीमियम का १२½ प्रतिशत, सीमित-आजीवन-पालिसी के वास्तविक प्रीमियम का ६¼ प्रतिशत तथा बन्दोबस्ती पालिसी के वास्तविक प्रीमियम का ६¼ प्रतिशत।

प्रकार किस्त-भार (load)— { = योजना विशेष के लिये वास्तविक प्रीमियम की प्रतिशत + साधारण-आजीवन-पालिसी के वास्तविक प्रीमियम की प्रतिशत। *

---

* "Loading for any specified plan is a percentage of the net premium for that plan and a percentage of the ordinary life net premium."

Maclean, Life Insurance, p. 104

यदि साधारण-आजीवन, सीमित-आजीवन और बन्दोबस्ती-पालिसियों के वास्तविक-प्रीमियम को किसी निश्चित अवस्था के लिये क्रमशः 'अ', 'ब' और 'स' मान लें, तो उपर्युक्त-नियम इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है :—

साधारण-आजीवन बीमा के लिये .. ...१/४ अ

सीमित- ,, ,, ,, ...१/२ अ + १/२ ब

बन्दोबस्ती ,, ,,...१/२ अ + १/१६ ब + १/१६ स

अंतिम दो पंक्तियों को निम्न प्रकार भी लिख सकते हैं :—

सीमित-आजीवन-बीमा के लिये ... ...१/४ अ + १/२ (ब—अ)

बन्दोबस्ती बीमा के लिये ...१/४ अ + १/२ (ब—अ) + १/१६ (स—ब)

अध्याय १०

प्रीमियम [क्रमशः]

पिछले अध्याय में हम प्रीमियम की समस्या पर सैद्धान्तिक रूप से विचार कर चुके हैं। इस विषय की जटिलता एवं दुरूहता को ध्यान में रखते हुये, हम इस अध्याय में समुचित उदाहरणों के द्वारा उन सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने का प्रयत्न करेंगे।

वास्तविक प्रीमियम-दर का निर्धारण

हम कह चुके हैं कि वास्तविक-प्रीमियम के निर्धारण में 'मृत्यु-दर' तथा 'व्याज-दर' को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। नीचे हम मृत्यु-तालिका का एक अंश उद्धृत करते हैं। व्याज-दर ३ प्रतिशत मान कर हम वास्तविक-प्रीमियम निकालने की विधि पर प्रकाश डालेंगे।

मृत्यु-तालिका

प्रवेशकाल की अवस्था	जीवितों की संख्या	मृतकों की संख्या	मृत्यु-दर प्रति सहस्र
३५	८१,८२२	७३२	८·९४
३६	८१,०९०	७३७	९·०८
३७	८०,३५३	७४२	९·२३
३८	७९,६११	७४९	९·४०
३९	७८,८६२	७५६	९·५८
४०	७८,१०६	७६५	९·७९
४१	७७,३४१	७७४	१०·००
४२	७६,५६७	७८५	१०·२५
४३	७५,७८२	७९७	१०·५१
४४	७४,९८५	८१२	१०·८२

यहाँ यह स्पष्ट कर देना लाभदायक होगा कि वार्षिक प्रीमियम निकालने के पूर्व "एक-प्रीमियम" (Single Premium) की गणना आवश्यक होती है। सभी बीमा-योजनाओ का वार्षिक प्रीमियम 'एक-प्रीमियम' के ही आधार पर की जा सकती है। 'एक-प्रीमियम' (Single Premium) वह प्रीमियम है जिसके द्वारा बीमे की समस्त किस्तों का रूपया एक ही किस्त में चुकाया जा सकता है।

एक प्रीमियम निकालने की विधि : मान लीजिये कि ४० वर्ष की अवस्था-वर्ग के सभी व्यक्ति | जिनकी संख्या उपर्युक्त तालिका मे दी हुई है, एक वर्ष के लिये एक-एक हजार रूपये की अवधी-पालिसी (Term Policy) लेते है। तालिका से स्पष्ट है कि इस अवस्था पर एक वर्ष के पश्चात् ७८,१०६ में से ७६५ व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है। ऐसी दशा में कम्पनी को बीमा करने के एक वर्ष के पश्चात् दावों के भुगतान के लिये ७,६५०००) की आवश्यकता पड़ेगी। हमने उपरोक्त पंक्तियों में व्याज-दर ३ प्रतिशत मानी है। यदि वर्ष के अन्त में कम्पनी को दावों के भुगतान के लिये एक रूपये की ही आवश्यकता हो तो उसके लिये इस दर पर एक रुपये का तात्कालिक मूल्य (Present Worth) ही यथेष्ट होगा। एक रूपये का तात्कालिक-मूल्य ३ प्रतिशत के हिसाब से ०·९७०९ रूपया होता है। इस प्रकार यदि कम्पनी को वर्ष के अन्त में ७,६५०००) की आवश्यकता हो तो उसे बीमितों से वर्ष के प्रारम्भ में ७,६५००० × ०·९७०९=७,४२,७३९) रूपये प्राप्त होने चाहिये। इस भाँति ४० वर्ष की अवस्था-वर्ग के प्रत्येक बीमित को $\frac{७,४२,७३९}{७८,१०६}$ =९॥) रूपये प्रीमियम देना होगा। इस सम्बन्ध में ९॥) की रकम ही 'एक-प्रीमियम' तथा 'वार्षिक-प्रीमियम' की रकम होगी, क्योंकि बीमा की अवधि केवल एक ही वर्ष है।

एक अन्य प्रणाली के द्वारा भी 'एक-प्रीमियम' की रकम ज्ञात की जा सकती है। उपर्युक्त तालिका में प्रति-सहस्र मृत्यु-दर दी हुई है। एक हजार रूपये के तात्कालिक-मूल्य को इस मृत्यु-दर से गुणा करके यह ज्ञात किया जा सकता है कि

किसी अवस्था-वर्ग के एक हजार व्यक्तियों का बीमा करने पर कम्पनी को वर्ष के प्रारम्भ में बीमितों से कितना धन प्राप्त करना चाहिये जिसे ३ प्रतिशत व्याज पर लगा कर वर्ष के अन्त में दावों के भुगतान के लिये पर्याप्त धन उपलब्ध हो सके ।

इस अध्याय के आरम्भ में दी हुई मृत्यु-तालिका में ४० वर्ष की अवस्था वर्ग के लिये प्रति-सहस्र मृत्यु-दर ९·७९ है । कम्पनी को प्रत्येक मृतक के उत्तराधिकारियों को वर्ष के अन्त में १०००) के हिसाब से दावा चुकाना होगा । ३ प्रतिशत से एक हजार रूपये का तात्कालिक मूल्य ९७०·९) है । अतः इस समय कम्पनी को एक हजार व्यक्तियों से ९·७९ × ९७०·९ रूपये अर्थात्

प्रत्येक व्यक्ति से $\dfrac{९·७९ \times ९७०·९}{१०००} = ९।।$ प्रीमियम के रूप में प्राप्त करना चाहिये ।

बन्दोबस्ती-बीमे के लिये एक-प्रीमियम : क्योंकि बन्दोबस्ती-बीमे में कम्पनी, पालिसी में उल्लिखित अवधि के भीतर मृत्यु होने तथा बीमे की अवधि पूर्ति होने पर दोनों ही दशाओं में बीमित-धन देने के लिये वाध्य रहती है, अतः इसमें केवल मृत्यु-संख्या ही नहीं वरन् कालान्तर में जीवित बीमितों की संख्या भी दृष्टि में रखनी पड़ती है । जैसे, मान लीजिये कि ३५ वर्ष की अवस्था में बीमित १० वर्ष का बन्दोबस्ती बीमा कराते हैं । इस अवस्था में १० वर्ष के भीतर मरने वालों तथा १० वर्ष व्यतीत होने पर जीवित रहने वालों को कम्पनी द्वारा प्राप्त होने वाली रकम के आधार पर ही प्रीमियम-धन का आगणन किया जा सकता है । यह बात निम्नांकित गणना से स्पष्ट हो जायगी ।

बन्दोबस्ती-बीमे में ३५ वर्ष की अवस्था के व्यक्तियों पर दस वर्षों के लिये प्रति व्यक्ति १०००) रूपया के बीमे पर प्रीमियम-दर

(व्याज-दर ३ प्रतिशत)

अवस्था	जीवितों की संख्या	मृतकों की संख्या	वर्ष के अन्त में दावे (रू०)	१) का तात्कालिक-मूल्य (रू०)	मृत्यूपरांत के दावों का तात्कालिक मूल्य (रू०)
३५	८१,८२२	७३२	७३२,०००	०·९७०९	७१०,६९९
३६	८१,०९०	७३७	७३७,०००	०·९४२६	६९४,६९६
३७	८०,३५३	७४२	७४२,०००	०·९१५१	६७९,००४
३८	७९,६११	७४९	७४९,०००	०·८८८५	६६५,४८७
३९	७८,८६२	७५६	७५६,०००	०·८६२६	६५२,१२६
४०	७८,१०६	७६५	७६५,०००	०·८३७५	६४०,६८८
४१	७७,३४१	७७४	७७४,०००	०·८१३१	६२९,३३९
४२	७६,५६७	७८५	७८५,०००	०·७८९४	६१९,६७९
४३	७५,७८२	७९७	७९७,०००	०·७६६४	६१०,८२१
४४	७४,९८५	८१२	८१२,०००	०·७४४१	७०४,२०९
४५	७४,१७३				

(अ) मृत्यूपरान्त होने वाले दावों के भुगतान के लिये आवश्यक धन का तात्कालिक-मूल्य . . . =	६,५०६,७४८
(ब) १० वर्ष के उपरान्त जीवित व्यक्तियों को प्रति व्यक्ति एक हजार रूपया देने के लिये ७४,१७३,०००) का तात्कालिक-मूल्य=(७४,१७३,००० × ०·७४४१) रूपये=	५५,१९२,१२९
योग=	६१,६९८,८७७

ऊपर हमने ३५ वर्ष की अवस्था-वर्ग का उदाहरण लिया है। इसके आधार पर ८१,८२२ व्यक्तियों को १० वर्ष की पालिसियों के भुगतान के लिये ६१,६९८,८७७) रूपयों की आवश्यकता होगी। अतः ३५ वर्ष की अवस्था

के प्रत्येक बीमित को इस योजना के अन्तर्गत ७५४) 'वास्तविक-एक-प्रीमियम' के रूप में देना होगा। यह प्रीमियम इस प्रकार से निकाली जायगी :—

(१) मृत्यु के कारण होने वाले दावे..............६,५०६,७४८
(२) दस वर्ष के उपरान्त जीवित रहने वाले दावे....५५,१९२,१२९

योग ६१,६९८,८७७ (रूपये)

वास्तविक 'एक-प्रीमियम' (Net Single Premium) $= \frac{६१,६९८,८७७}{८१,८२२}$ रूपये
=७५४ रूपये

आजीवन-बीमे के लिए एक प्रीमियम : इसी प्रकार आजीवन-बीमे के लिये भी प्रीमियम की दर निश्चित की जाती है। बन्दोबस्ती-बीमे के समान आजीवन-बीमे में बीमे की अवधि निश्चित नहीं रहती। इस प्रकार के बीमे का प्रीमियम मृत्यु-तालिका में दी हुई प्रायः सभी अवस्थाओं पर लागू मृत्यु-दरों के आधार पर निकाला जाता है। जैसे, मान लीजिये मृत्यु-तालिका में २० वर्ष की अवस्था से ९० वर्ष की अवस्था तक के आँकड़े दिये हुये हैं। यदि २० वर्ष की अवस्था पर लागू आजीवन-बीमे के लिये प्रीमियम निर्धारित हो तो ९० वर्ष की अवस्था तक की मृत्यु-दर को ध्यान में रखना पड़ेगा। अर्थात् ऐसे व्यक्ति के प्रीमियम निर्धारण में यह मान लेना आवश्यक होगा कि उसने ७० वर्ष की अवधि के लिये बीमा कराया है। इस सम्बन्ध में एक उदाहरण लीजिये :

मान लीजिये कि ८५ वर्ष की अवस्था के व्यक्तियों के, आजीवन-बीमे के लिये 'एक-प्रीमियम' निकालना है।* इसको स्पष्ट करने के लिये मृत्यु-तालिका का एक अंश हम उद्धृत करते हैं :

*बीमा-कम्पनियाँ व्यवहार में इतनी अधिक अवस्था के व्यक्तियों का बीमा नहीं करतीं। आजीवन-प्रीमियम-निर्धारण संक्षेप में स्पष्ट करने के लिये ऐसा उदाहरण लिया गया है।

मृत्यु-तालिका

आयु	जीवितों की संख्या	मृतकों की संख्या
८५	८४७	३८५
८६	४६२	२४६
८७	२१६	१३७
८८	७९	५८
८९	२१	१८
९०	३	३

हम इस तालिका के आधार पर ३ प्रतिशत व्याज-दर मान कर निम्नांकित पंक्तियों में आजीवन-बीमे का 'एक-प्रीमियम' ज्ञात करेंगे—

आजीवन-बीमा में १००० रूपया प्रति व्यक्ति के हिसाब से ८५ वर्ष की अवस्था-के व्यक्तियों पर लागू प्रीमियम-दर

(व्याज-दर ३ प्रतिशत)

आयु	जीवितों की संख्या	मृतकों की संख्या	मृत्यूपरांत होने वाले दावे (रूपया)	१ रू० का तात्कालिक-मूल्य (रूपये)	मृत्यूपरान्त के दावों का तात्का-लिक-मूल्य (रूपये)
८५	८४७	३८५	३८५,०००	०·९७०९	३७३,७९६·५०
८६	४६२	२४६	२४६,०००	०·९४२६	२३१,८७९·६०
८७	२१६	१३७	१३७,०००	०·९१५१	१२५,३६८·७०
८८	७९	५८	५८,०००	०·८८८५	५१,५३३·००
८९	२१	१८	१८,०००	०·८६२६	१५,५२६·८०
९०	३	३	३,०००	०·८३७५	२,५१२·५०
				तात्कालिक मूल्य का योग= ,	८००,६१७·१०

इस प्रकार ८५ वर्ष की अवस्था के ८४७ व्यक्तियों के आजीवन-बीमे के लिये कम्पनी को कम से कम ८००,६१७·१० रूपये अथवा $\frac{८००,६१७·१०}{८४७} = ९४५$ रूपये प्रति व्यक्ति प्रीमियम के रूप में अग्रिम प्राप्त करना चाहिये।

वास्तविक-वार्षिक-प्रीमियम का निकालना (Net Annual Premiums) : ऊपर दिये हुये सभी उदाहरणों में हमने 'वास्तविक-एक प्रीमियम ही निकालने की विधि स्पष्ट की है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि इसीके आधार पर वार्षिक, अर्ध-वार्षिक, त्रैमासिक एवं मासिक प्रीमियम की दरें निकाली जाती हैं। अब हम 'एक-प्रीमियम' के आधार पर 'वार्षिक-प्रीमियम' ज्ञात करने की विधि बतलाएँगे।

यदि प्रति बीमित से ९४५) का 'एक-प्रीमियम' न लेकर 'वार्षिक-प्रीमियम' लेना हो तो इसका तात्पर्य यह होगा कि इस रकम के बदले में बीमित के जीवन-काल में उतने मूल्य की "वार्षिक-किस्त" प्राप्त करने की योजना बनानी होगी। प्रीमियम की किस्त इसी प्रकार मालूम करेंगे।

मान लीजिये कि ८५ वर्ष के व्यक्तियों से प्रति वर्ष एक रूपया प्रति व्यक्ति वसूल करना है। ऐसी दशा में प्रत्येक बीमित से उसके जीवन-काल में जितनी रकम प्राप्त की जा सकेगी उसका तात्कालिक-मूल्य ज्ञात कर लेना चाहिये। इसका आगणन निम्नांकित तालिका में किया जाता है :—

वर्ष क्रम	जीवितों की संख्या	वर्ष के आरम्भ में प्राप्त रकम (रूपये)	एक रूपये का तात्कालिक-मूल्य (रूपये)	प्राप्त रकम का तात्कालिक-मूल्य (रूपये)
१	८४७	८४७	१·००००	८४७·००
२	४६२	४६२	०·९७०९	४४८·५६
३	२१६	२१६	०·९४२६	२०३·६०
४	७९	७९	०·९१५१	७२·२९
५	२१	२१	०·८८८५	१८·६६
६	३	३	०·८६२६	२·५९
			तात्कालिक मूल्य का योग=	१,५९२·७०

इसका अर्थ यह हुआ कि एक रूपया वार्षिक-प्रीमियम का तात्कालिक-मूल्य प्रति व्यक्ति $\frac{१५९२·७०}{८४७}$ रूपये=१·८८ रूपया है। अन्य शब्दों में ८५ वर्ष की अवस्था के व्यक्तियों से चाहे जीवन पर्यन्त एक रूपया वार्षिक प्रीमियम लिया जाय या प्रति व्यक्ति १·८८ रूपया 'एक-प्रीमियम' (Single Premium) लिया जाय, दोनों का तात्कालिक-मूल्य समान होगा। यह पता चल जाने पर 'एक-प्रीमियम' को 'वार्षिक-प्रीमियम' में त्रैराशिक नियम (Rule of three) के द्वारा सरलतापूर्वक परिवर्तित किया जा सकता है :—

∵ १·८८) के 'एक-प्रीमियम' के बदले में १) वार्षिक प्रीमियम होता है

∴ ९४५) के ,, ,, ,, ,, $\frac{१}{१·८८}$ × ९४५ रूपये

=५०२ रूपये

∴ वार्षिक-प्रीमियम=५०२ रूपये

इन्हीं नियमों के आधार पर अन्य प्रकार के बीमों के लिये भी वार्षिक प्रीमि-

यम की दर निश्चित की जाती है। इस कार्य के लिये विस्तृत हिसाब-किताब की कठिनाइयों से बचने के लिये संक्षिप्त तालिकाओं में प्रीमियम की दरों को निर्धारित करने की व्यवस्था कर ली गई है। Actuarial Science की सहायता से प्रत्येक प्रकार के बीमे का वार्षिक तथा अन्य प्रीमियम की दरों की गणना के निमित्त सरल फारमूले बना लिये गये हैं और विविध व्याज की दरों के अनुसार "विपर्यय तालिकाएँ" (Commutation Tables) प्रस्तुत कर ली गई हैं। इनके द्वारा प्रीमियम का निर्धारण सरलता-पूर्वक किया जा सकता है।

अध्याय ११

जीवन-बीमे के प्रमुख प्रकार

सभी मनुष्यों का स्वभाव समान नहीं होता; इसी प्रकार उनकी आवश्यकताओं, परिस्थितियों तथा सुविधाओं में भी अन्तर होता है। बीमा कराते समय कोई अपनी सन्तान की सुविधा देखता है तो कोई अपने भविष्य को सुखमय बनाने का इच्छुक होता है। इसी प्रकार बीमा कराने वालों के बीमा कराने में विभिन्न उद्देश्य हुआ करते हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए बीमा-कम्पनियों ने विभिन्न प्रकार की बीमा-योजनाओं की रचना की है और प्रति दिन नवीन-नवीन योजनाएँ सम्मुख आती रहती हैं। किन्तु इससे यह तात्पर्य निकालना बड़ी भारी भूल होगी कि किसी एक प्रकार की बीमा-योजना अन्य प्रकार की योजनाओं से उत्तम अथवा सस्ती है। वास्तव में सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से सभी सदृश होती हैं। यदि कोई बीमा-योजना एक ओर अधिक सुविधाएँ प्रदान करती हुई प्रतिभासित होती है तो दूसरी ओर उसका प्रीमियम भी अधिक होगा। इसी प्रकार यदि किसी बीमा-योजना में कम प्रीमियम देने की व्यवस्था होगी तो उसके साथ ही सुविधाओं की संख्या भी अल्प ही होगी।

साधारणतः जीवन-बीमें दो प्रकार के होते हैं—लाभ-सहित (With Profits) और लाभ-रहित (Without Profits)। उनको उनकी अवधि के अनुसार पुनः दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—(१) आजीवन (Whole life) और (२) बन्दोबस्ती (Endowment)।

लाभ-सहित तथा लाभ-रहित जीवन-बीमे: इनके विषय में हम गत अध्याय में कुछ विचार कर चुके हैं। लाभ-सहित बीमों का तात्पर्य

यही होता है कि बीमित अथवा उसके उत्तराधिकारियों को बीमित-रक़म के अतिरिक्त उस पर लाभ भी प्राप्त होता है। आजीवन-बीमों पर बन्दोबस्ती बीमों की अपेक्षा लाभ कुछ अधिक दिया जाता है। किन्तु लाभ-सहित बीमों की प्रीमियम की किस्त लाभ-रहित बीमों की किस्त से कुछ भारी होती है। इस अन्तर के अतिरिक्त लाभ-सहित और लाभ-रहित बीमों में अन्य किसी प्रकार का अन्तर नहीं होता। आजकल अनेक बीमा कम्पनियाँ अपने लाभ का अधिकांश भाग—कभी-कभी ९० प्रतिशत तक—लाभ-सहित जीवन-बीमा कराने वालों में बाँट देती हैं। इस प्रकार बीमितों को प्राप्त होने वाला लाभांश, बोनस (Bonus) कहलाता है।

आजीवन-बीमा (Whole life Policies) : इस प्रकार का बीमा जीवन पर्यन्त के लिये होता है। यह लाभ-सहित अथवा लाभ-रहित दोनों में से किसी भी श्रेणी का हो सकता है। जिस समय से कोई व्यक्ति अपने जीवन का बीमा कराता है, अपनी मृत्यु के समय तक उसे प्रीमियम की किस्तें चुकानी पड़ती हैं। उसकी मृत्यु के पश्चात् ही उसके उत्तराधिकारी अथवा उस व्यक्ति को जिसके नाम में उसने बीमा-पत्र हस्तान्तरित कर दिया है, बीमित-धन प्राप्त हो सकता है। परन्तु अन्य प्रकार के बीमों की अपेक्षा इस तरह के बीमों के प्रीमियम की किस्त कम होती है। उन लोगों के लिये ऐसा बीमा अत्यन्त उपयोगी होता है जो अपनी आमदनी में से अधिक नहीं बचा सकते। वे इसके द्वारा कम से कम द्रव्य के सहारे अपने उत्तराधिकारियों के हितार्थ यथेष्ठ प्रबन्ध कर सकते हैं। आरम्भ में इन्हीं आजीवन बीमों को सर्वोत्तम समझा जाता था; किन्तु आजकल लोग इसे अधिक पसन्द नहीं करते। आजीवन बीमे का सब से बड़ा दोष यह है कि यदि बीमित अधिक काल तक जीवित रहता है—तो प्रीमियम की किस्तें चुकाते-चुकाते उसकी नाक में दम आ जाता है और वृद्धावस्था में आय घट जाने पर प्रीमियम की ये किस्तें उसे भार-स्वरूप प्रतीत होने लगती हैं।

बन्दोबस्ती बीमा (Endowment Policies) : ऐसे बीमे के अनुसार बीमित को बीमित-रकम निश्चित अवधि के पूर्ण होने पर प्राप्त हो जाती है। यदि उस अवधि की समाप्ति के पूर्व ही उसकी मृत्यु हो जाय तो मृत्यु होने पर उसके उत्तराधिकारी को बीमित-धन मिल जाता है। इसके अन्तर्गत प्रीमियम की किस्तें, बीमा की गई अवधि के अन्त अथवा बीमित-व्यक्ति की मृत्य तक ही, चुकानी पड़ती हैं। वर्तमान समय में इसी बन्दोबस्ती-बीमे का सर्वाधिक प्रचलन है। बीमे की यह प्रणाली अत्यन्त सरल, हितपूर्ण तथा लाभदायक है। इसका प्रचार विशेष कर नौकरी पेशा लोगों में है, जिनकी आय एक निश्चित अवस्था के पश्चात् घट जाती है और जो अपने जीवन का अन्तिम भाग शान्तिपूर्वक व्यतीत करना चाहते हैं। इस प्रणाली पर बीमा कराने से आजीवन बीमों के समान यह लाभ तो होता ही है कि यदि बीमित की मृत्यु शीघ्र ही हो जाय तो उसके परिवार के लिये कुछ प्रबन्ध हो जाता है। साथ ही एक लाभ यह भी होता है कि यदि बीमित बीमे की अवधि के अनन्तर भी जीवित रहे तो बीमित-धन को प्राप्त करके वह अपने जीवन के शेष दिन बिना किसी प्रकार की आर्थिक कठिनाई उठाये ही आनन्दपूर्वक व्यतीत कर सकता है। ऐसा बीमा कितने वर्षों के लिये कराना चाहिये, यह प्रत्येक व्यक्ति की निजी परिस्थिति, आवश्यकता तथा आर्थिक-अवस्था आदि बातों पर निर्भर होता है।

संयुक्त-जीवन-बीमा (Joint Life Policies) : साधारणतः प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का पृथक्-पृथक् बीमा हुआ करता है, किन्तु दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों के जीवन का बीमा संयुक्त रूप से एक साथ भी हो सकता है। इस प्रकार के बीमे को संयुक्त-जीवन-बीमा कहते हैं। इस बीमा-प्रणाली के अन्तर्गत दो पुरुषों अथवा एक स्त्री और एक पुरुष का संयुक्त बीमा हो सकता है; जैसे किसी व्यवसाय में संलग्न दो साझीदार अथवा पति-पत्नी अपने जीवन का संयुक्त बीमा करा सकते हैं। उदाहरण के लिये यदि पति-पत्नी का संयुक्त बीमा हुआ है तो उनमें से किसी एक की मृत्यु हो जाने पर जीवित व्यक्ति को बीमित-धन मिल जायगा। इसी प्रकार किसी व्यावसायिक

फर्म में यदि दो साझीदार है तो वे भी अपना संयुक्त-बीमा करा सकते हैं। दो से अधिक साझीदारों के जीवनों का भी संयुक्त-बीमा हो सकता है। किन्तु बीमितों की संख्या दो से अधिक होने पर प्रीमियम की किस्त-दर अधिक हो जाती है। इसका कारण यह है कि एक व्यक्ति की अपेक्षा दो, तीन, अथवा चार व्यक्तियों में से एक के मर जाने की सम्भावना अधिक हो जाती है। इसी प्रकार दो व्यक्तियों में से एक व्यक्ति की मृत्यु की सम्भावना अधिक होती है। यदि किसी फर्म के साझीदार अपने साझे को समाप्त कर दें तो उन्हें अपने संयुक्त-बीमे को समान मात्रा में अलग करा लेने का अधिकार होता है। पृथक् होते समय उनकी जो आयु होगी, उसीके अनुसार भविष्य में उन्हें प्रीमियम देना पड़ता है।

यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि संयुक्त-जीवन-बीमे पृथक् जीवन-बीमों के समान आजीवन भी हो सकते हैं और बन्दोबस्ती भी। यदि कोई संयुक्त-बीमा आजीवन श्रेणी का है तो बीमित जीवनों में से किसी एक के क्षय होन पर ही बीमित-धन बीमा-कम्पनी से प्राप्त हो सकता है। किन्तु यदि वह बन्दोबस्ती श्रेणी का है, तो बीमित-धन या तो निश्चित अवधि के समाप्त होने अथवा उसके पूर्व ही किसी संयुक्त-बीमित की मृत्यु होने पर प्राप्त हो जाता है।

अन्तिम-शेष-जीवित-बीमा (Last Survivor Assurance) : यह संयुक्त जीवन-बीमा का ही एक रूप है। अनेक परिवारों में दो अथवा अधिक धनोपार्जन करने वाले होते हैं। यदि किसी परिवार के दो जीवन-निर्वाहकों में से एक की मृत्यु हो जाय तो परिवार पर विशेष संकट नहीं आवेगा। क्योंकि भविष्य में दूसरा व्यक्ति परिवार का भार संभाल लेगा। ऐसी स्थिति में विशेष संकट की अवस्था को दृष्टिकोण में रखते हुए ऐसा संयुक्त-बीमा कराया जा सकता है जिसका भुगतान पहले संयुक्त-बीमित की मृत्यु के स्थान पर अन्तिम संयुक्त-बीमित की मृत्यु पर होता है। इस प्रकार के बीमों के प्रीमियम की किस्त कुछ हलकी होती है। अन्तिम-शेष-जीवित-बीमा लाभ-सहित और लाभ-रहित

दोनों प्रकार का हो सकता है। एक ही परिवार के दो अथवा अधिक व्यक्ति भी एक साथ मिल कर ऐसा संयुक्त-बीमा करा सकते हैं। जितने ही अधिक व्यक्ति अपना संयुक्त बीमा इस प्रकार कराते हैं, प्रीमियम की किस्त का परिमाण भी उतना ही कम होता है।

इस प्रकार के बीमे का रूपया सभी संयुक्त-बीमितों की मृत्यु के पश्चात् ही प्राप्त हो सकता है। बन्दोबस्ती अन्तिम-शेष-जीवित बीमे (Endowment Last Survivor Assurance) के अनुसार निश्चित अवधि के पूर्व ही यदि सब संयुक्त बीमितों की मृत्यु हो जाय तो उसी समय बीमित-धन मिल जाता है।

ऋण-पत्रीय बीमा (Debenture System Assurance) : बीमित की मृत्यु के पश्चात् साधारणतः उसके उत्तराधिकारी को सम्पूर्ण बीमित-धन प्राप्त हो जाता है। एक साथ आवश्यकता से अधिक धन पाकर, बहुत संभव है, कि वह उसका दुरुपयोग कर डाले और इस प्रकार थोड़े ही दिनों में उसे नष्ट करके पुनः संकटापन्न हो जाय। बीमित को इस आशंका से मुक्त करने के लिये कुछ बीमा कम्पनियों ने उक्त बीमा-प्रणाली को आरम्भ किया है। इसके अनुसार बीमित की मृत्यु के अनन्तर उसके उत्तराधिकारी को बीमित-धन न देकर, बीमा कम्पनी उसे अपने पास ही ऋण के रूप में जमा रखती है और उसके बदले में एक ऋण-पत्र उस उत्तराधिकारी को दे देती है। इस ऋण-पत्र पर बीमा-कम्पनी एक निश्चित अवधि अथवा उत्तराधिकारी की मृत्यु तक लगातार ऊँची दर से व्याज देती रहती है। मृत्यु के पश्चात् सम्पूर्ण बीमित-धन उस उत्तराधिकारी के उत्तराधिकारी को अथवा उस व्यक्ति को जिसके नाम वह ऋण-पत्र हस्तान्तरित कर दिया गया है, मिल जाता है। इस प्रकार के बीमों में बीमा-संस्था को बहुत-सा रूपया व्याज के रूप में देना पड़ता है। इसलिये इसके प्रीमियम की किस्त-दर कुछ भारी होती है। ऐसी बीमा पालिसी को गोल्ड बांड पालिसी (Gold Bond Policy) भी कहते हैं।

किस्ती-बीमा (Instalment Assurance) : ऐसे बीमों का तात्पर्य यह होता है कि बीमित के उत्तराधिकारी को सम्पूर्ण बीमित-धन एक

साथ न मिल कर किस्तों के रूप में प्राप्त होगा। अपनी इस सुविधा के कारण कम्पनी इस प्रकार के बीमों के प्रीमियम की किस्त हलकी रखती है। प्रीमियम कम होने का कारण एक यह भी होता है कि कम्पनी को किस्तों के रूप में केवल बीमित-धन ही देना पड़ता है, ब्याज नहीं। बीमित के उत्तराधिकारी को यह लाभ होता है कि वह बीमित-धन के अपव्यय की जोखिम से बच जाता है।

इस पद्धति का सबसे बड़ा अवगुण यह है कि यदि बीमित का उत्तराधिकारी किस्तों की समाप्ति के पश्चात् भी जीवित रहा तो वह कठिनाइयों में पड़ सकता है। इस दोष को दूर करने के लिये बीमा-कम्पनियाँ कुछ अधिक प्रीमियम के बदले में उत्तराधिकारी की मृत्यु तक किस्तें देते रहने के लिये प्रस्तुत हो जाती हैं। इस श्रेणी के बीमों के प्रीमियम को निश्चित करने में केवल बीमित की ही नहीं वरन् उसके उत्तराधिकारी की सम्भावित आयु को भी ध्यान में रखा जाता है।

आजीवन-सीमित-बीमा (Whole life Limited Payments Policy) : साधारण आजीवन बीमों का मुख्य दोष यह होता है कि बीमित को अपनी वृद्धावस्था में भी प्रीमियम की किस्तें चुकानी पड़ती हैं। इस अवगुण को दूर करने के लिये आजीवन-सीमित-किस्त-प्रणाली निकाली गई है। इस प्रणाली के अनुसार किस्तें देने के लिये एक अवधि निश्चित कर दी जाती है। इसी निश्चित समय तक बीमित को अपने बीमे के प्रीमियम की किस्तें चुकानी पड़ती हैं। यदि बीमित उस समय के व्यतीत हो जाने पर भी जीवित रहता है तो भी उसे किस्तें चुकाने की आवश्यकता नहीं होती और बीमित-धन में उसकी मृत्यु तक प्रति वर्ष लाभ जुड़ता जाता है। इन्हीं कारणों-वश ऐसे बीमों के प्रीमियम की किस्त साधारण आजीवन बीमों से कुछ अधिक होती हैं। किन्तु आजीवन होने के कारण बीमित की मृत्यु के पश्चात् ही बीमित-धन उसके उत्तराधिकारी को मिल सकता है।

एक किस्ती आजीवन-बीमा (Single Premium Whole life Policy) : केवल एक किस्त में ही सारा प्रीमियम चुका देने से भी लाभ-सहित अथवा लाभ-रहित आजीवन बीमा हो सकता है। यह एक किस्त सारी किस्तों

के वर्त्तमान मूल्य के बराबर होती है। विभिन्न अवस्थाओं के लिये यह किस्त भिन्न-भिन्न होती है।

आरम्भिक अल्प-किस्ती बीमा (Early Reduced Premium Assurance) : कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कोई व्यक्ति एक बड़ी रकम के लिये बीमा कराने का इच्छुक होता है; किन्तु उसकी तत्कालीन आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं होती कि ऐसे बीमे के प्रीमियम की भारी किस्तें सरलतापूर्वक दे सके। यदि उस व्यक्ति को यह आशा हो कि भविष्य में शीघ्र ही उसकी आय बढ़ जायगी और वह भारी किस्तों के चुकाने में समर्थ हो जायगा, तो ऐसी स्थिति में बीमा कम्पनी उसे यह सुविधा देने का प्रबन्ध कर सकती है कि बीमे के आरम्भिक वर्षों म किस्त की दर कम हो और आगे चल कर जब बीमित भारी किस्तें देने में समर्थ हो जाय, उसके बीमे की किस्त-दर अधिक कर दी जाय।

दोहरा बन्दोबस्ती-बीमा (Double Endowment Assurance) : इसके अनुसार यदि बीमित की मृत्यु बीमे की अवधि के भीतर ही हो जाती है तो बीमित के उत्तराधिकारी को सम्पूर्ण बीमित-धन प्राप्त हो जाता है। किन्तु यदि बीमित बीमे की अवधि पूर्ण हो जाने के पश्चात् भी जीवित रह जाय तो उसे बीमित-धन का दुगुना धन बीमा कम्पनी देगी इस प्रकार के बीमे के प्रीमियम की किस्तें आजीवन तथा साधारण बन्दोबस्ती बीमों की अपेक्षा अधिक भारी होती हैं। क्योंकि, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, यदि बीमित बीमे की अवधि के पश्चात् भी जीवित रहा तो बीमा कम्पनी को बीमित-धन का दुगुना बीमित को देना पड़ता है।

ऐसा बीमा उन लोगों के लिये अत्यन्त लाभकारी होता है जो अपनी किसी अयोग्यता के कारणवश अन्य प्रकार के बीमों का लाभ साधारण किस्त-दरों पर नहीं उठा सकते। इस नवीन योजना के अन्तर्गत ऐसे व्यक्ति बड़ी सरलता से अपना बीमा करा सकते हैं।

इस प्रकार के बीमों के प्रीमियम का निश्चय करने में बीमित की बीमा कराते

समय क्या आयु है, इसका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता। बीमे की अवधि के अनुसार ही उसका निश्चय किया जाता है। यदि दीर्घकाल के लिये बीमा कराया जाता है तो प्रीमियम का परिमाण कम होगा और फलतः किस्तें भी हलकी होंगी। इसी प्रकार यदि बीमा अल्पकालीन होगा, तो किस्तें भारी होंगी। इस प्रकार के बीमे लाभ-सहित नहीं हुआ करते।

शुद्ध बन्दोबस्ती-बीमा (Pure Endowment Policy) : ऐसा बीमा कराने का अर्थ होता है कि बीमित व्यक्ति को बीमे की अवधि के अन्त तक अवश्य ही जीवित रहना चाहिये। क्योंकि यदि वह अवधि के अंत के पहले ही मर जाय तो उसके उत्तराधिकारी को कम्पनी से कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। इस प्रकार के बीमों के प्रीमियम की किस्तें साधारण बन्दोबस्ती बीमों के प्रीमियम की किस्तों से हलकी होती हैं; क्योंकि इसमें जोखिम का भार बीमित पर अधिक और बीमक पर न्यून होता है। उन लोगों के लिये यह बहुत उपयोगी होता है जो स्वयं ही बीमे का लाभ उठाना चाहते हैं। आज कल ऐसे बीमों का अधिक प्रचलन नही है। वास्तव में यह जीवितावस्था का बीमा होता है, मृत्यु का नहीं।

किस्त-धन का शुद्ध बन्दोन्बस्ती-बीमा (Pure Endowment with Returns Policy) : ऐसे बीमे के अनुसार यदि बीमित व्यक्ति बीमे की अवधि तक जीवित रहता है, तभी बीमा कम्पनी उसे बीमित-धन देने के लिये वाध्य होती है। यदि उस अवधि के पहले ही बीमित की मृत्यु हो जाती है, तो उसके उत्तराधिकारी को किस्तों के रूप में प्राप्त धन ही व्याज सहित कम्पनी से प्राप्त हो सकेगा। ऐसा भी हो सकता है कि कम्पनी केवल किस्तों द्वारा प्राप्त धन ही वापिस करे और व्याज न दे। यह सब बीमें की शर्तों पर निर्भर होता है।

सीमित किस्तों का बन्दोबस्ती-बीमा (Limited Payment Endowment Assurance) : बन्दोबस्ती बीमे में यदि बीमित चाहे तो अपने प्रीमियम की किस्तों की दर इस उद्देश्य से बढ़वा सकता है कि उसकी किस्तों की संख्या न्यून हो जाय। यदि वह ऐसा करा लेता

है तो बीमे की अवधि के अंत तक उसे किस्तें नहीं चुकानी पड़ेंगी और वह उनसे शीघ्र ही छुटकारा पा सकता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि बीमित-धन भी अवधि की समाप्ति के पूर्व ही प्राप्त हो जायगा। बीमित-धन तो उसी समय प्राप्त हो सकेगा जब बीमे का निश्चित समय समाप्त हो जायगा। और यदि अवधि की समाप्ति के पूर्व ही उस की मत्यु हो जाय, तो निश्चित समय के अन्त के पूर्व भी बीमित-धन प्राप्त हो जायगा। इस प्रकार के बीमे में बीमित की इच्छानुसार बीमित-धन को किस्तों द्वारा प्राप्त करने की व्यवस्था भी हो सकती है।

वृद्ध-कालीन लाभ का बीमा (Old age Benefit Assurance) : इस प्रकार का बीमा आजीवन और बन्दोबस्ती-बीमो का मिश्रण होता है। इसके अनुसार बीमित को एक निश्चित अवस्था प्राप्त कर लेने पर बीमा कंपनी से एक निश्चित रकम प्राप्त हो जाती है। इसके पश्चात् बीमित के जीवित रहने की दशा में कम्पनी उसे प्रति पाँचवें अथवा दसवें वर्ष क्रमशः अधिक धन देती रहती है साथ ही उसकी मत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी को संपूर्ण बीमित-धन भी प्राप्त हो जाता है। इन लाभो के कारण इस कोटि के बीमों का प्रीमियम अन्य प्रकार के बीमों के प्रीमियम की अपेक्षा अधिक होता है। यह बात बीमित की इच्छा पर छोड़ दी जाती है कि किस समय से वह वृत्ति चाहता है। इस बीमा-प्रणाली को अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिये एक उदाहरण लीजिये। कल्पना कीजिये कि किसी व्यक्ति ने एक हजार रूपये का बीमा इस पद्धति के अनुसार कराया है और यह शर्त रक्खी है कि ५५ वर्ष की अवस्था से उसे पंचवर्षीय वृत्ति प्राप्त होनी चाहिये। इस दशा में वृत्तियों का निम्नांकित क्रम होगा :—

यदि	बीमित	५५	वर्ष	तक	जीवत	रहता	है	—	५० रू०
"	"	६०	"	"	"	"	"	—	१०० रू०
"	"	६५	"	"	"	"	"	—	२५० रू०
"	"	७०	"	"	"	"	"	—	५०० रू०
"	"	७५	"	"	"	"	"	—	१००० रू०
"	"	८०	"	"	"	"	"	—	५००० रू०

उक्त रकम के अतिरिक्त मृत्यु के पश्चात बीमित के उत्तराधिकारी को सम्पूर्ण बीमित-धन भी प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार का बीमा उन व्यक्तियों के लिये बहुत लाभकारी होता है जो अधिक समय तक जीवित रहने की आशा रखते है।

अल्प-कालीन बीमा (Term Assurance) : ऐसे बीमों का उद्देश्य व्यक्तियों को अल्पकालीन संकटों अथवा जोखिमों से सुरक्षित करना होता है। इस प्रकार का बीमा करा कर बीमित विशेष जोखिम से अपने आश्रितों को बचा सकता है। उदाहरणार्थ यदि कोई मनुष्य थोड़े समय के लिये सेना में भर्ती हो जाता है तो युद्ध-काल के लिये उसके जीवन पर जोखिम अधिक हो जाता है। इस जोखिम के विरुद्ध यदि वह मनुष्य अपना बीमा करा लेता ह और उसकी मृत्यु हो जाती है, तो उसके आश्रितों को बीमित-धन प्राप्त हो जायगा। यदि वह युद्ध-काल के पश्चात् भी सुरक्षित बच जाता है, तो कम्पनी से उसे कुछ भी नहीं मिल सकता। इस प्रणाली के बीमों की अवधि कुछ महीनों से लेकर कुछ वर्षों तक ही हो सकती है—१५ या २० वर्ष तक। ये बीमे दीर्घ-कालीन न हो सकने के कारण ही अल्प-कालीन कहलाते हैं।

ह्रासमान अवधी-बीमा (Decreasing Term Assurance) : यह अवधी-बीमे का ही दूसरा रूप है। इस बीमे के अनुसार बीमित-धन समय व्यतीत होने के साथ-साथ क्रमशः कम होता जाता है। अतः इसके प्रीमियम की दर अन्य बीमों की अपेक्षा कम होती है। महाजनों के लिये ऐसा बीमा बहुत हितकर होता है। उदाहरण के लिये यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को कुछ धन उधार देता है जिसको ऋणी नियमित किस्तों के द्वारा चुकायेगा। अब यदि ऋणी अपने ऋण की सम्पूर्ण किस्तों को भुगताने के पूर्व ही मर जाय तो ह्रासमान अवधी-बीमे के अनुसार महाजन बीमा कम्पनी से अपना शेष ऋण वसूल कर सकता है। इसलिये महाजन ऋण देने के लिये इस प्रकार का बीमा कराने की शर्त रख सकते हैं। इसे ह्रासमान कहने का कारण यही है कि जैसे-जैसे ऋणी अपने ऋण की किस्तें चुकाता जाता है, प्रीमियम की दर भी उसी क्रम

से घटती जाती है; क्योंकि बीमा-कम्पनी की जोखिम ऋण की किस्तों के अदा होने के साथ-साथ कम होती जाती है।

परिवर्तित अवधी-बीमा (Convertible Term Assurance) : इस योजना के अनुसार बीमित को बीमे की अवधि समाप्त होने पर उसको आजीवन अथवा अधिक समय तक कराने की निमित्त पुनः स्वास्थ्य-परीक्षा कराने की आवश्यकता नहीं होती। बिना स्वास्थ्य-परीक्षा के ही वह अपने बन्दोबस्ती बीमे को तत्कालीन आयु के अनुसार प्रीमियम की किस्तें देने का समझौता कम्पनी के साथ करके अपने बीमे को आजीवन-बीमे के रूप में परिवर्तित करा सकता है अथवा आगामी निश्चित अवधि के लिये उसको बढ़ा सकता है।

ऊपर जीवन-बीमे की कतिपय पद्धतियों का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार से जीवन-बीमे किये जाते हैं जिनका उल्लेख स्थानाभाव के कारण यहाँ हो सकना सम्भव नहीं। तथापि महिलाओं और बालकों के बीमे के विषय में संक्षिप्त रूप से कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है।

महिलाओं का बीमा : हमारे देश में स्त्रियों के बीमे का विशेष प्रचार नहीं है। जो कुछ प्रगति इस समय हम देखते हैं, वह अभी निकटपूर्व ही में हुई है। इसका प्रमुख कारण देश की अधिकांश नारियों की आर्थिक परतन्त्रता है।

साधारणतः बीमा कम्पनियाँ एकाकी जीवन व्यतीत करने वाली अथवा विधवाओं का, जो स्वयं ही अपनी जीविका का उपार्जन तथा कुटुम्ब का भरण-पोषण करती है, बीमा करना पसन्द करती हैं। अधिकतर पर्दानशीन, अशिक्षित अथवा प्रीमियम की किस्तें चुका सकने में असमर्थ स्त्रियों का बीमा स्वीकार नहीं किया जाता। इस प्रकार २५ वर्ष से न्यूनावस्था की युवतियों का बीमा भी प्रायः स्वीकृत नहीं होता। विवाहित स्त्रियों का बीमा यद्यपि हो सकता है, किन्तु कुछ विशेष शर्तों पर ही; जैसे, यदि उनकी मृत्यु बीमा होने के एक वर्ष के भीतर ही गर्भ के कारण हो जाय तो सम्पूर्ण बीमित-धन प्राप्त नहीं हो सकता बल्कि केवल चुकाई हुई किस्तें ही वापस मिल सकती हैं। गर्भवती स्त्रियों का

बीमा बीमा-कम्पनियाँ कभी नहीं करतीं। मृत्यु-तालिका को देखने से ज्ञात होता है कि १५ वर्ष से ४५ वर्ष की अवस्था की स्त्रियों की मृत्यु-दर पुरुषों की अपेक्षा ऊँची होती है; इसके पश्चात् पुरुषों की मृत्यु-संख्या इनकी अपेक्षा अधिक हो जाती है। अतः स्त्रियों के जीवन का बीमा करने में कम्पनियों को अधिक जोखिम उठाना पड़ता है।

बालकों की शिक्षा, विवाह आदि का बीमा : इस प्रकार का बीमा बीमित अपनी सन्तान की शिक्षा, विवाहादि कार्यों के व्यय की व्यवस्था के लिये कराता है। इसके द्वारा सन्तान का भविष्य सुरक्षित हो जाता है और माता-पिता अथवा संरक्षक की मृत्यु के पश्चात् उनको आर्थिक संकट झेलने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जिस बालक के हितार्थ बीमा कराया जाता है, एक निश्चित आयु प्राप्त कर लेने पर उसे बीमे की रकम मिल जाती है। यदि बीमे की अवधि के बीच में ही उस बालक की मृत्यु हो जाय तो बीमे की शर्तों के अनुसार या तो प्रीमियम के रूप में दिया हुआ धन वापस मिल जाता है अथवा बीमे की पालिसी दूसरे बालक के नाम में हस्तान्तरित कर दी जाती है।

अध्याय १२

वृत्तियाँ

किसी बीमा-कम्पनी में एक साथ अथवा किस्तों द्वारा जमा की हुई रकम के बदले में जमा करने वाले व्यक्ति को निश्चित समयान्तर पर जो छोटी-छोटी किस्तें कम्पनी से मिलती रहती हैं, उन्हें वृत्तियाँ कहते हैं। वृत्ति-धन और बीमित-धन में यह अन्तर होता है कि बीमित-धन बीमित को किसी निश्चित समय अथवा उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी को मिलता है, किन्तु वृत्ति-धन वृत्तिक्रेता या वृत्तिपात्र को उसके जीवन-काल ही में मृत्यु-पर्यन्त निश्चित समयान्तर पर किस्तों के रूप में प्राप्त हो जाता है। मृत्यु के पश्चात् वृत्ति का मिलना बन्द हो जाता है और उत्तराधिकारी को कुछ भी प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार वृत्ति जीवन-बीमा से विपरीत होती है।* किसी निश्चित अवधि के लिये एक निश्चित वृत्ति-दर के निमित्त कितना धन बीमा कम्पनी वृत्ति-क्रेता से वसूल करेगी, यह मृत्यु-तालिकाओं तथा व्याज-दर पर आधारित होता है।

वृत्तियों से लाभ : वास्तव में वृत्तियाँ जीवन-बीमे की अपेक्षा अधिक लाभदायक होती हैं। इनके द्वारा मनुष्य की वृद्धावस्था के दिन सुख और शान्ति से व्यतीत हो सकते हैं, क्योंकि उस समय उसे बीमा-कम्पनी से एक निश्चित आय प्राप्त होती रहेगी। यद्यपि बन्दोबस्ती बीमे की अवधि की समाप्ति पर बीमित को एक साथ सम्पूर्ण बीमित-धन प्राप्त हो जाता है, किन्तु उसके अपव्यय का भय

---

*"Annuity is insurance turned upside down".

भी साथ-साथ लगा रहता है। वृत्तियों के सम्बन्ध में ऐसा कोई भय नहीं हो सकता क्योंकि वे अल्प मात्रा में छमाही अथवा वार्षिक किस्तों के रूप में उपलब्ध होती हैं। दूसरा लाभ यह होता है कि इनके आयुपर्यन्त मिलते रहने के कारण अन्य धन-संग्रह (Investment) के साधनों की अपेक्षा मूलधन पर आय भी अधिक होती है। एक ही बार में पर्याप्त धन देकर वृत्ति का प्रबन्ध कर लेने से भविष्य तथा निरुद्यमावस्था की चिन्ताओं से व्यक्ति मुक्त हो जाता है। व्यवसाय में पूंजी लगा कर लाभ उठाना कोई सरल कार्य नहीं है। वे ही व्यक्ति व्यवसाय अथवा व्यापार से लाभ उठा सकते हैं जिन्हें उसका अनुभव है। अतः अनुभवहीन व्यक्ति का इसमें अपनी पूंजी लगाना अधिक भयपूर्ण है और लाभ के स्थान पर हानि के अवसर उसके लिये अधिक सम्भावित हो सकते हैं। किन्तु पूंजी को वृत्तियों में लगाने से ऐसी कोई जोखिम नहीं होती। वे व्यक्ति की सुविधा के अनुसार मासिक, तिमाही, छमाही, वार्षिक आदि हो सकती हैं। किन्तु बार-बार वृत्तियाँ देने में कम्पनी को अधिक व्यय करना पड़ता है। अतएव वृत्ति प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति को मूलधन भी अधिक मात्रा में देना पड़ता है। इसलिए वार्षिक-वृत्ति का प्रबन्ध छमाही, तिमाही आदि वृत्तियों की अपेक्षा अधिक श्रेयष्कर होता है। अपने स्वास्थ्य का प्रमाण बीमा-कम्पनी को देने की आवश्यकता वृत्ति-क्रेता को नहीं पड़ती, क्योंकि उसकी मृत्यु से कम्पनी को किसी प्रकार की आशंका नहीं होती।

विभिन्न प्रकार की वृत्तियों का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है:—

स्त्री-पुरुष की जीवन-वृत्तियाँ (Male and Female Life Annuities) : स्त्री तथा पुरुष की वृत्तियों के सम्बन्ध में बीमा-कम्पनियाँ बड़ा विभेद करती हैं। बीमा के सम्बन्ध में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को प्रीमियम अधिक देना पड़ता है तथापि अन्तिम वर्षों में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को उससे अधिक लाभ होता

है। यह बात स्पष्टतः कुछ विपरीत-सी प्रतीत होती है। प्रश्न हो सकता है कि जब स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिकतर किस्त-दर से प्रीमियम चुकाती हैं तब वृद्धावस्था में उन्हें लाभ न्यून परिमाण में क्यों प्राप्त होता है ? इसका कारण यह है कि कुछ विशेष आयु-कालों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की मृत्यु-संख्या अधिक होती है। बीमा विशेषज्ञों का अनुभव है कि ५० वर्ष की अवस्था तक पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की मृत्यु-दर अधिक होती है क्योंकि इस काल में वे माता बनती रहती है। इस काल के पश्चात् वे माता बनने के अयोग्य हो जाती हैं और इसी कारण उनकी मृत्यु-दर भी गिर जाती है। किन्तु ५० वर्ष की अवस्था के पश्चात् पुरुषों की मृत्यु-दर बढ़ जाती है। इन्हीं अनुभवों के आधार पर स्त्रियों के लिये बीमों के प्रीमियम की किस्त अधिक होती है। इसी प्रकार वृत्ति प्राप्त करने के लिये वृत्ति-क्रय धन भी उन्हें पुरुषों की अपेक्षा अधिक देना पड़ता है।

एक जीवन तथा संयुक्त-जीवन-वृत्तियाँ (Single and Joint Life Annuities) : प्रायः वृत्ति की व्यवस्था एक ही जीवन के लिये की जाती है। उस जीवन के समाप्त हो जाने पर वृत्ति भी बन्द हो जाती है। एक ही परिवार के दो अथवा दो से अधिक व्यक्ति अपने जीवनों पर संयुक्त रूप से वृत्ति ले सकते हैं। ऐसी संयुक्त-जीवन-वृत्तियों में एक शर्त यह रहती है कि यदि वृत्ति आरम्भ होने के पश्चात् वृत्ति-पात्र व्यक्तियों में से एक की मृत्यु हो जायगी तो वृत्ति का मिलना भी बन्द हो जायगा। संयुक्त जीवन-वृत्ति प्राप्त करने के लिये अधिक धन बीमा-कम्पनी को देने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि एक से अधिक व्यक्तियों के समूह में एक व्यक्ति के मरने और फलतः वृत्ति बन्द हो जाने की सम्भावना अधिक रहती है।

संयुक्त शेष-जीवित वृत्ति (Joint Life Survivor Annuity) : एक से अधिक व्यक्ति जब संयुक्त-जीवन-वृत्ति लेते हैं, तो उसमें यह शर्त भी हो सकती है कि जब तक अन्तिम वृत्ति-पात्र की मृत्यु न हो जाय,

वृत्ति का मिलना बन्द न हो। इस प्रकार की वृत्ति पति-पत्नी के संयुक्त जीवन पर लेना बहुत उपयोगी होता है क्योंकि एक की मृत्यु के पश्चात् दूसरे को वृत्ति लगातार मिलती रहेगी। ऐसी वृत्ति का मूल्य साधारण संयुक्त-जीवन-वृत्ति की अपेक्षा अधिक होता है।

तात्कालिक और विलम्बित वृत्तियाँ (Immediate and Deferred Annuities): तात्कालिक वृत्ति का प्रबन्ध उस अवस्था में किया जाता है जब कि कोई व्यक्ति अपने, अपनी सन्तान अथवा अपने परिवार के किसी सदस्य के जीवन-निर्वाह के लिये तत्काल व्यवस्था कर देना आवश्यक समझता है। इस प्रकार की वृत्ति के अनुसार वृत्ति-प्राप्त व्यक्ति को निश्चित समयान्तर पर निश्चित रकम किस्त के रूप में मिलती रहती है। जैसे ही वृत्ति-क्रय-धन (Consideration for Annuities Granted) बीमा-कम्पनी को दे दिया जाता है, वृत्ति का मिलना आरम्भ हो जाता है और वृत्ति-पात्र की मृत्यु के पश्चात् यह व्यवस्था समाप्त हो जाती है।

विलम्बित-वृत्ति भी वृत्ति-क्रय-धन एक साथ अथवा किस्तों द्वारा अदा करके ली जा सकती है। यदि इसका वृत्ति-क्रय-धन किस्तों द्वारा चुकाया जाता है, तो वृत्ति का मिलना उसी समय आरम्भ हो सकता है, जब वृत्ति का पूरा मूल्य बीमा-कम्पनी प्राप्त कर लेती है। यदि एक साथ ही वृत्ति-क्रय-धन दे दिया जाय तो भी वृत्ति का मिलना एक निश्चित अवधि के समाप्त होन पर ही आरम्भ होता है। निर्धारित समय के पूर्व ही यदि वृत्ति-पात्र की मृत्यु हो जाय, तो भी कम्पनी वृत्ति का मूल्य लौटाती नहीं। इसलिये विलम्बित-वृत्ति की दर अपेक्षाकृत हल्की होती है। किन्तु बीमा-कम्पनी की शर्तों के अनुसार कुछ अतिरिक्त वृत्ति-क्रय-धन देने पर उसे लौटाया जा सकता है। इस अवस्था में उक्त धन ब्याज सहित लौटाया जायगा अथवा ब्याज रहित, यह पक्षों के पारस्परिक समझौते पर निर्भर होता है। प्रायः इस प्रकार की वृत्ति की व्यवस्था मनुष्य अपनी जीर्णावस्था के लिये करता है।

गैरंटी सहित वृत्ति (Guaranteed Payment Annuity): प्रायः वृत्ति-प्राप्त व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् वृत्ति का मिलना बन्द हो

जाता है और साथ ही वृत्ति का मूल्य भी वापस नहीं मिलता। इस प्रकार यदि वृत्ति-प्राप्त व्यक्ति की मृत्यु अनुमानित अवस्था के पूर्व ही हो जाय तो वृत्ति-क्रेता को हानि होना स्वाभाविक ही है। ऐसी आशंका के वशीभूत होकर लोग वृत्ति लेने में हिचकते हैं। इस आशंका को मिटाने के लिये बीमा-कम्पनियाँ उक्त प्रकार की वृत्ति देना स्वीकार कर लेती हैं। गैरंटी-सहित-वृत्ति के अनुसार वृत्ति-प्राप्त-व्यक्ति की मृत्यु के अनन्तर उसके उत्तराधिकारी को वृत्तियाँ मिलते रहने की गैरंटी वृत्ति-पत्र में रहती है। यदि वृत्ति-पात्र व्यक्ति कुछ वृत्तियों का उपभोग कर चुकने के पश्चात् मर जाता है, तो कम्पनी की ओर से उसके उत्तराधिकारी को अवशिष्ट वृत्तियाँ देने की गैरंटी दी जाती है।

उत्तराधिकार-वृत्ति (Reversionary Annuity) : इस प्रकार को वृत्ति प्राप्त करने के लिये यह शर्त होती है कि वृत्ति-क्रेता की मृत्यु के समय वृत्ति-पात्र जीवित रहे। इसका तात्पर्य यह है कि वृत्ति-क्रेता तथा वृत्ति-पात्र दोनों के जीवन-काल में वृत्ति की किस्तें कम्पनी लेती है। जब वृत्ति का प्राप्त होना एक बार चालू हो जाता है तब वह क्रम वृत्ति-पात्र की मृत्यु तक चलता रहता है। यदि वृत्ति-पात्र वृत्ति-क्रेता के जीवन में ही मर जाय, तो वृत्ति का कॉन्ट्रैक्ट भी उसके साथ ही समाप्त हो जाता है और बीमा-कम्पनी को दी हुई वृत्ति-क्रय रकम उसके पास ही रह जाती है। किन्तु एक वृत्ति-पात्र की मृत्यु होने पर दूसरे वृत्ति-पात्र को वृत्तियाँ मिलने की व्यवस्था इस वृत्ति-प्रणाली के अन्तर्गत हो सकती है। अतएव, वृत्ति-क्रेता की स्वास्थ्य-परीक्षा उत्तराधिकार-वृत्तियों के लिये आवश्यक होती है।

अध्याय १३

मूल्यांकण बचत और लाभ

मूल्यांकण (Valuation)

वर्तमान समय में बीमे के प्रीमियम की किस्त बीमित की आयु-वृत्ति के साथ बढ़ती नहीं, वरन् बीमा कराते समय जो किस्त निश्चित कर दी जाती है वही बीमे की पूरी अवधि तक चलती रहती है। ये किस्तें न्यून आयु के लिये जितनी होनी चाहिये उससे कुछ अधिक और अधिक आयु के लिये जितनी होनी चाहिये उससे कुछ कम होती हैं। ऐसा इसलिये किया जाता है कि भविष्य में बीमों के दावों का भुगतान सुगमता से किया जा सके। आरम्भ में वास्तविक-किस्त से जो अधिक धन बीमा-कम्पनी बीमित से वसूल करती है, उसे वह चक्रवृद्धि व्याज पर लगा देती है। इसका परिणाम यह होता है कि भविष्य में प्रीमियम की किस्तों की दर बढ़ाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक पालिसी पर एक विशिष्ट रकम जोड़ते जाना चाहिये जो व्याज द्वारा बढ़कर भविष्य में बीमित-धन का भुगतान करने के लिये पर्याप्त हो सके। इस वृद्धि को संचय (Reserve) कहा जाता है। इस संचय को बीमा-कम्पनी का लाभ समझना एक बड़ी भूल होगी, क्योंकि भविष्य में बीमा पालिसियों का भुगतान करने के लिये इसकी आवश्यकता होती है।

किसी भी वर्ष में बीमा-कम्पनी को प्रीमियम के रूप में तथा अन्य साधनों से कितनी आमदनी होती है और दावों का भुगतान करने, व्यवस्था आदि में कितना खर्च होता है, ये सब बातें उसके चिट्ठे (Balance sheet) में प्रदर्शित की जाती है। व्यय से आय की अधिकता शुद्ध लाभ नहीं दिखाती। जीवन-बीमा कम्पनियों के हिसाब में व्यय के ऊपर आय

की जो अधिकता होती है, वह प्रति वर्ष एक कोष में एकत्रित होती रहती है। इस कोष को जीवन-कोष (Life Fund) कहते हैं। वास्तव में जीवन-कोष पर बीमितों का प्रभुत्व होता है और बीमा-कम्पनी केवल उसकी ट्रस्टी मात्र होती है। यदि बीमा-कम्पनी उसका दुरुपयोग करती है तो भविष्य में वह अपने बीमितों के दावों का भुगतान करने में स्वयं को असमर्थ पावेगी।

यह जानना भी आवश्यक है कि किसी कम्पनी विशेष का जीवन-कोष उसके द्वारा किये गये जीवन-बीमों के दायित्व के तुल्य है अथवा नहीं। इसके लिये उस कम्पनी की व्यावसायिक तथा आर्थिक दशा से अवगत होना आवश्यक होता है। ऐसा ज्ञान हम उसके मूल्याङ्कन के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। भारतवर्ष में प्रति पाँचवें वर्ष कम्पनी की व्यावसायिक तथा आर्थिक दशा की जाँच अथवा मूल्याङ्कन होना कानूनन अनिवार्य है। यह कम्पनी की इच्छा पर है कि उक्त जाँच पाँच वर्ष व्यतीत होने के पूर्व ही करा ले। मूल्याङ्कन के द्वारा कम्पनी के लाभ-हानि का पता भी चल जाता है। यह कार्य अत्यन्त जटिल होता है और इसे अङ्क-शास्त्र (Statistics) गणित-शास्त्र (Mathematics) और बीमा-कार्य में पारंगत व्यक्ति ही सम्पादित कर सकते हैं। ऐसे व्यक्तियों को अंग्रेजी में एक्चुअरी (Actuary) कहते हैं।

मूल्यांकन की विधि : बीमा-कम्पनी की आर्थिक अवस्था की जांच करने और उसका मूल्य आँकने के लिये तीन बातों का ज्ञान आवश्यक होता है:—(१) जीवन-कोष में एकत्रित धन, (२) भविष्य में बीमितों से प्रीमियम की किस्तों के रूप में प्राप्त होने वाली आय, (३) भविष्य में भुगताये जाने वाले दावों का परिमाण।

एक्चुअरी सर्वप्रथम कम्पनी को प्राप्त होने वाली भावी किस्तों का तात्कालिक मूल्य निकालता है। इसके पश्चात् वह इस बात का हिसाब लगाता है कि भविष्य में कम्पनी को जो धन दावों के भुगतान में देना पड़ेगा, उसका तात्कालिक मूल्य क्या है। इतना कर चुकने के अनन्तर वह शुद्ध-

दायित्व मालूम कर सकता है। दायित्व मालूम करने के लिये दावों और प्रीमियम की किस्तों के तात्कालिक-मूल्य का अन्तर ज्ञात करना पड़ता है। दावों का तात्कालिक-मूल्य किस्तों के तात्कालिक-मूल्य से अधिक होता है। यही आधिक्य शुद्ध-दायित्व कहलाता है। शुद्ध-दायित्व के समान परिमाण में जीवन-कोष का होना आवश्यक है। शुद्ध-दायित्व से जीवन-कोष जितनी मात्रा में अधिक होता है, वही बीमा-कम्पनी की बचत (Surplus) कहलाती है। यदि जीवन-कोष शुद्ध दायित्व से न्यून है, तो जितनी न्यूनता होगी वही उसकी घटी (Deficiency) समझी जाती है। निम्नाङ्कित मूल्याङ्कन के चिट्ठे से उक्त बातें स्पष्ट हो जायँगी :—

आय-व्यय का विवरण-पत्र (Valuation Balance Sheet)

दायित्व (Liabilities)		सम्पत्ति (Assets)	
	रू०		रू०
भविष्य में मिलने वाली किस्तों का तात्कालिक मूल्य...	————	भविष्य में उपस्थित होने वाले दावों का तात्कालिक मूल्य	————
शेष —शुद्ध दायित्व (Net Liabilities)...	————		————
	————		रू० ————
	रू० ————		
जीवन कोष....	————	शेष शुद्ध दायित्व	——
घाटा....	————	बचत . .	——
	————		————
	रू० ————		रू० ————

समय-समय पर बीमा-कम्पनियों के मूल्याङ्कन होते रहने से तीन उद्देश्यों की पूर्ति होती है :—

(१) मृत्यु-दर, पूँजी पर ब्याज प्राप्ति और प्रारम्भिक तथा आवर्तक व्ययों की सम्भावनाओं को सम्मुख रख कर बीमा-कम्पनियाँ प्रीमियम की किस्तें निर्धारित करती हैं। किन्तु व्यवसाय आरम्भ होने के पश्चात्

उक्त तीनों दिशाओं के यथार्थ अनुभवों तथा सम्भावनाओं पर आधारित अनुमानों में थोड़ा-बहुत अन्तर अवश्य लक्षित होता है। यह अन्तर मूल्याङ्कन के द्वारा ज्ञात हो जाता है। इसके ज्ञात होने पर वे अपने वास्तविक दायित्व से अवगत हो जाती हैं।

(२) मूल्याङ्कन के द्वारा उस धन के वास्तविक परिमाण का भी ज्ञान हो जाता है जो बीमितों के दावों का भुगतान करने के लिये पर्याप्त होगा, अर्थात् वह धन मालूम हो जाता है जो चक्रवृद्धि व्याज पर बढ़ता रहता है और जिसमें भविष्य में प्राप्त होने वाली प्रीमियम की किस्तें भी चक्रवृद्धि पर लगी हुई सम्मिलित होती रहती हैं ।

(३) कम्पनी अपनी बचत का भी निश्चय कर सकती है। यही बचत लाभ के रूप में बीमितों और हिस्सेदारों को प्राप्त होती है।

बचत और लाभ (Surplus and Profit) : हम ऊपर देख चुके हैं कि कम्पनी की बचत जानने के लिये भविष्य में उपस्थित होने वाले दावों तथा प्राप्त होने वाले प्रीमियम की किस्तों का तात्कालिक मूल्य आँकना आवश्यक होता है। पहले में से दूसरे को घटा देने से कम्पनी का शुद्ध-दायित्व ज्ञात हो जाता है। यदि कम्पनी की आर्थिक दशा बुरी नहीं है, तो शुद्ध-दायित्व जीवन-कोष के तुल्य अवश्य होगा। यदि जीवन-कोष शुद्ध-दायित्व से अधिक है, तो जितना अधिक है वही आधिक्य उस कम्पनी की बचत है। उदाहरण के लिये यदि भविष्य में प्राप्त होने वाले प्रीमियम का तात्कालिक मूल्य 'अ' और भविष्य में उपस्थित होने वाले दावों का तात्कालिक मूल्य 'ब' हो, तो जीवन-कोष को कम से कम (ब–अ) के बराबर अवश्य होना चाहिये। किन्तु यह तभी होगा जब कम्पनी की आर्थिक अवस्था सन्तोषजनक होगी। यदि जीवन-कोष (ब–अ) से कम है, तो इसका स्पष्ट अर्थ यही हो सकता है कि कम्पनी की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं। उक्त कोष (ब–अ) से जितना अधिक होता है वही अधिकता कम्पनी की बचत कहलाएगी।

इस बचत का कुछ भाग असम्भावित घटनाओं से सुरक्षा, कम्पनी की स्थिति सुदृढ़ बनाने इत्यादि के निमित्त पृथक् कर लिया जाता है। जो शेष

बचता है, वही कम्पनी का लाभ कहलाता है।

बीमा-कम्पनी के लाभ के साधन (Sources of Surplus) : निम्नलिखित साधनों से बीमा-कम्पनियों को लाभ होता है :—

(१) व्याज से,
(२) बीमितों की मृत्यु-संख्या कम होने से,
(३) प्रीमियम की किस्तों को व्ययांश द्वारा भारी बनाने (Loading) से,
(४) किस्तों को लाभ के लिये भारी बनाने से,
(५) अन्य साधनों से, आदि।

(१) व्याज द्वारा : प्रीमियम की किस्तों का निश्चय करते समय की अनुमानित व्याज-दर की अपेक्षा धन-संग्रह के साधनों से प्राप्त-दर ऊंची होती है। इस प्रकार इन दोनों दरों में कुछ अन्तर रहता है। यह अन्तर बीमा-कम्पनी के लाभ का एक साधन होता है। इसके द्वारा उसके कोष की वृद्धि होती है। उदाहरण के लिये यदि कम्पनी किस्तों के निश्चय के लिये तीन रूपया प्रतिशत प्रति वर्ष का हिसाब लगाती है और अपने धन को चार रूपया प्रतिशत प्रतिवर्ष पर लगाने का अनुमान कर लेती है, तो इस प्रकार १ रू० प्रतिशत प्रतिवर्ष का लाभ निश्चित रूप से आगामी मूल्याङ्कन के समय तक होता रहेगा। यदि वह अपनी पूंजी को उत्तम और सुव्यवस्थित उद्योगों में लगाती है, तो निःसन्देह अनुमानित व्याज-दर से अधिक दर उसे प्राप्त हो सकती है।

(२) अल्प मृत्यु-संख्या द्वारा : जिस मृत्यु-तालिका के आधार पर बीमा-कम्पनी अपने प्रीमियम की किस्तें निर्धारित करती है, यदि बीमितों की मृत्यु उससे कम संख्या में होती है, तो उसे कम दावे चुकाने पड़ेंगे। इस प्रकार जितना धन दावों के भुगतान में व्यय होना चाहिये, उससे न्यून मात्रा में व्यय होगा और इस प्रकार कुछ शेष बच रहेगा। अतः कम्पनी का एक प्रकार से यह लाभ होगा। बीमा-कम्पनियाँ इसको जीवन-कोष से निकालती नहीं अपितु पूर्व-

वत् उसी में बढ़ने देती हैं। फलतः, जीवन-कोष का कलेवर भी बढ़ता जाता है। वास्तविकता यह है कि जिन व्यक्तियों को बीमा-कम्पनियों के डाक्टर कठिन स्वास्थ्य-परीक्षा के पश्चात् बीमा के लिये छाँटते हैं, वे अनुमानित संख्या से कम ही संख्या में मृत्यु को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार प्रतिवर्ष सम्भावना से कम दावे चुकाने के फलस्वरूप कम्पनी को लाभ होता है। अब एक यथार्थ उदाहरण लीजिये। प्रीमियम की दर निश्चित करते समय जो मृत-तालिका प्रयुक्त हुई, उसके अनुसार किसी अमुक कम्पनी को अमुक वर्ष में बीमों के दस दावे चुकाने चाहिये। किन्तु उस वर्ष यदि आठ ही दावों का भुगतान उसे करना पड़ता है, तो दो बीमों की रकम बच रहती है। निःसन्देह आगे चलकर इन दो दावों का भुगतान भी कम्पनी को करना ही होगा और इसके लिये यह हितकर होगा कि उस धन को कोष में बना रहने दिया जाय। किन्तु, जब तक दावों के भुगतान का समय नहीं आता, कम्पनी को उस धन पर चक्रवृद्धि व्याज का लाभ प्राप्त होता रहेगा ।

(३) किस्तों को भारी बनाने से : कम्पनी का वास्तविक व्यय उस व्यय से कम ही होता है जो वह औसत के आधार पर बीमितों से प्रीमियम की किस्तों के साथ वसूल करती है। इस प्रकार कम्पनी के वास्तविक व्यय तथा बीमितों से प्राप्त व्यय-धन का अन्तर उसका लाभ होता है। कार्य जितना ही सुव्यवस्थित और सुचारु रूप से चलता है, बीमा कम्पनियों को उतना ही इस साधन से लाभ होता है।

(४) किस्तों को लाभ के लिये भारी बनाने से : कभी-कभी प्रीमियम की किस्तें लाभ के दृष्टिकोण से भी भारी बना दी जाती है। इस प्रकार जो धन बीमा-कम्पनी को प्रीमियम से अधिक मात्रा में प्राप्त होता है, वह चक्रवृद्धि व्याज के साथ बढ़ कर उसके लाभ का एक अंग हो जाता है। किन्तु लाभ-सहित बीमों की किस्तें ही इस प्रकार भारी बनाई जा सकती है।

(५) अन्य साधनों द्वारा : उपरोक्त वर्णित साधनों के अतिरिक्त बीमा-कम्पनियों के लाभ-अर्जन करने के अन्य भी अनेक साधन होते हैं। उनमें

से कुछ-एक का यहाँ पर संक्षिप्त वर्णन दिया जाता है।

यदि कोई बीमित अपने बीमे की किस्तें यथा-समय नहीं चुका पाता, तो कम्पनी पहले दी हुई किस्तों का रूपया जब्त कर लेती है और बीमा का कॉन्ट्रैक्ट भी रद हो जाता है। इसी प्रकार यदि कोई बीमित बीमे के प्रस्ताव में किसी प्रकार की असत्य बात या वक्तव्य लिख देता है अथवा स्वास्थ्य-परीक्षक या कम्पनी के प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर नही देता और जानबूझ कर किसी मूलभूत तथ्य को छिपा लेता है, तो इस दशा में भी कम्पनी उस के द्वारा अदा की गई किस्तों के धन को ज़ब्त तथा बीमा कॉन्ट्रैक्ट को समाप्त कर सकती है। ऐसे ही एक और उदाहरण ले सकते है। बहुत से बीमित अपने बीमें की किस्तें चुकाने में असमर्थ होकर उनको चुकता (Paid up) करा लेते हैं। इसका तात्पर्य, जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे, यही होता है कि बीमित, कम्पनी को किस्तों के रूप में दिये गयें धन से, कम ही वापस प्राप्त कर सकते हैं। इस भाँति यह भी कम्पनी के लाभ का एक साधन है।

लाभ का वितरण : बीमा-कम्पनियों को इन उपरोक्त साधनों से जो लाभ होता है वह उनके हिस्सेदारों तथा बीमितों में वितरित कर दिया जाता है। प्रायः बीमितों को लाभ नकद रूपयों में नहीं दिया जाता बल्कि उनकी पालिसियों पर ही अंकित कर दिया जाता है और भुगतान के समय बीमित-धन के साथ-साथ दे दिया जाता है।

संयुक्त-पूंजी बीमा-कम्पनियों के लाभ पर सिद्धान्ततः तो हिस्सेदारों का ही पूर्ण अधिकार होता है, किन्तु व्यावहारिक रूप में उसके एक बहुत बड़े भाग का उपभोग बीमित ही करते हैं। अधिकतर बीमा-कम्पनियों में हिस्सेदारों को ५ से २५ प्रतिशत तक लाभांश प्राप्त होता है। अवशेष भाग बीमितों के मध्य विभक्त कर दिया जाता है। पारस्परिक सहयोगी बीमा-कम्पनियों में हिस्सेदार न होने के कारण सम्पूर्ण लाभ के अधिकारी बीमित ही होते हैं।

जो व्यक्ति अपना लाभ-सहित बीमा कराते हैं, उन्हें बीमे की अवधि समाप्त होने पर बीमित-धन और लाभांश दोनों प्राप्त हो जाते हैं। किन्तु लाभ-रहित बीमितों को बीमित-धन के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं होता।

न्यायपूर्ण और पक्षपातहीन लाभ के वितरण करने के लिये बीमा-संस्थाओं को अत्यन्त सतर्कतापूर्वक अपनी लाभ-वितरण-प्रणाली का निर्धारण करना पड़ता है। विभिन्न बीमा-कम्पनियाँ पृथक्-पृथक् लाभ वितरण की प्रणालियों का अनुसरण करती हैं। किन्तु इतना अवश्य है कि जब तक कोई लाभ-सहित बीमा दो वर्ष तक चालू नही रह चुका होता, कोई भी बीमा कम्पनी उस पर लाभ नहीं देती।

बोनस (Bonus) : बीमा कम्पनियों के उस लाभांश को, जो बीमितों को दिया जाता है, बोनस कहते हैं। यह बोनस कई प्रकार के होते हैं, जैसे—

नकद बोनस (Cash Bonus) : बोनस के निश्चय होने के पश्चात् ही जो लाभांश बीमितों को नकद मिल सकता है, नकद बोनस कहलाता है। अधिकतर तो इसे बीमित-धन में ही जोड़ दिया जाता है; किन्तु यदि बीमित चाहे तो इसे नकद भी ले सकता है। बोनस की इस योजना के अन्तर्गत बीमित को यह अधिकार भी होता है कि यदि वह चाहे तो अपने लाभांश को उत्तराधिकारी (Reversionary) लाभ में बदला कर बीमित-धन को बढ़ा सकता है। इसका उपयोग वह अपने प्रीमियम की किस्तों को कम कराने में भी कर सकता है। किन्तु इससे, अधिक आयु वाले बीमितो को हानि होती है, क्योंकि उनके बीमों का भुगतान शीघ्र ही होता है। बोनस की यह प्रणाली जनता को कुछ जटिल प्रतीत होती है। अतएव इसका अधिक उपयोग नही किया जाता।

चक्रवृद्धि उत्तराधिकारी बोनस (Compound Reversionary Bonus) : इसके अनुसार बीमित की आयु, बीमा की अवधि अथवा उसकी किस्म पर कुछ भी ध्यान न देकर, कम्पनी के मूल्यांकन होने के पश्चात्, लाभ सभी प्रकार के लाभ-सहित बीमों में समान रूप से एक निश्चित प्रतिशत से बाँट दिया जाता है। किन्तु यह लाभ नकद नहीं मिलता। इसे बीमा-पालिसियों पर ही चढ़ा दिया जाता है। जब दूसरी बार, कम्पनी का मूल्यांकन होता है, तब केवल बीमित-धन पर ही नहीं वरन् पिछली बार दिये गये लाभ

पर भी लाभ की प्रतिशत दी जायगी ।

साधारण उत्तराधिकारी बोनस (Simple Reversionary) Bonus) : इसमें चक्रवृद्धि का सिद्धान्त लागू नहीं होता। प्रत्येक बार लाभ केवल बीमित-धन पर ही लगाया जाता है।

सहायक बोनस : इस रीति के अनुसार जितने ही अधिक समय तक बीमा पालिसी चालू रहती है, बीमित को उतना ही अधिक लाभ भी मिलता है। साधारण उत्तराधिकारी-बोनस-प्रणाली से इसमें केवल यही विभिन्नता होती है कि पालिसी के दीर्घकालीन होने के कारण लाभ अधिक मात्रा में संचित हो जाता है। इस देश में बोनस की इस पद्धति का अनुसरण करने वाली कोई बीमा-कम्पनी नहीं है। विदेशों में भी इसका चलन क्रमशः गिरता जा रहा है।

प्रीमियम घटानें वाला बोनस (Reduction of Premium Bonus) : अनेक बीमा-कम्पनियाँ लाभ न देकर लाभ के अनुपात से प्रीमियम की किस्त ही न्यून कर देनी है। आरम्भ में कुछ वर्षों तक बीमा पालिसियों पर लाभ एकत्रित होता रहता है। इसके अनन्तर प्रीमियम की किस्त उस एकत्रित लाभ के सहारे घटती जाती है। इस प्रकार यदि पर्याप्त समय तक बीमा चलता रहे, तो एक समय ऐसा भी आ सकता है जब बीमित को प्रीमियम के रूप में कुछ भी न देना पड़े।

बट्टा-बोनस (Discounted Bonus) : इसके अनुसार बीमा कम्पनी जो लाभ घोषित करती है, उससे किंचित न्यून मात्रा में वह बीमित को प्राप्त होता है। इसका उपयोग भविष्य में प्रीमियम की किस्तें हल्की करने के निमित्त किया जाता है। इस प्रकार बीमित को उचित किस्त के स्थान पर न्यून किस्त चुकानी पड़ती है। यदि मूल्यांकन के द्वारा वास्तविक लाभ अनुमानित लाभ से अधिक हो जाता है, तो बीमितों को लाभ भी अधिक उपलब्ध होता है। किन्तु यदि अनुमानित-लाभ से वास्तविक लाभ न्यून होता है तो, या तो बीमित-धन का परिमाण घटा दिया जाता है अथवा किस्त-दर बढ़ा दी जाती है। अतएव,

इस प्रणाली के अन्तर्गत न तो बीमित-धन ही स्थिर रहता है और न किस्त-दर ही। इसी कारणवश जनता इस बट्टा-प्रणाली को पसन्द नहीं करती।

आंशिक-लाभ-परिपाटी (Part Profit System) : बट्टा-बोनस की परिपाटी में अस्थिरता का जो दोष है, उसे बोनस की लाभांश परिपाटी दूर कर देती है। इसके द्वारा बीमित अपने प्रीमियम के धन पर प्राप्त हो सकने वाले किसी निश्चित अंश; जैसे, $\frac{१}{२}$ अथवा $\frac{१}{३}$ का अधिकारी बन जाता है। इस प्रकार का लाभ पाने के लिये बीमित को लाभ सहित बीमे के प्रीमियम की दर से कुछ न्यून दर और लाभ-रहित बीमे के किस्त-दर से कुछ अधिक दर से प्रीमियम की किस्तें देनी पड़ती हैं। यदि बीमा-कम्पनी को कुछ भी लाभ नहीं होता तो साधारण लाभ-सहित बीमों के समान इस प्रकार के बीमों पर भी कुछ लाभ नहीं मिलता, यद्यपि बीमित-धन अथवा प्रीमियम में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। आंशिक-लाभ-प्रणाली का बीमा वे लोग पसन्द करते हैं जो लाभ-सहित पालिसियों के लिये भारी किस्तें देना नही चाहते, किन्तु लाभ-रहित पालिसियों से कुछ अधिक किस्त-दर देकर कुछ लाभ प्राप्त कर लेने की इच्छा रखते हैं।

स्थगित अथवा सशर्त बोनस (Deferred and Contingent Bonus) : अभी तक बोनस की जिन विभिन्न प्रणालियों के विषय में कहा गया है, वे सब तात्कालिक स्वभाव की होती हैं। कुछ बीमा कम्पनियाँ स्थगित-बोनस-प्रणाली का भी उपयोग करती हैं। इस प्रणाली के अनुसार बीमित को आरम्भ से नहीं, किन्तु एक निर्धारित अवधि के व्यतीत हो जाने पर कम्पनी के लाभ का भाग प्राप्त होना आरम्भ होता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि बीमित को लाभ प्राप्त होना उसी समय आरम्भ होता है जब उसके द्वारा कम्पनी को दी हुई प्रीमियम की किस्तें चक्रवृद्धि व्याज सहित किसी निश्चित व्याज-दर से बीमित-धन के तुल्य हो जाती हैं। इसका अर्थ यह होता है कि जो बीमित उक्त नियत अवधि के व्यतीत होने के पूर्व ही मर जाते हैं, उन्हें किंचित भी लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। ऐसे बीमितों से प्राप्त धन पर कम्पनी को जो लाभ होता है उसका उपयोग जीवित बीमितों के लाभार्थ किया जाता है। इस कारणवश ऐसे बीमों की

किस्त-दर अपेक्षाकृत हल्की होती है। जो बीमित निश्चित अवधि को पार करके जीवित रह जाते हैं, उन्हें पर्याप्त धन लाभ के रूप में प्राप्त हो जाता है। जब कम्पनी के आय-व्यय का चिट्ठा बनता है, तभी इस श्रेणी की पालिसियों पर लाभ घोषित किया जाता है। चूँकि लाभ का अधिकारी बीमित तभी हो सकता है जब वह एक निश्चित अवधि के अन्त तक जीवित रहे, इसीलिये यह प्रणाली सशर्त-बोनस-प्रणाली कहलाती है।

अन्तर्कालीन बोनस (Interim Bonus) : बीमा-कम्पनियाँ प्रत्येक मूल्यांकन के पश्चात् लाभ घोषित करती है। किन्तु एक मूल्यांकन के समय से दूसरे मूल्यांकन के समय के बीच बीमितों के दावे उपस्थित होते रहते हैं, जिन्हें कम्पनी को चुकाना पड़ता है। इन दावों का भुगतान करने के निमित यह आवश्यक होता है कि कम्पनी उनके अन्तर्कालीन लाभ को आँके। किन्तु प्राय: बीमा-कम्पनियाँ पिछली बार घोषित लाभ के आधार पर ही उसका हिसाब लगा लेती हैं, जिसके फलस्वरूप बीमित अथवा उसके उत्तराधिकारियों को हानि हो सकती है। अत: कुछ बीमा-कम्पनियाँ इस बात को ध्यान में रख कर भावी तथा विगत मूल्यांकनों के बीच के समय के लिये लाभ वितरण करने की दर निश्चित कर लेती है, और इस दर के अनुसार उपस्थित होने वाले दावों पर लाभ देती हैं।

लाभ कब प्राप्त होता है ? बीमा-व्यवसाय से अपरिचित व्यक्ति प्राय: यह समझते हैं कि कम्पनी द्वारा घोषित लाभ, पालिसी पर अंकित हो जाने के पश्चात् ही बीमित को प्राप्त हो जाता है। किन्तु, वास्तव में ऐसा नहीं होता। बीमा-कम्पनियाँ दावे का भुगतान करते समय ही उसे बीमित अथवा उसके उत्तराधिकारी को बीमित-धन के साथ देती हैं। यद्यपि इतना अवश्य है कि इस भावी लाभ का तात्कालिक मूल्य, बीमित किसी भी समय प्राप्त कर सकता है, किन्तु यह तात्कालिक मूल्य इतना अल्प होता है कि बीमित उसे नकद लेना पसन्द नहीं करते और वह या तो बीमा-पालिसी में अंकित

होता रहता है अथवा प्रीमियम की किस्त उसी मात्रा में हल्की कर दी जाती है। ज्यों-ज्यों बीमें की अवधि व्यतीत होती जाती है, लाभ का तात्कालिक मूल्य भी अधिक होता जाता है और पालिसी के भुगतान के समय तक अपने वास्तविक मूल्य पर आ जाता है। लाभ का तात्कालिक मूल्य बीमित की आयु पर निर्भर रहता है, क्योंकि पृथक्-पृथक् आयु के व्यक्तियों की औसत जीवन-सम्भावनाएँ, जैसा कि सर्व विदित है, विभिन्न होती हैं।

अध्याय १४

बीमा-पालिसियों की शर्तें और उनका कानूनी महत्व

जीवन-बीमे की पालिसियों पर अनेक शर्तें अंकित रहती हैं। ये शर्तें सभी कम्पनियों की पालिसियों में समान नहीं होतीं। उनमें अनेक अन्तर दीख पड़ते हैं। किन्तु उन सबका आधार अवश्य ही एक होता है। उनमें से कोई भी शर्त देश में प्रचलित कानून के प्रतिकूल नही हो सकती। प्रत्येक बीमा-कम्पनी समय-समय पर अपनी नियमावली अथवा विवरण-पत्रिका प्रकाशित किया करती हैं। इन नियमावलियों में बीमों की सभी शर्तें संक्षेप में विहित रहती हैं। ये ही बीमा पालिसी में भी मुद्रित रहती हैं। इन्हीं पर बीमा-कम्पनी और बीमित के मध्य किया गया बीमे का कॉन्ट्रैक्ट आधारित होता है। दोनों पक्षों में से यदि कोई किसी अथवा किन्हीं शर्तों को भंग करता है, तो निर्दोष पक्ष दोषी पक्ष के विरुद्ध न्यायालय में अभियोग चला कर अपने स्वत्व तथा क्षति-पूर्ति के लिये डिग्री (Decree) प्राप्त कर सकता है।

जोखिम का आरम्भ (Commencement of risk)

जैसे ही प्रस्तावक के प्रस्ताव को स्वीकार करके बीमा-कम्पनी उससे अपने प्रीमियम की पहली किस्त चुकाने के लिये कहती है और वह उसे अदा कर देता है, वैसे ही कम्पनी के ऊपर उसके जीवन की जोखिम आ जाती है और कम्पनी शर्तों के अनुसार बीमित-धन देने के लिये उत्तरदायी बन जाती है। प्रीमियम की प्रथम किस्त कम्पनी को प्राप्त होते ही प्रस्तावक 'बीमित' कहलाने लगता है। किस्त चुकाने के यदि दूसरे दिन ही बीमित की मृत्यु हो जाय, तो भी कम्पनी बीमित-धन का भुगतान करने के लिये बाध्य होती है। किन्तु जब

तक पहली किस्त कम्पनी को प्राप्त नहीं हो जाती, उसके ऊपर कोई उत्तरदायित्व नहीं आता।

प्रीमियम की किस्तें चुकाने की रीतियाँ (Manner of Payment of Premiums) : बीमे की किस्तें वार्षिक, छमाही, तिमाही अथवा मासिक रूप में जिस प्रकार भी बीमित बीमे का प्रस्ताव करते समय सुविधाजनक समझता है, चुकाई जा सकती है। अपनी इच्छानुसार कम्पनी को सूचित करके बीमित किस्तों के उक्त क्रम को बदल भी सकता हैं। छमाही, तिमाही और मासिक किस्तें वार्षिक किस्त के वास्तविक अनुपात से कुछ अधिक होती है।* वार्षिक किस्त देने से कम्पनी बीमित को कुछ बट्टा भी देती है। किन्तु प्रत्येक दशा में प्रीमियम की एक किस्त सदैव अग्रिम (in advance) जमा रखती पड़नी है।

रिआयत के दिन (Days of grace) : साधारणतः किस्त चुकाने के लिये जो तिथि निश्चित होती है, उस तक किस्त कम्पनी के पास पहुँच जाना चाहिये। किन्तु बीमा-कम्पनियाँ इस मामले में कठोरता से व्यवहार नहीं करती और निश्चित समय से कुछ अधिक समय किस्त चुकाने के लिये दे देती है, जिससे बीमित सरलतापूर्वक किस्त-धन का प्रबन्ध करके उसे अदा कर दे। वार्षिक, छमाही तथा तिमाही किस्तों को चुकाने के लिये इस प्रकार निश्चित तिथि से एक मास का समय और दिया जाता है। मासिक किस्तों के लिये यह समय केवल १५ दिन का होता है। रिआयत

---

*प्रायः ये दर इस आधार पर निर्धारित होती हैं :—

छमाही अथवा अर्धवार्षिक-दर	:	वार्षिक दर का आधा + इस पर २½ प्रतिशत
तिमाही ” त्रैमासिक-दर	:	वार्षिक-दर का चौथाई + इस पर ५ प्रतिशत
मासिक-दर	:	वार्षिक -दर का बारहवाँ + इस पर एक आना प्रति रुपया।

की इस अवधि के अन्त तक किस्त कम्पनी के पास अनिवार्यतः पहुँच जानी चाहिये। यदि इस अवधि के अन्तिम दिन कोई अवकाश (Holiday) रविवार पड़ता है, तो उस अवकाश के दूसरे कार्य-रत (Working day) दिवस को वह किस्त कम्पनी को प्राप्त हो जानी चाहिये। डाकखाने अथवा किसी अन्य साधन के द्वारा किस्त की रकम भेजने पर यदि वह कम्पनी को उचित समय पर प्राप्त नहीं होती, और उसके परिणाम-स्वरूप बीमा-पालिसी समाप्त (Lapse) हो जाती है, तो बीमा कम्पनी इसके लिये उत्तरदायी नहीं ठहराई जा सकती। जब कोई पालिसी इस प्रकार समाप्त हो जाती है, तब उसका पुनर्जीवन (Revival) कराना पड़ता है।

किस्त चुकाने की तारीख के पूर्व बीमा-कम्पनी प्रायः अपने बीमितों को किस्त अदा करने का सूचना-पत्र (Premium Notices) भेज देती है। किन्तु इस सूचना-पत्र को भेजने के लिये वह वाध्य नहीं है। यदि कोई बीमित बीमा पालिसी समाप्त हो जाने पर यह कहे कि सूचना न मिलने के कारण वह अपनी किस्त ठीक समय पर नहीं चुका सका और इसके लिये कम्पनी उत्तरदायी है, तो यह कारण कानून की दृष्टि से व्यर्थ होगा।

बीमित का व्यवसाय (Occupation): सभी व्यवसाय एक ही समान जोखिमी नही होते। खानों और सेना में काम, वायुयानों का संचालन आदि कार्य अधिक जोखिमी होते हैं। इनमें संलग्न व्यक्ति किस समय अपने प्राणों से हाथ धो बैठेंगे, यह कहना बहुत ही कठिन होता है। दूसरी ओर कुछ व्यवसाय ऐसे होते हैं जिनमें इतना भय नहीं होता; जैसे, व्यापार, चिकित्सा, अध्यापन आदि। बीमा-कम्पनियाँ उन लोगों से अधिक प्रीमियम वसूल करती हैं जो अधिक जोखिमी व्यवसायों में लगे होते हैं। जिस व्यवसाय में जीवन पर जितनी ही कम जोखिम होगी उसमें निरत व्यक्तियों के लिये बीमे की प्रीमियम-दर भी उतना ही कम होगी। अतः सैनिकों, खानों में काम करने वालों आदि के जीवन-बीमों का प्रीमियम अन्य अल्प-जोखिमी

उद्योगों में संलग्न व्यक्तियों के बीमों की अपेक्षा अधिक होती है। शान्ति-काल में कुछ बीमा-कम्पनियाँ स्थलीय अथवा जल-सेना आदि में काम करने वालों का बीमा साधारण प्रीमियम की दर से ही कर लेती हैं; किन्तु वे अपना यह अधिकार सुरक्षित रखती हैं कि जब ऐसे बीमित युद्ध में प्रवेश करेंगे, तो सूचना प्राप्त होते ही उनके प्रीमियम की किस्त-दर बढ़ा दी जायगी। जब उक्त बीमित अपने भयपूर्ण काम से वापस आ जाते हैं, और कम्पनी को उसकी सूचना दे देते हैं, तब बीमा-कम्पनियाँ उनके प्रीमियम की दर घटा देती हैं। यदि सैनिक सेना अथवा ऐसे ही किसी अन्य खतरनाक काम को करने वाला बीमित अपने व्यवसाय को स्थायी रूप से त्याग दे, और कम्पनी को इस सम्बन्ध में सूचित भी कर दे, तो कम्पनी अधिक जोखिम के निमित्त लगाये गये को भी प्रीमियम की किस्तों से पृथक् कर देती है।

विदेश निवास तथा यात्रा (Foreign Residence and Travel) : स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से सभी देशों की जलवायु तथा परिस्थितियाँ लाभ-प्रद नहीं होतीं। अतः कुछ समय पूर्व तक बीमा-कम्पनियाँ अपने बीमितों के विदेश-निवास और यात्रा करने में आपत्ति किया करती थीं। किन्तु अब वे ऐसा नहीं करतीं। इसलिये आजकल उनकी पालिसियाँ सार्वदेशिक कहलाती हैं। वर्त्तमान समय में बीमित अपने देश को छोड़कर चाहे किसी देश में निवास कर सकता है। उसके स्थान-परिवर्तन का उसके बीमे पर कोई प्रभाव नही पड़ता।

स्वास्थ्य-प्रद जलवायु में रहने पर रिआयत: यदि बीमति भूमध्यरेखा से ३३° अक्षांश उत्तर किसी देश में पर्यटन के लिये जाय, तो उसे पर्यटन-काल में अपने प्रीमियम पर बीमा कम्पनी से ५ प्रतिशत की छूट मिल सकती है। यह सुविधा भारत, बर्मा, लंका, तथा सुदूर-पूर्व से रवाना होने और वहाँ पहुँचने के समय तक जारी रहती है।

जीवन-बीमे की आपत्ति-मुक्ति (Indisputability of the

Policy) : सन् १९३८ के भारतीय बीमा-विधान की ४५वीं धारा के अनुसार दो वर्ष तक चालू रह चुकने वाले किसी भी जीवन-बीमे के विषय में बीमा-कम्पनी को इस आधार पर आपत्ति उठाने का अधिकार नहीं होता कि प्रस्ताव-पत्र, स्वास्थ्य-परीक्षक, या एजेन्ट अथवा मित्र की रिपोर्ट में कोई असत्य अथवा अशुद्ध सूचना बीमित ने दी है। किन्तु इसके लिये यह आवश्यक है कि वह अशुद्ध या असत्य सूचना बीमित ने जानबूझ कर कम्पनी को धोका देने के लिये किसी मूलभूत तथ्य (Material fact) के विषय में न दी हो।

आत्मघात (Suicide) : भारतीय बीमा-विधान के अनुसार यदि कोई बीमित बीमा कराने के एक वर्ष के भीतर ही उन्मादवश अथवा उससे मुक्त होने पर आत्महत्या कर ले, अथवा कानून द्वारा उसे प्राण-दण्ड दिया जाय, तो कम्पनी को यह अधिकार होता है कि वह ऐसे व्यक्ति की बीमा पालिसी को रद कर दे। साथ ही प्रीमियम के रूप में प्राप्त धन को भी वापस लौटाने की आवश्यकता कम्पनी को नहीं होती। किन्तु, यदि उक्त व्यक्ति ने पालिसी की जामिनी पर ऋण लेकर उसे अपने महाजन के नाम में प्रदान कर दिया है, तो कम्पनी पालिसी को रद नहीं कर सकती। पर इसके लिये शर्त यह होती है कि आत्महत्या अथवा प्राण-दण्ड की आज्ञा की तारीख से कम से कम एक मास पूर्व प्रदान (Assignment) की रजिस्टरी कम्पनी के कार्यालय में अवश्य हो जानी चाहिये। कम्पनी ऐसी दशा में महाजन के प्रति उतने ही धन के लिये उत्तरदायी होती है. जितना उसने वास्तव में अपराधी बीमित को ऋण के रूप में दिया था।

औसत-निम्न-जीवन-बीमा (Under Average Life Assurance) : जिन लोगों का स्वास्थ्य और पारिवारिक तथा व्यक्तिगत इतिहास औसत श्रेणी के व्यक्तियों से निम्न कोटि का होता है, बीमा कम्पनी उनका बीमा प्रायः स्वीकार नहीं करतीं; क्योंकि ऐसे बीमे स्वीकार करने से उन्हें आवश्यकता

से अधिक जोखिम लेना पड़ता है। किन्तु उपरोक्त श्रेणी के व्यक्तियों का बीमा स्वीकार करने से कानून उन्हें रोकता नहीं। जो बीमा-कम्पुनियाँ ऐसे बीमे स्वीकार करती हैं, वे जोखिम अधिक होने के कारण उनके लिये प्रीमियम की किस्त-दर भी उसी अनुपात से भारी कर देती हैं। साधारणतः बीमा-पालिसी के दर्शनीय-मूल्य पर एक निश्चित प्रतिशत के हिसाब से उस आधिक्य की गणना कर ली जाती है जो औसत श्रेणी से निम्न कोटि के स्वास्थ्य वाले बीमितों से कम्पनी को उनके प्रीमियम के साथ वसूल करना होता है। अनेक कम्पनियाँ जोखिम की गुरुता ध्यान में रखते हुये प्रस्तावक की वास्तविक आयु में कुछ वर्ष और जोड़ देती हैं, और इस नवीन आयु के आधार पर प्रीमियम वसूल करती हैं। एक प्रणाली विशेषाधिकार (Lien) की भी होती है। इस प्रणाली के अनुसार प्रीमियम की किस्तें तो साधारण दर से ही ली जाती है, किन्तु बीमा-कम्पनी यह शर्त लगा देती है कि यदि बीमित एक निश्चित अवधि की समाप्ति के पूर्व ही मर जायगा तो उसके उत्तराधिकारियों को सम्पूर्ण बीमित-धन प्राप्त न होकर कुछ कम प्राप्त होगा। जैसे-जैसे बीमित इस निश्चित अवधि की समाप्ति की ओर बढ़ता जाता है, बीमित-धन का प्राप्तव्य परिमाण भी उत्तरोत्तर वृद्धि करता जाता है। यदि बीमित इस प्रकार उस निश्चित अवधि की सीमा को पार करके जीवित बच जाता है, तो वह सम्पूर्ण बीमित-धन प्राप्त करने का अधिकारी भी हो जाता है। इसके साथ ही कम्पनी का विशेषाधिकार (Lien) भी समाप्त हो जाता है।

खोई हुई पालिसियाँ (Lost Policies) : यदि किसी बीमित की पालिसी खो जाय तो वह कम्पनी से उसकी प्रति-लिपि प्राप्त कर सकता है। किन्तु इसके लिये उसे सन्तोषप्रद प्रमाण देना पड़ता है, अर्थात् यह प्रमाणित करना आवश्यक होता है कि बीमित ने अपनी पालिसी न तो गिरवीं (Mortgage) रक्खी है और न तो किसी के नाम में प्रदान ही किया है। इस प्रकार का प्रमाण और ३ रू० शुल्क देने पर बीमा कम्पनी

से खोई हुई पालिसी को प्रतिलिपि (True Copy) प्राप्त हो सकती है। इसके साथ ही बीमित को नवीन पालिसी का टिकट और विज्ञापन व्यय भी सहन करने पड़ते हैं।

बीमित-धन में वृद्धि (Additional Assurance) : एक बार स्वास्थ्य-परीक्षा हो जाने के ३ मास के भीतर ही यदि कोई बीमित अपना बीमित-धन बढ़ाना चाहे, तो उक्त स्वास्थ्य-परीक्षा कराने की पुन: आवश्यकता नहीं होती। स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यक प्रमाण लेकर ही बीमा-कम्पनी सन्तोष कर लेती है। बीमा-धन के बढ़ाने के प्रस्ताव को बीमा का एक नवीन प्रस्ताव समझा जाता है। इस नवीन बीमें के होने पर बीमित को बीमा-कम्पनी से एक नई पालिसी मिलती है। इसके प्रीमियम की किस्त-दर प्रथम बीमे के समान नहीं वरन् बीमित की तात्कालिक आयु के अनु-सार होती है, क्योंकि यह उसका एक अंग नहीं समझा जाता।

बीमे की शर्तों में परिवर्तन (Alteration in Policies) : एकबार बीमे की शर्तें निश्चित हो जाने के पश्चात् कम्पनी उनमें परिवर्तन करना पसन्द नही करती। किन्तु अपने नियमों के अन्तर्गत बीमित की सुविधा के लिये वह ऐसा कर भी सकती है। साधारणत: बीमे की अवधि में भारी परिवर्तन नही हो सकते। उदाहरणार्थ कम्पनी यह कभी स्वीकार नहीं करेगी कि दीर्घ अवधि के स्थान पर शीघ्र ही—३० वर्ष के स्थान पर पाँच ही वर्ष में—बीमा भुगतान के योग्य हो जाय। परिवर्तनों के लिये कम्पनी कुछ शुल्क भी लेती है। अधिक किस्त वाले बीमों को न्यून किस्त वाले बीमों में परिवर्तित नही किया जा सकता। यदि प्रीमियम की किस्तें मासिक, तिमाही छमाही, अथवा वार्षिक चुकाई जाती हैं, तो उन्हें कोई भी रूप सुगमतापूर्वक दिया जा सकता है। आजीवन सीमित किस्ती बीमे को अधिक किस्तें देने से सर्वा-धिक बीमें में बदला जा सकता है। संक्षेप में कम्पनी ऐसा कोई भी परि-वर्तन स्वीकार नही कर सकती जिससे उसे आर्थिक क्षति की सम्भावना हो।

स्वास्थ्य-परीक्षा का शुल्क (Fee for Medical Examination) प्रस्तावक की स्वास्थ्य-परीक्षा की फीस साधारणतः बीमा कम्पनी स्वयं ही देती है। किन्तु यदि प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने के पश्चात् प्रस्तावक इस स्वीकृति की सूचना पाकर भी अपने प्रीमियम की पहिली किस्त नहीं भेजता, तो कम्पनी प्रस्तावक से स्वास्थ्य-परीक्षा की फीस की माँग करती है। यदि प्रस्तावक फीस नहीं देता तो कम्पनी उसे अपने उस एजेन्ट से वसूल कर लेती है, जिसने यह प्रस्ताव-पत्र भराया था। इस प्रकार बीमा-कम्पनी ऐसी अनावश्यक हानियों से अपनी रक्षा कर लेती है। एक हजार रूपये से न्यून रकम का बीमा कराने पर प्रत्येक दशा में बीमित को ही स्वास्थ्य-परीक्षा का शुल्क-भार सहन करना पड़ता है।

बीमा पालिसियोंका प्रदान तथा नाम–लेखन (Assignments and Nomination of Policy) : बीमित को अपनी बीमा-पालिसी को अपने परिवार के किसी सदस्य, किसी सम्बन्धी आदि के नाम में वात्सल्य इत्यादि के आधार पर प्रदान करने अथवा लिख देने का अधिकार होता है। इसी प्रकार किसी लाभ के बदले अन्य किसी व्यक्ति के नाम कर देने का भी उसे अधिकार होता है। प्रदान अथवा नाम लेखन की कार्यवाही बीमा-पालिसी की पीठ अथवा एक पृथक् कागज पर टिकट लगा कर की जा सकती है। इस कार्यवाही को कानूनी रूप देने के लिये बीमित तथा एक साक्षी के हस्ताक्षर भी आवश्यक होते ह। इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक होता है कि प्रदान अथवा नाम-लेखन की सूचना बीमा-कम्पनी के पास रजिस्ट्री कराने के लिये भेजनी चाहिये। जब तक कम्पनी को उक्त सूचना प्राप्त नही हो जाती, वह प्रदान अथवा नाम-लेखन को क्रियात्मक रूप देने के लिये बाध्य नहीं होती। ऐसा करना बीमा अधिकारों का क्रम निश्चय करने के लिये आवश्यक होता है।

यदि पालिसी में ही नाम-लेखन सम्मिलित नही है तो उसकी पीठ र लिखने (Endorsement) से भी हो सकता है। इसको वैधानिक

रूप देने के लिये भी कम्पनी को सूचना भेज कर उसकी रजिस्ट्री करा लेना आवश्यक होता है। बीमित-धन प्राप्त करने के पूर्व किसी नाम-लेखन को नवीन नाम-लेखन अथवा वसीयतनामे (Will) के द्वारा परिवर्तित अथवा रद किया जा सकता है। किन्तु इस प्रकार के परिवर्तन अथवा रद करने की सूचना भी कम्पनी को देना वांछनीय होता है; क्योंकि ऐसा न करने पर यदि वह बीमित-धन का भुगतान उस व्यक्ति को दे देती है जिसका नाम उसके रजिस्टर में चढ़ा हुआ है अथवा जिसका नाम-लेखन पहले हुआ है, तो इस कार्य के लिये उसे उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। इसके लिये बीमित स्वयं ही उत्तरदायी समझा जायगा। यदि किसी के नाम में पहले बीमित पालिसी लिख दे, और इसके कुछ समय पश्चात् किसी अन्य व्यक्ति के नाम में उसे प्रदान (Assign) कर दे, तो इसका परिणाम यह होगा कि पूर्व नाम-लेखन (Nomination) समाप्त हो जायगा। इस प्रकार नाम-लेखन की अपेक्षा प्रदान अधिक स्थायी और सुरक्षापूर्ण होता है तथा महाजनों के विरुद्ध बीमित-धन की रक्षा भी अधिक कर सकता है। तात्पर्य यह है कि प्रदान की हुई बीमा-पालिसी पर महाजनों का कोई अधिकार नहीं होता। प्रथम नाम-लेखन के पश्चात् प्रत्येक नाम-लेखन की रजिस्टरी के लिये बीमा-कम्पनी एक रूपया शुल्क वसूल करती है।

बीमा-पालिसी के प्रदान अथवा नाम-लेखन की रजिस्टरी करते समय कम्पनी उसके औचित्य अथवा प्रभाव के विषय में अपनी कोई सम्मति प्रगट नहीं करती और न किसी बात का अपने ऊपर उत्तरदायित्व ही लेती है। उसके ऐसा करने का कारण यह होता है कि वह यह पूर्व-कल्पना कर लेती है कि जब बीमित अपनी पालिसी को किसी अमुक व्यक्ति के नाम में प्रदान अथवा लिख रहा है, तब अवश्य ही वह उससे सर्व प्रकार सन्तुष्ट होगा।

इस प्रकार वैधानिक दृष्टिकोण से नाम-लेखन प्रदान की अपेक्षा कम अधिकारप्रद है। इससे बीमित को एक बहुत बड़ा लाभ होता है और वह यह कि बीमित के जीवन-काल में पालिसी पर Nominee का कोई

अधिकार नहीं रहता। प्रदान (Assignment) बड़ी सावधानी से करना चाहिये क्योंकि यह बड़ा महत्वपूर्ण होता है और वैधानिक नियमों का अक्षरशः पालन करना पड़ता है। पालिसी प्रदान किये जाने पर पालिसी का सम्पूर्ण अधिकार Assignee को प्राप्त हो जाता है और बीमित का उसके जीवित रहते हुए भी कोई अधिकार नहीं रहता। । अतः, बीमित Assignee की अनुमति के बिना उसके अधिकार में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं कर सकता—अर्थात् न तो वह प्रदान को रद कर सकता है, न पालिसी किसी दूसरे व्यक्ति के नाम प्रदान कर सकता है और न उस पालिसी का कोई दूसरा उपयोग ही कर सकता है जब तक कि उस पालिसी को बीमित Assignee द्वारा अपने नाम में पुनर्प्रदान (Reassign) न करा ले।

प्रायः प्रथम नाम-लेखन के लिये कोई शुल्क नहीं लिया जाता किन्तु तत्पश्चात् अन्यान्य परिवर्तनों के लिये कम्पनी एक रूपया शुल्क लिया करती है। पालिसी प्रदान करने में पति, पत्नी, बच्चे इत्यादि के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के लिये कम्पनी १) रूपया शुल्क वसूल करती है।

प्रदान तथा नाम-लेखन में अन्तर : वैधानिक दृष्टिकोण से 'प्रदान' तथा 'नाम-लेखन' में बड़ा अन्तर है और जितना पूर्ण अधिकार उत्तराधिकारियों को प्रदान द्वारा मिलता है उतना नाम-लेखन द्वारा नहीं मिलता। इनके प्रमुखतः अन्तर निम्नलिखित हैं :—

प्रदान (Assignment)	नाम-लेखन (Nomination)
(१) प्रदान पालिसी की पीठ पर लिख कर अथवा पृथक् कागज पर लिख कर (Document or deed)	(१) यह कार्य बीमा कराते समय प्रस्ताव-पत्र में ही किसी व्यक्ति को नियोजित (Nomination) कर के किया जा

किया जाता है ।	सकता है और ऐसी दशा में नियोजित (Nominee) व्यक्ति के नाम का उल्लेख पालिसी के मूल्य लेख में ही रहता है। इसके अतिरिक्त पालिसी की पीठ पर लिख कर भी नाम-लेखन हो सकता है ।
(२) प्रदान में बीमित का अथवा उसके किसी अधिकृत एजेन्ट का हस्ताक्षर तथा एक साथी का हस्ताक्षर आवश्यक होता है ।	(२) नाम-लेखन में केवल बीमित ही हस्ताक्षर करता है, कोई अन्य व्यक्ति नहीं ।
(३) जिसके नाम पालिसी प्रदान की जाती है उसका पालिसी पर पूर्ण अधिकार रहता ह । अतः यदि वह चाहे तो बीमित के जीवन-काल में ही बिना उसकी अनुमति प्राप्त किये पालिसी को समर्पित करके उसका तात्कालिक-मूल्य (Surrender Value) प्राप्त कर सकता है, अथवा उस पर ऋण ले सकता है । किन्तु जिसके नाम पालिसी प्रदान हो चुकी है उसकी अनुमति के बिना बीमित ये सब नहीं कर सकता ।	(३) नियोजित-व्यक्ति (Nominee) का बीमित के जीवन-काल में पालिसी पर कोई अधिकार नहीं रहता ।
(४) पालिसी प्रदान करने के पश्चात् बीमित का पालिसी पर कोई अधिकार नहीं रहता । जिसके नाम पालिसी प्रदान हो चुकी है	(४) नाम-लेखन में बीमित को किसी भी प्रकार का परिवर्तन करने के लिये पूर्ण अधिकार रहता है और वह स्वेच्छा से. बिना

उसकी अनुमति के बिना बीमित उस पालिसी को किसी अन्य व्यक्ति के नाम उस समय तक प्रदान नही कर सकता जब तक कि, प्रदान की शर्तो के अनुसार, पहले Assignee का पालिसी में स्वार्थ रहे।

Nominee की अनुमति के, नाम-लेखन को रद कर सकता है अथवा किसी अन्य प्रकार का परिवर्तन कर सकता है।

(५) पालिसी प्रदान कर देने पर भूतपूर्व समस्त नाम-लेखन स्वयम् रद हो जाते हैं।

(५) पालिसी प्रदान होने के पश्चात् उसका नाम-लेखन (Nomination) नहीं किया जा सकता।

प्रदान पालिसी की पीठ पर निम्नांकित ढंग से किया जाता है :—

"I (————) the assured within named do hereby assign all my right, title and interest in, to or under the within written policy no .... on my life and all moneys and benefits thereby assured to my (state relationship & full name) aged......years of (full address of the assignee) provided however that should the said (name of the assignee) predecease me, or should I survive the endowment period mentioned in the within written policy, than this assignment shall be void and all moneys, benefits and profits assured by the said policy shall revert to me and form part of my estate in the same manner as if this assignment had never been made.

Dated at....................this.....................19

....

(Signature of the assignor)"

Witness to the Signature.

Name	...	...	...	"
Address	...	...	...	"
Occupation				

नाम-लेखन पालिसी की पीठ पर इस प्रकार किया जाता है :—

"I (............) the assured under the within written policy no. .... do hereby nominate my (state relationship and full name) aged......years of (full address of the nominee) as the person to whom the money secured under this policy shall be payable in the event of my death and I request that the (name of the insurance company) shall register this my nomination and show a written acknowledgement thereof hereon in accordance with sec. 39 (3) of the Insurance Act, 1938.

Dated at..................this..................19 .

....

(Signature of the Policy holder)".

अध्याय १५

बीमा-पालिसियों की शर्तें और उनका कानूनी महत्व [क्रमशः]

बीमा-पत्र का समाप्त होना (Lapse of Policy) : अनुग्रह-दिवस समाप्त हो जाने तक भी यदि बीमित प्रीमियम की किस्त नहीं चुका सकता तो साधारणतः उसकी पालिसी समाप्त हो जाती है और बीमा कराने का उद्देश्य भी समाप्त हो जाता है। पालिसी समाप्त होने पर कम्पनी को भी हानि पहुँचती है क्योंकि नई पालिसियों के समाप्त हो जाने के कारण उसका व्यवसाय घट जाता है और उन पालिसियों पर किया हुआ समस्त व्यय व्यर्थ चला जाता है और भविष्य की आय में कमी हो जाती है। बीमित को एक हानि और होती है क्योंकि प्रीमियम के रूप में दिये हुये धन को कम्पनी जब्त (Forfiet) कर लेती है। इसी प्रकार एजेन्ट को भी हानि होती है क्योंकि समाप्त पालिसियों पर उसे Renewal Commission मिलना बन्द हो जाता है। अतः कम्पनियाँ अनेक विधियों का प्रयोग करती हैं जिनके द्वारा यथासंभव पालिसी रद नहीं होने पाती। इसी विचार से बीमितों के पास समय-समय पर कम्पनियाँ सूचना भेजती हैं जिससे वे समय पर प्रीमियम चुका दें और उनकी पालिसी समाप्त न हो जाय।

समाप्त बीमों का पुनर्जीवन (Revival of Lapsed Policies) : यदि रिआयत की अवधि के अन्त तक भी बीमित प्रीमियम की किस्त अदा नहीं करता, तो उसका बीमा समाप्त (Lapsed) हो जाता है। किन्तु उसे पुनर्जीवित (Revive) कराया जा सकता है। साधारणतः एक

निर्धारित समय के भीतर अपने स्वस्थ होने का प्रमाण तथा व्याज अथवा जुरमाना (जैसा भी कम्पनी का नियम हो) सहित अवशेष किस्तों को देने से बीमा पुनः चालू हो जाता है। पिछली अवशेष किस्त के भुगतान की अन्तिम तारीख से ६ मास के भीतर बिना डाक्टरी-परीक्षा कराये भी समाप्त बीमे का पुनर्जीवन हो सकता है। इससे विपरीत दशा में, अर्थात् ६ मास से अधिक समय व्यतीत हो जाने पर, बीमित को स्वयं अपने ही व्यय से कम्पनी द्वारा नियुक्त किसी डाक्टर से अपनी स्वास्थ्य-परीक्षा करानी पड़ती है। इस बात का भी सन्तोषप्रद प्रमाण देना होता है कि उसके व्यक्तिगत, पारिवारिक अथवा व्यावसायिक सम्बन्ध में कोई भयोत्पादक परिवर्तन नही हुआ है। कम्पनी यदि किसी बीमित की समाप्त पालिसी को पुनर्जीवित न करना चाहे, तो उसे ऐसा करने से कोई रोक नहीं सकता। अच्छे स्वास्थ्य का संतोषजनक प्रमाण निम्नलिखित ढंग से दिया जाता है :—

(१) पालिसी समाप्त होने के छ मास पूर्व पुनर्जीवित कराते समय कम्पनी के छपे हुये फार्म में बीमित को अपने अच्छे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में एक स्वीकारोक्ति (Declaration) देना होता है।

(२) पालिसी समाप्त होने के छ मास पश्चात् किन्तु बारह मास के पूर्व पुन-र्जीवित कराने के लिये कम्पनी बीमित के पास संक्षिप्त डाक्टरी जाँच की रिपोर्ट तथा स्वीकारोक्ति का फार्म भेजती है जिसे बीमित को स्वयं भरना पड़ता है और अपने व्यय से कम्पनी के अधिकृत (Authorised) डाक्टर से पूरा करा कर कम्पनी के पास भेजना पड़ता है।

(३) एक वर्ष के पश्चात् पुनर्जीवन के लिये बीमित को अधिकृत डाक्टर से अपने व्यय पर पूर्ण डाक्टरी जाँच कराना पड़ता है और इस बात का प्रमाण देना पड़ता है कि अब भी वह बीमा कराने के योग्य है।

बीमा-पालिसी की जामिनी पर ऋण (Loan on Policies)

बीमित ने यदि पहले से ही अपनी बीमा-पालिसी की जामिनी पर किसी प्रकार का ऋण नहीं ले लिया है तो बीमा-कम्पनी उस बीमे के तात्कालिक-मूल्य

(Surrender Value) का ९० प्रतिशत तक धन ऋण के रूप में दे सकती है। जिन बीमा-पत्रों का भुगतान आगामी तीन वर्षों के भीतर ही होना होता है, उन पर उक्त प्रतिशत से अधिक भी ऋण कम्पनी दे सकती है। ऋण प्राप्त करने के लिये बीमित को आवश्यक लिखा-पढी के साथ अपनी पालिसी कम्पनी के पास जमानत के लिये रख देनी पड़ती है। किन्तु इस सम्बन्ध में वह अपने ऊपर किसी प्रकार का उत्तरदायित्व नहीं लेती। साधारणत: ५० रू० से कम का ऋण इस प्रकार प्राप्त नही हो सकता और व्याज अग्रिम ही चुका देना पड़ता है। बीमा-कम्पनी बीमित की सुविधा के लिये अपने ऋण का भुगतान किस्तों के रूप में भी स्वीकार कर सकती है। खोई हुई तथा बालकों की पालिसियों पर ऋण प्राप्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार उस पालिसी पर भी, जिसका अधिकारी कोई नाबालिग़ है या जिसे किसी के नाम में लिख कर मनोनीत व्यक्ति को दे दिया है, ऋण प्राप्त नही हो सकता।

बीमा-पालिसी का तात्कालिक–मूल्य (Surrender Value) : जब कोई बीमित किसी कारणवश अपने बीमे को आगे चालू नहीं रखना चाहता तब बीमा कम्पनी उसके द्वारा अदा की गई किस्तों के विनिमय में जो धन उसे लौटाती है, उसे ही बीमा-पालिसी का तात्कालिक-मूल्य कहते हैं। किस्तें प्राप्त करके उन्हें व्याज पर लगाने से बीमा-पत्र पर एक संचय (Reserve) निर्मित हो जाता है। कम्पनी की किसी निश्चित गणित-प्रणाली के द्वारा तात्कालिक-मूल्य निकाल कर उसे उक्त संचय में से बीमित को दे दिया जाता है। इस प्रकार तात्कालिक-मूल्य का परिमाण क्या होगा, स्पष्टतः अदा की हुई प्रीमियम की किस्तों पर निर्भर नहीं होता।

तात्कालिक-मूल्य के रूप में बीमित द्वारा दी गई किस्तों का पूरा धन उसे नहीं लौटाया जा सकता, क्योंकि बीमा-कम्पनी उसके जीवन के जोखिम को अपने ऊपर ले चुकी है। यदि वह बीमा कराने के पश्चात् और तात्कालिक-मूल्य माँगने के पूर्व ही स्वर्गवासी हो जाता तो कम्पनी को बीमा-कॉन्ट्रैक्ट की शर्तों के अनुसार सम्पूर्ण बीमित-धन मृतक के उत्तराधिकारियों को देना पड़ता। इसलिये

यह पूर्णतः न्यायसंगत प्रतीत होता है कि कम्पनी को जोखिम धारण करने के समय के लिये प्रीमियम की किस्तों में से कुछ धन काट लेना चाहिये। केवल इतना ही नहीं, कम्पनी को प्रस्ताव स्वीकार करने, स्वास्थ्य-परीक्षा कराने, प्रस्ताव-स्वीकृति की सूचना भेजने आदि में अनेक प्रारम्भिक व्यय भी सहन करने पड़ते हैं। बीमितों से प्राप्त प्रीमियम की किस्तों से ही वह इन व्ययों को पूरा करती है और उन्हें पूरा करने में उसे लगभग दो वर्ष लग जाते हैं। फिर, हो सकता है कि जो बीमित अपने बीमे की इतिश्री करने का इच्छुक है, प्रथम श्रेणी का हो अर्थात् उसके पृथक् हो जाने से कम्पनी के अन्य बीमितों की मृत्यु-दर अधिक हो जाय। इसके फलस्वरूप हानि की भी सम्भावना हो सकती है। उपरोक्त कारणों का ही यह प्रभाव होता है कि बीमे के प्रारम्भिक वर्षों में उसका तात्कालिक मूल्य अत्यन्त अल्प होता है। और जैसे-जैसे समय व्यतीत होता जाता है, तात्कालिक-मूल्य के परिमाण में भी वृद्धि होती जाती है। यहाँ पर यह बतला देना आवश्यक जान पड़ता है कि साधारणतः दो वर्ष व्यतीत हो जाने पर ही बीमित तात्कालिक-मूल्य प्राप्त करने का अधिकारी हो सकता है।

यह समझना अत्यन्त असंगत होगा कि सभी प्रकार के बीमों का तात्कालिक-मूल्य प्राप्त हो सकता है। अल्पकालीन अथवा अल्प-किस्ती बीमों के प्रीमियम की दरें हल्की होने के कारण उनका कोई भी तात्कालिक मूल्य नहीं होता। इसी प्रकार शुद्ध-बन्दोबस्ती (Pure Endowment Policy without return) बीमों और आजीवन-वृत्तियों (Annuities not providing for any return of consideration money) के मामले में भी कम्पनी कुछ तात्कालिक-मूल्य नहीं देती।

प्रायः यह देखा जाता है कि प्रीमियम के रूप में दिये हुये धन का लगभग ४० प्रतिशत लाभ-सहित और ३० प्रतिशत लाभ-रहित बीमों पर तात्कालिक-मूल्य के रूप में बीमित को प्राप्त होता है। तात्कालिक-मूल्य ज्ञात करते समय प्रथम वर्ष में दिये गये प्रीमियम को नहीं जोड़ा जाता, क्योंकि प्रारम्भिक प्रारम्भिक व्ययों ही में समाप्त हो जाती है।

इस प्रकार अब तक हमने तात्कालिक-मूल्य ज्ञात करने की दो विधियाँ देखीं। कुछ कम्पनियाँ बीमित की आयु, बीमे की किस्म, उसके चालू रहने की अवधि आदि के आधार पर भी तात्कालिक-मूल्य निर्धारित करती हैं।

लाभ-सहित बीमे के बीमित द्वारा तात्कालिक-मूल्य की माँग उपस्थित किये जाने पर तात्कालिक-मूल्य के साथ-साथ पालिसी पर अंकित लाभ भी दे दिया जाता है। यदि कम्पनी ने पालिसी की जामिनी पर बीमित को कुछ ऋण दिया है, तो उसे तात्कालिक-मूल्य का भुगतान करते समय उसमें से काट दिया जाता है।

पालिसी की स्वाभाविक बेजब्ती (Automatic Non-forfieture) : हम पीछे किसी प्रसंग में कह चुके हैं कि यदि रिआयत की अवधि के अन्त तक प्रीमियम की किस्त नही चुकाई जाती, तो कम्पनी पालिसी को समाप्त कर देती है। इसके फलस्वरूप बीमित को इसके पुनर्जीवित कराने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इधर बीमा-कम्पनियों ने अपने बीमितों को इन कठिनाइयों से बचाने के लिये एक नवीन योजना चालू की है। इस योजना के अनुसार जिस समय बीमित किस्त अदा करना बन्द करता है, उस समय तक चुकाई गई किस्तों का तात्कालिक-मूल्य ज्ञात कर लिया जाता है और उसका आगामी किस्तों की अदायगी के लिये उपयोग किया जाता है। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने पर बीमित के आवेदन की प्रतीक्षा किये बिना ही बीमा कम्पनी उक्त कार्य कर डालती है। इस प्रकार बीमा स्वतः ही चालू रह जाता है। उक्त क्रम उस समय तक चलता रहता है जब तक तात्कालिक-मूल्य का परिमाण इतना न्यून नहीं हो जाता कि उससे किस्त चुकाई न जा सके। इस स्थिति में बीमित के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह प्रीमियम की किस्त देना आरम्भ कर दे। किन्तु, यदि वह इस समय भी ऐसा नहीं करता तो उसकी पालिसी अवश्य ही समाप्त हो जायगी। बीमित ने यदि पहले ही से अपनी पालिसी पर कुछ ऋण कम्पनी से ले रक्खा है तो तात्कालिक-मूल्य में से उसे घटा कर जो शेष रहेगा उसे ही किस्तों को अदा करने के काम में लगाया जा सकता है।

बीमे के स्वतः चालू रहने के समय में ही यदि बीमित की मृत्यु हो जाय, तो

इसका उसके उत्तराधिकारी के सम्पूर्ण बीमित-धन प्राप्त करने के अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। किन्तु कम्पनी बीमित-धन का भुगतान करते समय उसमें से वह रकम व्याज-सहित काट लेगी जिसे उसने पालिसी के तात्कालिक-मूल्य में से किस्तें चुकाने में उपयोग किया है।

यदि बीमित उक्त रकम व्याज सहित कम्पनी को दे दे तो उसका बीमा पुनः पूर्ववत् चालू हो सकता है। किन्तु बीमा स्वतः चालू रहने की अवधि के भीतर ही ऐसा करना आवश्यक होता है। यदि बीमे की इस अवधि के पश्चात् भी वह कम्पनी का ऋण नहीं चुकाता, किन्तु अपनी किस्तें नियमानुसार अदा करना आरम्भ कर देता है, तो कम्पनी उसके बीमे को चालू रखने से इनकार नहीं कर सकती। ऐसी दशा में बीमे का भुगतान करते समय बीमित-धन में से स्वतः चालू रखने के ऋण की रकम व्याज सहित काट ली जाती है। कुछ समय के लिये स्वतः चालू रहने और फिर पूर्ववत् नियमित रूप से जारी हो जाने का प्रभाव बीमे की नियमितता पर कुछ भी नहीं पड़ता।

चुकता पालिसी (Paid up Policies) : उपरोक्त सुविधा के अतिरिक्त बीमे को चालू न रख सकने पर बीमा कम्पनी एक अन्य और भी सुविधा दे सकती है। इस सुविधा को 'बीमा चुकता कराना' कहते हैं। कोई भी बीमा दो वर्ष तक चालू रहने के पश्चात् चुकता कराया जा सकता है। किन्तु यदि बीमे की पालिसी पर कम्पनी से कुछ ऋण प्राप्त कर लिया गया है तो उसे कम्पनी चुकता नहीं करेगी। बीमा पालिसी का चुकता-मूल्य चुकाई गई किस्तों के परिमाण के अनुसार होता है। चुकता कराने के लिये यह आवश्यक होता है कि चुकता कराने का आवेदन-पत्र कम्पनी के पास पालिसी के चालू रहने की अवस्था में ही पहुँच जाय। यह सिद्धान्त एक उदाहरण द्वारा अधिक स्पष्ट रूप से समझ में आ सकता है। मान लीजिये कि किसी मनुष्य ने ३० वर्ष की अवस्था में दस हजार रूपये का बीमा २० वर्ष के लिये कराया है। यदि यह बीमित प्रीमियम की पाँच किस्त देने के पश्चात् ही अपने बीमे को चुकता कराना चाहे तो दो हजार पाँच सौ रूपये के लिये चुकता करा सकता है। बीमा

चुकता हो जाने पर बीमित को भविष्य में प्रीमियम की किस्तें चुकाने की आवश्यकता नही रहती। उक्त मामले में २० वर्ष की अवधि समाप्त होने पर बीमित को २५०० रूपयें प्राप्त हो जायँगे और यदि अवधि की समाप्ति के पूर्व ही उसकी मृत्यु हो जाय तो उसके उत्तराधिकारी को मृत्यु के पश्चात् ही उक्त रकम हस्तगत हो जायगी।

लाभ-सहित बीमे को चुकता करते समय, उस समय तक का लाभ भी चुकता-मूल्य में जोड़ दिया जाता है। किन्तु भविष्य में प्राप्त होने वाले लाभ का समावेश इसमें नहीं हो सकता।

बीमा चुकता कराने में प्राय: निम्नांकित असुविधाएँ सामने आती हैं :—

(१) केवल वही पालिसी चुकता करायी जा सकती है जो दो अथवा दो से अधिक वर्ष तक चालू रह चुकी है;

(२) ऐसी ही बीमा-पालिसियों का चुकता करना कम्पनी स्वीकार करती है जिनकी किस्तें आरम्भ से ही निश्चित् रहती हैं। दूसरे शब्दों में केवल बन्दोबस्ती और आजीवन-सीमित-बीमे (Whole life policies with limited payments) ही चुकता कराये जा सकते हैं।

(३) बीमे का चुकता-मूल्य चुकता होने के समय नहीं, बल्कि दावे के भुगतान के समय ही प्राप्त होता है।

(४) इन्श्योरेन्स ऐक्ट १९३८ के अनुसार उन्हीं पालिसियों को चुकता-बीमा-पालिसियों में परिवर्तित कराया जा सकता है जिन पर कुल मिला कर कम से कम १००) रूपया प्रीमियम दिया जा चुका हो।

दावों का भुगतान (Settlement of Claims)

मृत्यु होने पर भुगतान : बीमित की मृत्यु के पश्चात् उसकी मृत्यु तथा उसके उत्तराधिकारी के अधिकार का सन्तोषप्रद प्रमाण प्राप्त हो जाने पर कम्पनी तुरन्त ही बीमे का रूपया चुका देती

है। किन्तु यह तभी संभव है जब बीमित की आयु का प्रमाण पहले से ही कम्पनी के पास मौजूद हो। यदि वह पहले से ही अपनी आयु का प्रमाण कम्पनी के पास नहीं भेज देता तो बीमित-धन उसके उत्तराधिकारी को उस समय तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक कम्पनी अन्य आवश्यक प्रमाणों के साथ इस प्रमाण को भी प्राप्त नहीं कर लेती। इसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि बीमित जिस व्यक्ति को अपनी बीमा-पालिसी का लाभ देना चाहता है, उसके नाम में अपनी मृत्यु के पहले ही उसे प्रदान कर दे अथवा लिख दे और इसकी रजिस्ट्री अपनी बीमा कम्पनी के कार्यालय में करा दे। अन्यथा उसकी मृत्यु के पश्चात्, बहुत सम्भव है, कि उस व्यक्ति को बीमे का लाभ प्राप्त न हो सके जिसके हितार्थ बीमित ने अपना बीमा कराया था अथवा जिसको वह उसका लाभ (Benefit) देना चाहता था। इसके साथ ही दावे का भुगतान करने में कम्पनी को अनेक अड़चनें पड़ सकती हैं क्योंकि उसे बीमित के वास्तविक उत्तराधिकारी का पता लगाना पड़ेगा। इन सब बातों का परिणाम दावे के भुगतान में विलम्ब होता है जिससे बीमित के उत्तराधिकारी और उसके परिवार के व्यक्तियों को अनेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ सकती हैं। अवधि वाले बीमों के विषय में तो अवधि समाप्ति के पर्याप्त समय पूर्व ही इसकी सूचना कम्पनी बीमित को दे देती है जिससे वह अपनी लिखा-पढ़ी कर लें और जहाँ तक सम्भव हो बीमित धन का उसी दिन भुगतान प्राप्त कर ले जिस दिन बीमे की अवधि समाप्त होती है।

बीमा कम्पनियाँ सर्वदा अपने बीमितों अथवा उनके उत्तराधिकारियों को उनके दावे सिद्ध करने के प्रयत्न में पूर्ण सहायता देती हैं। बीमित की मृत्यु प्रमाणित करने के लिए निम्नांकित प्रमाण दिये जा सकते हैं :—

(१) उस चिकित्सक का प्रमाण-पत्र जिसने अंतिम समय में बीमित का उपचार किया हो,

(२) किसी ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति का प्रमाण-पत्र जो बीमित का सम्बन्धी तो न हो; किन्तु उससे भलीभाँति परिचित तथा उसी स्थान का निवासी हो जहाँ बीमित निवास करता था,

(३) यदि बीमित कहीं नौकरी करता था, तो मृत्यु के सम्बन्ध में उसके मालिक का प्रमाण-पत्र,

(४) म्यूनिसिपैलिटी अथवा पुलीस स्टेशन के मृत्यु-रजिस्टर की बीमित की मृत्यु के सम्बन्ध में प्रमाणित प्रतिलिपि।

यदि बीमित ने अपने जीवन-काल में ही अपनी बीमा-पालिसी को किसी के नाम में प्रदान नहीं कर दी अथवा लिख नहीं दी, तो इस अवस्था में उसके उत्तराधिकारी को अपना अधिकार सिद्ध करने के लिये निम्नलिखित प्रकार के प्रमाण देने पड़ते हैं :—

कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में (For Presidency Towns)

(१) यदि मृतक बीमित ने कोई वसीयतनामा लिखा है तो उसके अनुसार हाईकोर्ट से प्राप्त उत्तराधिकार-पत्र, अथवा

(२) यदि मृतक बीमित ने कोई वसीयतनामा नहीं छोड़ा है तो हाईकोर्ट से प्राप्त प्रबन्ध का अधिकार-पत्र (Letter Administration), अथवा

(३) सरकारी प्रबन्ध (Administrator General) से प्राप्त अधिकार-पत्र, (Certificate of Title) यदि मृतक बीमित की सम्पत्ति दो हजार रूपये से अधिक मूल्य की नहीं है ?

जिलों में (For Districts) :

जिस जिले में मृतक मृत्यु के समय निवास करता हो वहाँ के जिला-न्यायाधीश के न्यायालय से प्राप्त उत्तराधिकार-पत्र, (Succession Certificate) चाहे मृतक ने वसीयतनामा छोड़ा हो अथवा नहीं, अथवा सरकारी प्रबन्धक (Administrator General) से प्राप्त अधिकार-पत्र, (Certificate of Tittle) उन स्थितियों के लिये जिनका उल्लेख ऊपर किया गया ह।

अवधि पूर्ण होने पर भुगतान : बन्दोबस्ती-बीमे में पालिसी की अवधि समाप्त होने पर भी यदि बीमित जीवित रहा तो वह स्वयं बीमित-धन के लिये दावा कर सकता है। पर यदि उसने पहले ही पालिसी किसी

अन्य व्यक्ति के नाम प्रदान (Assign) कर दी है तो Assignee ही (जिसके नाम पालिसी प्रदान हो चुकी है), पालिसी के भुगतान के लिये दावा कर सकता है। दोनों दशाओं में ही कम्पनी को दावेदार की विश्वसनीयता का उचित प्रमाण मिलना चाहिये जिसके लिये दावेदार को कम्पनी के पास ऐकात्म्य-प्रमाण-पत्र या आइडेण्टिटी सार्टीफिकेट (Identity Certificate) भेजना पड़ता है। इस प्रमाण-पत्र के साथ ही पालिसी, और यदि पालिसी लाभ-सहित हुई तो बोनस के सार्टीफिकेटों (Bonus Certificates) को भी भेजा जाता है। यदि कम्पनी ने दावा स्वीकार कर लिया तो बीमित के पास 'डिस्चार्ज की रसीद' (Discharge Receipt) भेज देती है जिसे भर कर बीमित कम्पनी को लौटा देता है। तत्पश्चात् बीमित को कम्पनी द्वारा बीमित-धन प्राप्त हो जाता है।

विवादपूर्ण दावों का भुगतान : ऐसा देखा गया है कि बीमित की मृत्यु के पश्चात् दावों के भुगतान के सम्बन्ध में कभी-कभी अनेक झगड़े आ जाते हैं और बीमा कम्पनी निश्चय करने में असमर्थ हो जाती है कि बीमित-धन किसको प्राप्त होना चाहिये। यदि कम्पनी किसी अनुपयुक्त व्यक्ति को बीमित-धन दे दे तो भी उसका दायित्व समाप्त नहीं होता। भारतीय-बीमा-विधान, १९३८, धारा ४७ के अनुसार बीमा कम्पनी के लिये यह आवश्यक है कि अवधि के समाप्त होने अथवा मृत्यु हो जाने की सूचना मिलने के ९ मास के भीतर यदि दावे का भुगतान विरोधी अधिकारों की उपस्थिति, अधिकार के प्रमाण की अप्राप्ति इत्यादि कारणों से नहीं हो पाता, तो वह न्यायालय में बीमित-धन जमा कर देने के लिये आवेदन-पत्र भेजे। इस आवेदन-पत्र पर कम्पनी का प्रमुख अधिकारी हस्ताक्षर करता है और उसमें निम्नलिखित बातें उल्लेख की जाती हैं :—

(१) बीमित का नाम और पता;
(२) यदि उसकी मृत्यु हो चुकी है तो मृत्यु की तिथि और स्थान;
(३) पालिसी की किस्म और बीमित-धन;
(४) सभी दावेदारों के नाम और पते जिन्होंने उस पालिसी पर दावा किया है तथा प्रत्येक दावे की सूचना का विस्तृत विवरण;

(५) कम्पनी किन कारणों से किसी भी दावेदार को सन्तोषपूर्ण ढंग से बीमित-धन नहीं चुका सकती;

(६) यदि अदालत को दावे के भुगतान के सम्बन्ध में कम्पनी को बुलाने की आवश्यकता हुई, तो अदालत किस पते से सूचना भेजे।

यदि अदालत में आवेदन-पत्र भेज देने के पश्चात् भी कुछ और दावेदार खड़े हो जाते हैं तो कम्पनी को उन सबकी सूची बना कर अदालत के पास भेजते रहना चाहिये। इसके पश्चात् कम्पनी बीमित-धन अदालत में जमा कर देगी और अपने दायित्व से पूर्णतया मुक्त हो जायगी। अदालत से अधिकार का निर्णय हो जाने पर वास्तविक अधिकारी को बीमित-धन न्यायालय से प्राप्त हो जायगा।

तृतीय भाग

सामुद्रिक-बीमा

अध्याय १६

भूमिका

यह सामुद्रिक बीमा ही था जिसका सर्वप्रथम बीमा-क्षेत्र में जन्म हुआ। जीवन तथा अन्य बीमों का जन्म उसके यथेष्ट काल व्यतीत हो जाने पर ही हो सका। अत्यन्त प्राचीन काल में भी सामुद्रिक बीमे के प्रचलन के अनेक ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। उस समय भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अनेक देश संलग्न थे। इतिहास बतलाता है कि भारत, रोम, यूनान, बेबिलन, फारस आदि के व्यापारी अपने माल को जहाजों पर लाद कर देश-देशान्तरों को ले जाते थे। और यह स्पष्ट ही है कि स्थल की अपेक्षा जल मार्गों में जोखिमें अधिक होती हैं। अतः उसी समय से सामुद्रिक बीमे के चिह्न मिलते हैं।

वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बहुत ऊँचे दर्जे का है और आयात और निर्यात की वृद्धि में सामुद्रिक बीमे का बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया है। हमारे देश के बन्दरगाहों में सामुद्रिक बीमा का महत्व बढ़ता जा रहा है और उसके प्रसार की अभी बड़ी आशा है क्योंकि हमारे देश का सामुद्रिक व्यापार कुल मिलाकर लगभग प्रतिवर्ष पाँच अरब रूपये का हुआ करता है।†

---

†यह निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जायगा :—

कुल आयात	१३८,००,८९,०००	रूपए
,, निर्यात	२०६,५९,४९,०००	,,
,, सागरवर्ती व्यापार	३४४,६०,३८,०००	,,
,, तटवर्ती व्यापार	१५३,४६,९३,०००	,,
,, सामुद्रिक व्यापार	४९८,०७,३१,०००	,,

दे० National Planning Committee Report on Insurance (19१ ;)p.1

लायड्स-संघ का परिचय : वर्त्तमान-युगीन सामुद्रिक बीमा-प्रणाली का आरम्भ लगभग १३-१४ वीं शताब्दी में ही हुआ था। इस क्षेत्र में 'लायड्स-संघ' का नाम उल्लेखनीय है। सामुद्रिक बीमे के विकास तथा उन्नति में इस संघ ने प्रशंसनीय कार्य किया है। वर्त्तमान समय में संसार के प्रत्येक बड़े नगर में इसकी शाखाएँ स्थापित हैं और अरबों रूपये का सामुद्रिक बीमे का व्यवसाय इसके द्वारा होता है। इस संघ के समान सुविस्तृत एवं सुव्यवस्थित अन्य कोई बीमा-संस्था नहीं है। यहाँ पर इस सुविख्यात लायड्स-संघ के इतिहास का संक्षिप्त विवरण संभवतः मनोरंजक होगा। सत्तरहवीं शताब्दी में लंदन के अनेक व्यापारियों ने काफी-गृहों (Coffee Houses) के द्वारा सामुद्रिक बीमे का व्यवसाय आरम्भ किया। उन कॉफी-गृहों की कार्य-प्रणाली यह थी कि कुछ व्यक्ति मिल कर उनकी स्थापना कर लेते थे। जब कोई व्यापारी किसी काफी-गृह में सामुद्रिक बीमे के लिये जाता था, उसके सदस्य उसके माल की जोखिम का बीमा सामुद्रिक खतरों के विरुद्ध करके बीमित-धन को चुकाने के दायित्व को अपनी इच्छानुसार परस्पर विभक्त कर लेते थे। इन्हीं कॉफी-गृहों में से एक, श्री एडवर्ड लायड का भी था। उसकी व्यवस्था तथा संचालन वे स्वयं ही करते थे। श्री लायड के कॉफी-गृह के सुप्रबन्ध तथा उसमें प्राप्त सुविधाओं ने व्यापारियों का ध्यान शीघ्र ही अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। फलतः अल्पकाल में ही उसकी ख्याति चारों ओर फैल गई। व्यापारियों को वहाँ पर प्राप्त सुविधाओं में से सर्व प्रधान यह थी कि लगभग प्रत्येक समय किसी न किसी सदस्य को बीमा करने के लिये प्रस्तुत पा सकते थे। बुद्धिमान और परिश्रमी लायड के निरीक्षण तथा नियन्त्रण में उनके कॉफी-गृह ने आशातीत उन्नति की। सन् १७५३ में उन्होंने 'लायड्स-समाचार' नामक एक पत्र का प्रकाशन भी आरम्भ किया। इस पत्र में देश-विदेश के बड़े-बड़े जहाजों से सम्बन्धित आवश्यक सूचनाएँ ठीक समय पर निकला करती थीं। किन्तु कुछ ही समय पश्चात् इसका प्रकाशन बन्द हो गया। सन् १७८३ ई० में 'लायड्स-सूची' के नाम से उक्त कॉफी-गृह की ओर से एक नया पत्र प्रकाशित होने लगा।

सन् १८२८ में लायड्स कॉफी-गृह का नाम परिवर्तन करके उसे उसका वर्त्तमान नाम लायड्स-संघ दिया गया। आजकल लोगों को उसमें प्रवेश पाने के लिये प्रवेश-शुल्क देना पड़ता है और फिर प्रतिवर्ष सदस्यता का वार्षिक चन्दा भी। इसके सदस्य दो श्रेणियों में विभक्त रहते हैं। एक श्रेणी तो उन सदस्यों की होती है जो स्वयं अपने उत्तरदायित्व पर बीमा-व्यवसाय करते हैं और दूसरी श्रेणी के सदस्य वे व्यक्ति होते हैं जो अपने उत्तरदायित्व पर बीमा नहीं करते, केवल मध्यस्थ का कार्य करते हैं अर्थात् बीमा करने तथा कराने वालों के बीच दलाली करते हैं। इस समय भी, पहले के समान लायड्स-संघ की ओर से जहाजों के आने-जाने, जलमग्न होने, नष्ट होने, समुद्र में तूफान उठने आदि के ताजे समाचार प्रकाशित हुआ करते हैं।

आवश्यकता और जोखिमें : हम पहले ही कह चुके हैं कि प्राचीन काल में भी जल-मार्गों से व्यापार करने वाले व्यापारी जल की जोखिमों के विरुद्ध अपने माल का बीमा करा लिया करते थे। उस समय बीमा करने वाले व्यक्ति अथवा संस्थाएँ बीमा कराने वाले की इच्छानुसार उसके माल, पोत, जल-यात्रा-काल में सम्भावित किसी जोखिम आदि का बीमा कर लिया करते थे। यूरोप में अब भी अनेक व्यापारी उक्त प्रकार से अपने व्यक्तिगत उत्तरदायित्व पर ही सामुद्रिक बीमे का व्यवसाय करते हैं।

सामुद्रिक बीमा जीवन तथा अन्य प्रकार के बीमों के समान ही एक कॉन्ट्रैक्ट होता है। यह स्वभावतः क्षतिपूरक होता है अर्थात् बीमक समुद्र-यात्रा-काल में होने वाली क्षति के बदले में बीमित धन की सीमा तक बीमित की क्षति-पूर्ति का कॉन्ट्रैक्ट करता है। उक्त जोखिम का भार धारण करने के विनिमय में बीमक को जो धन बीमित से प्राप्त होता है उसे बीमे का प्रीमियम कहते हैं। सामुद्रिक मार्गों से माल को एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने में अनेक प्रकार के खतरों की सम्भावना रहा करती है; यथा, समुद्र के जल से माल नष्ट हो सकता है, जहाज में आग लग सकती है, समुद्री डाकू उसे लूट सकते हैं, शत्रु द्वारा उसे अपहृत किया जा सकता है, इत्यादि। इनमें से कुछ जोखिमों का भार तो जहाजी

बिल्टी अथवा जहाजी समझौते की शर्तों के अनुसार जहाज के स्वामी पर ही होता है। तात्पर्य यह है कि जहाज का स्वामी एक सार्वजनिक वाहक (Common Carrier) की हैसियत से कुछ अवस्थाओं में माल के नष्ट होने, खोने आदि के कारण उपस्थित होने वाली हानि के लिये उत्तरदायी होता है। किन्तु, यदि उक्त प्रकार की हानि किसी दैवी घटना, राज-शत्रु के कार्य, माल के स्वभावगत दोष, माल भेजने वाले की लापरवाही आदि के कारण होती है तो उसके लिये उसे उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। आवश्यक सुरक्षा के साथ भेजने वाले के निर्देशानुसार माल को लक्ष्य-स्थान (Destination) पर पहुँचा देने से ही सार्वजनिक वाहक का उत्तरदायित्व, पूर्ण हो जाता है। इस प्रकार यह प्रत्यक्ष है कि जहाज के स्वामी पर जोखिमों का भार अत्यन्त अल्प मात्रा में होता है। जिन जोखिमों का उत्तरदायित्व जहाज के स्वामी पर नहीं होता, उनकी एक सूची जहाजी बिल्टी (Bill of lading) में दी हुई रहती है। इस सूची को अपवादित जोखिम सूची (Excepted perils clause) कहते है। अतः सामुद्रिक व्यापारियों को सामुद्रिक बीमा का आश्रय लेना पड़ता है। इस प्रकार माल भेजने वालों को दो दस्तावेजों की आवश्यकता होती है—(१) जहाजी बिल्टी (२) बीमा पालिसी। प्रथम समुद्रयान के स्वामी के साथ माल को लक्ष्य-स्थान पर पहुँचाने तथा द्वितीय बीमा संस्था के साथ उसे सामुद्रिक जोखिमों से सुरक्षित रखने के निमित्त होता है।

इस प्रकार सामुद्रिक जोखिमों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। पहले भाग में वे जोखिमें आती हैं जिनका भार जहाज के स्वामी अथवा जहाजी संस्था (Shipping Company) पर होता है। दूसरे भाग में वे जोखिमें सम्मिलित होती हैं जिनको जहाजी कम्पनी स्वीकार नहीं करती तथा जिनका भार समुद्री बीमा-कम्पनी पर होता है। अतएव, कह सकते हैं कि जहाँ पर जहाजी कम्पनी के उत्तरदायित्व का अन्त होता है, वहीं से बीमा कम्पनी के उत्तरदायित्व का आरम्भ होता है।

क्षेत्र : पहले सामुद्रिक बीमा के क्षेत्र के विषय में लोगों में परस्परः

बहुत मतभेद था। किन्तु अब कानून द्वारा उसके निर्धारित हो जाने से उस मत-भेद का अन्त हो गया है। इस समय सामुद्रिक बीमा पालिसियों में समुद्री जोखिमें तो निहित होती ही हैं, साथ ही वे जोखिमें भी उसमें सम्मिलित रहती हैं जो समुद्र यात्रा के पूर्व अथवा उसके पश्चात् आन्तरिक स्थलीय अथवा जलीय मार्गों से माल को स्थानान्तर करने में उपस्थित हो सकती है। उदाहरणार्थ यदि कुछ माल पटना से कलकत्ता होकर पेरिस भेजा जाय तो उक्त माल की एक ही समुद्री बीमा पालिसी में पटना से लेकर पेरिस तक की स्थलीय तथा जलीय दोनों प्रकार की जोखिमें निहित हो सकती हैं और बीमा एक ही कम्पनी के द्वारा कराया जा सकता है। इधर सामुद्रिक बीमे का क्षेत्र और भी अधिक विस्तृत हो गया है। बीमा कम्पनियाँ माल के उत्पादन के स्थान से लेकर उसके उपभोग के स्थान पर पहुँचने तक की सभी जोखिमों को एक ही समुद्री बीमा पालिसी के अन्तर्गत कर सकती हैं। अफ्रीका में समुद्री बीमा कम्पनियाँ अपनी "ब्लाक पालिसियों" के द्वारा स्वर्ण के खानों से निकलने के समय से लेकर किसी अन्य स्थान तक पहुँचने के समय तक के सभी खतरों को अपने ऊपर ले लेती हैं।

आरम्भ में हमने देखा है कि सामुद्रिक बीमा सामुद्रिक जोखिमों के विरुद्ध होता है; किन्तु अभी हम यह भी देख चुके हैं कि उसके अन्दर स्थलीय जोखिमें भी आ सकती हैं। अतः यह परिभाषा कि सामुद्रिक बीमा सामुद्रिक जोखिमों के ही विरुद्ध होता है, अत्यन्त संकीर्ण प्रतीत होती है, क्योंकि सामुद्रिक बीमे में स्थलीय जोखिमें भी सम्मिलित हो सकती हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए श्री टैम्पलमन ने सामुद्रिक बीमा पालिसी के विषय में कहा है कि इसमें वे सभी जोखिमें सम्मिलित रहती हैं जिनके विरुद्ध बीमा कराया जाता है। परन्तु यह परिभाषा आवश्यकता से कहीं अधिक विस्तृत प्रतीत होती है। समुद्र-यात्रा से सम्बन्धित जोखिमों का बीमा ही सामुद्रिक बीमा कहलाता है, यदि यह कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा।

स्वभाव तथा अन्य प्रकार के बीमों से वैभिन्य : सामुद्रिक बीमे का कॉन्ट्रैक्ट क्षतिपूरक कॉन्ट्रैक्ट होता है और इस विषय में अग्नि-

बीमे के समान होता है। किन्तु, दोनों क्षति-पूरक कॉन्ट्रैक्ट होते हुए भी एक दूसरे से सर्वथा भिन्न होते हैं क्योंकि अग्नि-बीमे में बीमित को वास्तविक क्षति अथवा बीमित धन, दोनों में से जो भी कम हो, से कुछ भी अधिक प्राप्त नहीं हो सकता; किन्तु सामुद्रिक बीमे में जो धन पालिसी में अंकित होता है, हानि होने पर बीमा कम्पनी दे देती है। यह जीवन-बीमा से भी भिन्न होता है क्योंकि जीवन-बीमा में सुरक्षा तथा धन-संग्रह (Protection and Investment) दोनों ही तत्व विद्यमान रहते हैं। किन्तु सामुद्रिक बीमों में केवल सुरक्षा का ही तत्व रहता है, धन-संग्रह का नहीं। सामुद्रिक बीमे में बीमित की स्थिति प्राप्त का सिद्धान्त लागू होता है जो जीवन-बीमों में कभी प्रयुक्त नही हो सकता।

सामुद्रिक बीमा के विषय (Subject Matter of Marine Insurance) : यहाँ अब हम सामुद्रिक बीमे के विषय पर प्रकाश डालेंगे। इस सम्बन्ध में मेरीन इन्श्योरेन्स ऐक्ट में निम्नलिखित बातें दी हुई हैं :—

"प्रत्येक वैध सामुद्रिक उपक्रम को सामुद्रिक बीमा का विषय कहा जा सकता है। विशेषकर, सामुद्रिक उपक्रम (Marine Adventure) ऐसी अवस्था में होता है।

(अ) जहाँ कोई जहाज, माल अथवा अन्य चल-वस्तुएँ (Moveables) सामुद्रिक खतरों के सम्मुख रहें;

(ब) जहाँ किराया पाने में या कोई आर्थिक लाभ पाने में बीमा-योग्य वस्तु के सामुद्रिक खतरों से नष्ट होने के कारण हानि उपस्थित होने की सम्भावना हो;

(स) जहाँ बीमा-योग्य वस्तु पर सामुद्रिक खतरों के कारण उनके स्वामी पर दायित्व आने की सम्भावना हो।"

अतः, प्रमुखतः तीन विषयों पर सामुद्रिक-बीमा कराया जा सकता है : (१) माल पर, (२) जहाज पर तथा (३) किराये पर। यहाँ हम संक्षिप्त में इनका वर्णन करेंगे।*

---

*विस्तार वर्णन के लिये देखिये Winter, W. D., Marine Insurance. : Chap. X to XV.

१. माल का बीमा (Cargo Insurance) : इसके अन्तर्गत समुद्री मार्ग से जहाजों द्वारा विदेशों को भेजे जाने वाले माल को सामुद्रिक खतरों से सुरक्षित रखने के लिये बीमा किया जाता है। जो माल जहाज द्वारा भेजा जाता है उसे 'कारगो' कहते हैं। सामुद्रिक बीमा में 'कारगो-बीमा' सबसे महत्वपूर्ण है और यह साधारणतः कम अवधि के लिये कराया जाता है।

२. जहाज का बीमा (Hull Insurance) : समुद्र में जहाजों के लिये भी अनेक प्रकार की जोखिमें रहती है जिनके उपस्थित होने पर वे किसी भी समय नष्ट हो सकते हैं; जैसे, दो जहाजों का परस्पर अथवा किसी जलमग्न चट्टान से टकरा जाना, मार्ग-भ्रष्ट हो जाना, तूफान में फँस जाना इत्यादि। ऐसे संकटों में जहाज के ग्रस्त हो जाने से उसके स्वामी को गहरी हानि होती है। इन जोखिमों से स्वयं को सुरक्षित रखने के लिये वह उसका बीमा करा सकता है।

मेरीन इन्श्योरेन्स ऐक्ट के अनुसार "जहाज" शब्द के अन्तर्गत जहाज, उसकी सामग्रियाँ, जहाज अधिकारियों के लिये रसद तथा स्टोर और मशीनरी, बॉयलर, कोयला, इंजिन का स्टोर आदि सब आ जाते हैं; और यदि जहाज किसी विशेष व्यापार में संलग्न हो तो तत्सम्बन्धी समस्त फिटिंग इसमें सम्मिलित रहते हैं। इंगलैण्ड में एक वर्ष से अधिक समय के लिये बीमा नहीं कराया जा सकता, पर अमेरिका में इस सम्बन्ध में कोई रोक नहीं है।

३. किराये का बीमा (Freight Insurance) : जहाजी कॉन्ट्रैक्ट (Charter Party) के अनुसार सम्पूर्ण जहाज अथवा उसका कुछ भाग किराये पर दे दिया जाता है। इस प्रकार का कॉन्ट्रैक्ट होते समय सम्पूर्ण किराये का कुछ भाग जहाज के स्वामी को अग्रिम प्राप्त हो जाता है और शेष किराया कॉन्ट्रैक्ट की पूर्ति होने पर चुकाया जाता है। ऐसी दशा में जहाज का नायक (Captain) किराये के उस अंश का बीमा करा

सकता है जिसके, जहाज नष्ट हो जाने की सम्भावना के फलस्वरूप, प्राप्त न होने की आशंका हो। इसी प्रकार जहाज का स्वामी अग्रिम-प्राप्त किराये का बीमा इस जोखिम के विरुद्ध करा सकता है कि यदि जहाज नष्ट हो जाय तो उसे अग्रिम-प्राप्त किराया लौटाना पड़ेगा।* बीमित भी अपने माल के मूल्य के साथ साथ अग्रिम दिये गये किराये का बीमा करा सकता है अर्थात् माल के मूल्य में किराये को मिला कर बीमा करा सकता है। क्योंकि यदि वह इस प्रकार बीमा नहीं कराता तो जहाज के कष्ट होने पर माल के मूल्य के साथ-साथ किराये की हानि भी उसे उठानी पड़ेगी।

* "English law takes the contract under bill of lading between Shipowner and merchant to be that if the freight is payable at destination then no part of it is earned by a partial performance of the contract, that is by delivery of the Cargo at any part short of destination".

William Gow : Marine Insurance, p. 165.

अध्याय १७

सामुद्रिक बीमे का कान्ट्रैक्ट

कॉन्ट्रैक्ट की आवश्यकताएँ : बीमा कॉन्ट्रैक्ट के समस्त नियमों का उल्लेख द्वितीय भाग के छठे अध्याय में किया जा चुका है। जहाँ तक साधारण कॉन्ट्रैक्ट के नियमों का सम्बन्ध है, सामुद्रिक बीमा में भारतीय कॉन्ट्रैक्ट विधान की दसवी धारा का अनुसरण किया जाता है। बीमा कॉन्ट्रैक्ट में भी किसी भी कॉन्ट्रैक्ट की भाँति दोनों पक्षों में स्वतन्त्र स्वीकृत, कॉन्ट्रैक्ट कर सकने की योग्यता, कॉन्ट्रैक्ट के लिये वैधानिक प्रतिफल तथा उद्देश्य के रहने पर ही कॉन्ट्रैक्ट को वैध समझा जाता है। किन्तु सामुद्रिक बीमे में इन साधारण नियमों के अतिरिक्त कुछ अन्य नियमों का भी पालन अनिवार्य होता है। इन नियमों के लिये व्यवहारिक दृष्टिकोण से इंगलैण्ड के "मेरीन इन्श्योरेन्स ऐक्ट", १९०६ का आश्रय लेना पड़ता है। इस ऐक्ट के अनुसार सामुद्रिक बीमा के कॉन्ट्रैक्ट में निम्नांकित तीन विशिष्ट गुणों का समावेश और होना चाहिये :—

(१) बीमा-योग्य हित,

(२) मूलभूत तथ्यों का प्रदर्शन, और

(३) अप्रत्यक्ष साधारण शर्तें (Implied Warranties)

१ बीमा-योग्य हित : जिस प्रकार बीमे के विषय (Subject Matter) में जीवन-बीमा में बीमित का बीमा-योग्य हित होना आवश्यक होता है, उसी प्रकार वह सामुद्रिक बीमे के लिये भी आवश्यक है। बीमा-योग्य हित से विहीन बीमा कॉन्ट्रैक्ट एक जुए के कॉन्ट्रैक्ट से अधिक नहीं होता। किसी व्यक्ति

का उस वस्तु में बीमा-योग्य हित समझा जाता है, जिसके सुरक्षित रहने से उसे आर्थिक लाभ और नष्ट हो जाने से आर्थिक हानि की सम्भावना हो। बीमा-योग्य हित का इस प्रकार आर्थिक होना भी आवश्यक होता है। सामुद्रिक बीमा वस्तु विशेष में बीमा-योग्य हित के बिना नहीं कराया जा सकता क्योंकि, जैसा कि हमने अभी कहा है, इस स्थिति में किया हुआ बीमे का कॉन्ट्रैक्ट जुए का कॉन्ट्रैक्ट होगा जो कानून की दृष्टि में अवैध होता है।

जीवन-बीमों के विपरीत सामुद्रिक बीमों में बीमा कराते समय उनके विषय (Subject Matter) में बीमा-योग्य हित होना आवश्यक नहीं है। किन्तु, क्षति होते समय बीमित-वस्तु में बीमित का बीमा-योग्य हित होना अनिवार्य होता है। साधारणतः, अधोलिखित व्यक्तियों का सामुद्रिक बीमे के विषयों में बीमा-योग्य हित हुआ करता है :—

(१) माल भेजने वाले का उसके माल में,

(२) जहाज के स्वामी का उसके जहाज में,

(३) जहाज के स्वामी अथवा जहाजी कम्पनी का प्राप्त होने वाले किराबे में, जो उसे माल को सुरक्षित अवस्था में लक्ष्य-स्थान पर पहुँचा देने पर उपलब्ध होगा,

(४) पुनर्बीमा करने वाले बीमक का पहले बीमा किये हुए माल में,

(५) जहाज के नायक तथा अन्य कर्मचारियों का उनको प्राप्त होने वाले वेतन में,

(६) जहाजी बंधक की दस्तावेज (Bottomary Bond) अथवा रिस्पोन्डेन्सिया की जामिनी पर ऋण देने वाले महाजनों का उनके ऋण की सीमा तक जहाज अथवा उस पर लदे हुए माल में,

(७) बन्धककर्त्ता (Mortgager) तथा बन्धकवाही (Mortgagee) का बन्धक रखे हुए माल में,

(८) ट्रस्टियों और निक्षेपग्राहियों (Bailee) का उनको सुरक्षार्थ दी हुई वस्तुओं में।

सन् १८९६ के अंग्रेजी समुद्री बीमा-विधान के अनुसार बीमा-योग्य हित से रहित सामुद्रिक बीमे का कॉन्ट्रैक्ट अवैध होता है। सन् १९०९ के समुद्री बीमा-विधान ने उक्त प्रकार के सभी बीमा कॉन्ट्रैक्टों को अनियमित घोषित कर दिया है। कानून भंग करने वालों के लिये ६ मास का कारावास अथवा १०० पौंड के आर्थिक दंड का भी विधान उसके द्वारा कर दिया गया है। साथ ही उनकी शर्तों के अनुसार प्राप्त बीमित धन भी सरकार जब्त कर सकती है। इन कठोर नियंत्रणों के कारण बीमा-योग्य हित से रहित सामुद्रिक बीमे की पालिसियों का उस देश में अब सम्भवतः चिह्न भी नही रह गया है। बीमा-योग्य हित विहीन बीमा पालिसियों को हित विहीन बीमा पालिसी (Policy proof of Interest or P. P. I.) कहते हैं। इस प्रकार की पालिसियों को प्राप्त करने के लिये स्पष्टतः बीमा-योग्य हित की आवश्यकता नहीं होती थी और हानि होने पर दावे का भुगतान भी प्राप्त हो सकता था। किन्तु यदि बीमक भुगतान देने से मुकर जाता था तो कानून द्वारा उसे विवश नहीं किया जा सकता था।

२. मूलभूत तथ्यों का प्रदर्शन : अन्य बीमा कॉन्ट्रैक्टों के समान सामुद्रिक बीमे का कॉन्ट्रैक्ट भी पूर्ण ईमानदारी (Absolute Good Faith) का कॉन्ट्रैक्ट होता है। इसका अर्थ यह होता है कि बीमा कराने वाले व्यक्ति तथा बीमा-संस्था को परस्पर पूर्ण विश्वास एवं ईमानदारी का व्यवहार करना चाहिये और बीमा सम्बन्धी किसी बात को एक दूसरे से गुप्त भी नहीं रखना चाहिये। यह दायित्व बीमा कराने वाले पर अधिक अंशों में लागू होता है क्योंकि जिस वस्तु का बीमा कराने का वह इच्छुक होता है, उसके विषय में उससे अधिक ज्ञान अन्य किसी व्यक्ति का नहीं हो सकता। लार्ड मैन्सफील्ड के अनुसार बीमक बीमित का विश्वास करता है और यह समझ कर कि बीमित उससे कोई आवश्यक बात छिपा नहीं रहा है, बीमा करता है। मूलभूत तथ्यों को छिपाना धोखा (Fraud) है और इसके आधार पर बीमे का कॉन्ट्रैक्ट रद किया जा सकता है। किन्तु, हमें याद रखना चाहिये कि पूर्ण ईमानदारी का सिद्धान्त दोनों ही

पक्षों पर लागू होता है, यद्यपि बीमा कराने वाले पर अधिक मात्रा में। अतः, बीमा-संस्था का भी यह उत्तरदायित्व होता है कि वह भी किसी बीमा सम्बन्धी आवश्यक बात को बीमित से छिपावे नहीं। यदि बीमा कम्पनी ऐसा करती है तो बीमित को भी बीमा कॉन्ट्रैक्ट रद कर देने का अधिकार मिल जाता है। उदाहरणार्थ बीमा करते समय बीमा करने वाले को यह ज्ञात है कि जहाज लक्षित-स्थान पर सुरक्षित पहुँच गया है। यदि वह इस बात को बीमा कराने वाले से छिपा कर बीमा कर लेता है, तो उसके प्रगट होने पर बीमित बीमे को रद कर सकता है और बीमक प्रीमियम की रकम को लौटा देने के लिये बाध्य होगा।

चाहे बीमित से कोई भूल असावधानी से ही हो जाय उसके प्रगट होने पर बीमक बीमा रद कर सकता है क्योंकि कानून की दृष्टि में यह भी एक प्रकार का धोखा ही है। धोखा इसलिये है कि जिस जोखिम के लिये उसने बीमा किया है उससे अतिरिक्त जोखिम उसे उठानी पड़ती है। इसी प्रकार यदि एक पक्ष किसी तथ्य को मूलभूत अथवा प्रकट करने योग्य न समझ कर छिपा लेता है और पीछे से वह प्रकट करने योग्य प्रमाणित होता है, तो निर्दोष पक्ष इस दशा में भी बीमा कॉन्ट्रैक्ट को रद कर सकता है।

किन्तु जो तथ्य बीमा से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रखते ; जो महत्वपूर्ण नहीं हैं; जिनसे साधारण व्यक्ति भी परिचित हो सकता है; जिनका बीमक को ज्ञान होता है; जिनसे अभिज्ञ होने की उससे आशा की जा सकती है अथवा जिनके प्रति वह अपना स्वत्व त्याग कर देता है, यदि उन्हें छिपा लिया जाता है तो बीमा कॉन्ट्रैक्ट की वैधता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता; जैसे, बीमक को बीमा-व्यवसायी होने के नाते, जहाज की श्रेणी, उसके आवागमन के साधारण मार्ग, मार्ग की मौसमी दशा, जिसमें वह विशेषतः बीमा करता है उस व्यापार की रीति-रिवाजों आदि से परिचित होना चाहिये, क्योंकि उनसे पूर्णतः परिचित होना उनका उत्तरदायित्व है। अतः, यदि बीमित उक्त बातों में से किसी को छिपा लेता है तो बीमक उसके आधार पर समुद्री बीमे को रद नहीं कर सकता। यदि निर्दोष पक्ष बीमा रद करने का इच्छुक है तो उसे यह कार्य उचित समय के भीतर

ही करना चाहिये। यह उचित समय सभी अवस्थाओं के लिये समान नहीं होता— विभिन्न अवस्थाओं के लिये पृथक्-पृथक् होता है। सर्वोत्तम मार्ग यह है कि निर्दोष पक्ष को जैसे ही यह सूचना मिले कि उसे धोखा दिया गया है अथवा उससे कोई आवश्यक बात गुप्त रखी गई है अथवा उसके प्रति कुप्रतिनिधित्व (Mis-representation) किया गया है, उसे तत्क्षण ही कॉन्ट्रैक्ट रद करने की कार्यवाही आरम्भ कर देनी चाहिये।

अप्रत्यक्ष साधारण शर्तें (Implied Warranties) : समुद्री बीमों में कुछ साधारण शर्तें ऐसी निहित रहती हैं जिन्हें स्पष्ट करना आवश्यक नहीं होता। ये अप्रत्यक्ष साधारण शर्तें कहलाती हैं। इनके अनुसार बीमित अपने ऊपर यह उत्तरदायित्व लेता है कि वह किसी विशेष कार्य अथवा शर्त्त को पूरा करेगा।* यह भी हो सकता है कि वह इनके द्वारा किसी तथ्य (Fact) की विद्यमानता का समर्थन अथवा विरोध करे। ध्यान देने योग्य बात यह है कि अप्रत्यक्ष शर्तों का पालन करने का उत्तरदायित्व केवल बीमित पर ही होता है, बीमक का इनसे कोई सम्बन्ध नहीं होता। उन पर सदैव दृष्टि रखना बीमित के लिये आवश्यक होता है। क्योंकि उनमें से किसी की भी उपेक्षा होने पर बीमा कम्पनी बीमे को रद कर सकती है। उसका फल यह होगा कि वह सारे दायित्व से मुक्त हो जायगी। एक साधारण कॉन्ट्रैक्ट में तो किसी साधारण शर्त के भंग होने पर निर्दोष पक्ष को हानि-पूर्ति का दावा करने का ही अधिकार प्राप्त होता है; किन्तु समुद्री बीमे में उसे कॉन्ट्रैक्ट को ही रद कर देने का भी अधिकार मिल जाता है।

---

* "The Warranty in a contract of insurance is a condition or a contingency and unless that be performed there is no contract".—Lord Mansfield : Hibbert vs. Pigon (1783),

"A Warranty is either an undertaking by the assured that some particular thing shall be fulfilled ; it is a statement which affirms or negatives the existence of a particular state of fact."——B. N. Singh : Insurance Law and Practice in India (1940) p. 193.

अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष साधारण शर्तें पूर्णतः भिन्न होती हैं; प्रत्यक्ष शर्तों (Express Warranties) को लागू करने के लिये उनका स्पष्ट होना अति आवश्यक होता है; किन्तु अप्रत्यक्ष शर्तों के लिये उनके स्पष्टीकरण की कोई आवश्यकता नहीं होती। पूर्वकाल में तीन अप्रत्यक्ष-साधारण शर्तें मानी जाती थीं—

(१) जहाज का समुद्र यात्रा के योग्य होना।

(२) बीमा-प्रयोजन का वैधानिक होना।

(३) जहाज का मार्ग-विचलित न होना।

वर्त्तमान समय में केवल प्रथम दो ही अप्रत्यक्ष-साधारण शर्तें मानी जाती हैं। इसका कारण इंगलैण्ड का समुद्री बीमा कानून है। उसे संसार में सर्व-प्रधान स्थान प्राप्त है और वह इस विषय में संसार का नेतृत्व करता है। वहाँ के सन् १९०६ के अंग्रेजी सामुद्रिक बीमा विधान की ३९वी और ४१वी धाराओं के अनुसार केवल दो ही साधारण शर्तें मानी गई हैं और मार्ग-विचलित न होने का वाक्यांश ४६वीं धारा में पृथक् रूप से दिखलाया गया है।

जहाज का समुद्र यात्रा योग्य होना (Sea-worthiness) सामुद्रिक बीमों की यह सर्वप्रथम अप्रत्यक्ष साधारण शर्त है जिसके अनुसार जहाज प्रस्थान के बन्दरगाह पर और उसके पश्चात् जिन पर वह रुकता अथवा ठहरता है, वहाँ वह समुद्र यात्रा के योग्य होगा। कोई भी जहाज समुद्र यात्रा के योग्य समझा जा सकता है यदि उसकी आवश्यक मरम्मत हो चुकी है; वह नाविक तथा अन्य आवश्यक सामग्री से सुसज्जित है और उस यात्रा की साधारण सामुद्रिक जोखिमों का सामना कर सकता है, जिनके लिये उसका बीमा कराया गया है। जहाज की सन्तोषप्रद दशा और मज़बूत होना ही उसकी समुद्र यात्रा की योग्यता का अर्थ नहीं है। उसमें यह भी सम्मिलित होता है कि वह रसद, नाविकों, आवश्यक दस्तावेज़ों तथा अन्य सामग्रियों से भी युक्त है और बीमित-माल को ले जाने योग्य भी है। जैसे कोयला अथवा अन्य भारी खनिज पदार्थ ले जाने के योग्य जहाज, सूती वस्त्र, घड़ियाँ आदि हलकी वस्तुओं को ले जाने

योग्य प्राय: नहीं होता। अतः, जहाज की समुद्र-यात्रा की योग्यता की समीक्षा करते समय उसके द्वारा जाने वाले माल के स्वभाव तथा श्रेणी को भी ध्यान में रखना पड़ता है। वास्तविकता यह है कि 'जहाज का समुद्र-यात्रा योग्य होना, वाक्यांश अत्यन्त संकीर्ण है और उन सभी बातों की ओर स्पष्टत: इंगित नहीं करता जो उसके अन्तर्गत विहित समझी जाती हैं। इस अप्रत्यक्ष साधारण शर्त में उपरोक्त सभी बातों का पालन करना आवश्यक है क्योंकि जहाज केवल जहाज के रूप में ही नहीं वरन् उन वस्तुओं के वाहक (Carrier) के रूप में भी समुद्र-योग्य होना चाहिये।‡ अतः, यदि जमा हुआ मास अथवा दूध, पनीर इत्यादि जहाज द्वारा अन्य देशों को भेजा जा रहा है तो न केवल जहाज वरन् ऐसी वस्तुओं को ले जाने के निमित्त रेफ्रीजरेटर प्रभृति मशीनें भी ठीक दशा में होनी चाहिये और उन वस्तुओं को निश्चित स्थान पर पहुँचाने के योग्य होना चाहिये। इसी प्रकार यदि जहाज को किसी यात्रा को समाप्त करने के लिये विभिन्न स्थानों पर विभिन्न साधनों की आवश्यकता पड़े तब यहाँ भी आवश्यक होगा कि ऐसे साधन उस जहाज पर मौजूद रहें जिससे अवसर पड़ने पर उन्हें प्रयोग में लाया जा सके।

यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि 'समुद्र-योग्यता' (Sea-worthiness) की शर्त अवधि-पालिसी (Time Policy) पर लागू नहीं होती। कभी-कभी इस शर्त का पालन करना अवधि-बीमे में बड़ा कठिन हो जाता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई 'अवधि-पालिसी' १ जनवरी से ३० जून तक के लिये ऐसे उपक्रम के सम्बन्ध में ली गई है जो १५ दिसम्बर से प्रारम्भ हो चुका है। स्पष्ट है कि इस दशा में बीमित के लिये जहाज की 'समुद्र-योग्यता' के बारे में कुछ भी पता लगाना बड़ा कठिन है। इसीलिये मेरीन इन्श्योरेन्स ऐक्ट की धारा ३९ (५) में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि अवधि-बीमा में ऐसी कोई भी अप्रत्यक्ष साधारण शर्त नहीं रहती कि उपक्रम के किसी अवस्था में जहाज समुद्र-योग्य होगा। परन्तु यदि गुप्त रख कर, तथा जान बूझ कर बीमित जहाज

---

‡ दे० Keat : Guide to Marine Insurance (1938), p. 20.

को यात्रा में भेज देता है, जब कि वह 'समुद्र-योग्य' नहीं है, तो क्षति होने पर उसकी पूर्ति के लिये बीमा कम्पनी दायी नहीं ठहराई जायगी।

बीमा-प्रयोजन की वैधानिकता (Legality of Venture) इसके अनुसार बीमित यह उत्तरदायित्व लेता है कि यात्रा वैधानिक है और जहाँ तक उसके नियन्त्रण का सम्बन्ध है वह वैधानिक रूप से ही होगी। यदि यात्रा कानूनन अनुचित प्रमाणित होती है तो बीमक, बीमा पालिसी को रद करके उसकी शर्तों के बन्धन से मुक्त हो जायगा। यदि कुछ महसूली माल चुंगीघर (Customs House) को धोखा देकर विदेश भेजा जाता है, तो माल की यह यात्रा अनियमित होती है। अतः इस यात्रा के लिये ली हुई पालिसी अवैधानिक होगी। इसी प्रकार युद्ध-काल में शत्रु-देशों से व्यापार करना कानूनन वर्जित होता है। यदि कोई जहाज इस वर्जित व्यापार में संलग्न है तो उसकी जोखिमों के लिये ली गई बीमा पालिसी भी अवैध समझी जाती है। समुद्री-बीमा पालिसी में नाविकों की चोरी (Barratry) की जोखिम सम्मिलित रहती है। नाविकों की चोरी (Barratry) उस स्थिति को कहते हैं जब कि यात्रा तो वैध होती है; परन्तु जहाज का नायक और दूसरे अधिकारी किसी महसूली माल को बाहर चोरी से ले जाते हों और इसका ज्ञान जहाज के स्वामी को न हो।

जहाज का मार्ग-विचलित न होना (Non-Deviation) : इस शर्त का तात्पर्य यह होता है कि जहाज अपने ठीक मार्ग पर, जिसका उल्लेख पालिसी में किया जा चुका है, पर ही चलेगा अथवा वह उसी मार्ग का अनुसरण करेगा जिस पर जहाज प्रायः आया-जाया करते हैं। किन्तु, यदि पालिसी में उसके लिये कोई मार्ग निश्चित कर दिया गया है तो उसे उसीका अनुगमन करना चाहिये। यदि उसका त्याग कर वह कोई अन्य मार्ग ग्रहण करता है तो यह समझ लिया जाता है कि वह पथभ्रष्ट हो गया। बीमा कम्पनी इस पर पालिसी को रद कर सकती है। किन्तु कुछ परिस्थितियों में जहाजों की पथभ्रष्टता कानूनन क्षम्य समझी जाती है। जैसे, जहाज की रक्षा के लिये।

पुनर्बीमा (Re-insurance) : समुद्री-बीमा-व्यवसायी पूरी जोखिम सदैव अपने ही ऊपर नहीं रखते। जब कभी वे यह देखते हैं कि उन्होंने अपनी सामर्थ्य से अधिक जोखिम ले ली है, तब वे उसके कुछ अंश का बीमा किसी अन्य बीमा करने वाले से करा लेते हैं। किन्तु इस पुनर्बीमा का प्रभाव वास्तविक बीमित पर कुछ भी नही पड़ता। उसका दूसरी बीमा कम्पनी से कोई सम्बन्ध नहीं होता क्योंकि दूसरा बीमा दो विभिन्न पक्षों में होने के कारण एक पृथक् कॉन्ट्रैक्ट समझा जाता है। जोखिम उत्पन्न होने पर पहला बीमित अपनी बीमा कम्पनी से ही क्षति-पूर्ति करा सकता है। दूसरी बीमा कम्पनी पर उसका किसी प्रकार का दावा नहीं होता।

दोहरा बीमा (Double-insurance) : यह पुनर्बीमा से पूर्णतः भिन्न होता है। इसमें बीमित स्वयं ही एक से अधिक बार अपने माल का बीमा कराता है। यदि वह बीमा कम्पनियों को धोखा देने के मन्तव्य से ऐसा नहीं करता तो वह सब बीमकों से बीमित-धन प्राप्त कर सकता है। यदि सब बीमा पालिसियों की समन्वित रकम वस्तु के वास्तविक मूल्य से अधिक होती ह तो उसे अपने बीमकों से उस मूल्य के समान ही क्षति-पूर्ति प्राप्त होगी। उदाहरण के लिये, कल्पना कीजिए कि किसी व्यापारी को अपने माल का वास्तविक मूल्य ज्ञात नहीं है, और वह अनुमान से उसका मूल्य आँक कर बीमा करा लेता है; पीछे से उसको ध्यान आता है कि उसका माल अधिक मूल्य का है। यह सोच कर वह उसका दुबारा बीमा करा लेता है। इस दशा में यदि उसे हानि होती है, तो वह पहले बीमक से जितना रुपया वसूल हो सकता है प्राप्त कर लेगा और वास्तविक मूल्य की पूर्ति में जितना अन्तर रह जाय उसको दूसरे बीमक से वसूल कर सकता है। बीमा करने वाले परस्पर बीमित-धन के अनुपात में हानि-पूर्ति के लिये दिये गये धन का भार विभाजित कर लेते हैं। किन्तु हमें यह याद रखना चाहिये कि यह नियम उसी अवस्था में लागू होता है जब एक ही व्यक्ति समान हित से एक ही वस्तु का एक से अधिक बार बीमा कराता है।

प्रायः ऐसा होता है कि एक से अधिक व्यक्ति अपने विभिन्न हितों के कारण

एक ही वस्तु का पृथक्-पृथक् बीमा कराते हैं। इस दशा में प्रत्येक बीमा कराने वाले को अपना सम्पूर्ण बीमित-धन प्राप्त करने का अधिकार होता है। दोहरे बीमे की पालिसी में एक सूचना निहित रहती है। और वह यह कि जब तक प्रथम बीमे की अवधि समाप्त होकर हानि होने पर उसका बीमित धन बीमित को प्राप्त न हो जाय, तब तक पुनर्बीमे की रकम उसे न दी जाय।

अध्याय १८

सामुद्रिक बीमा और उसकी पालिसी के प्रकार

बीमा कौन करता है ? : सामुद्रिक बीमा प्रायः लायड्स-संघ (Lloyd's-Association) के आश्वासकों (Under Writers) अथवा संयुक्त-पूंजी बीमा कम्पनियों से कराया जाता है । जो पालिसी लायड्स के सदस्यों से प्राप्त की जाती है उसे लायड्स-पालिसी, और जो किसी कम्पनी से प्राप्त की जाती है उसे कम्पनी-पालिसी कहते हैं । इन दो सामुद्रिक बीमकों के अतिरिक्त व्यक्तिगत रूप से बीमा करने वाले अनेक प्रभावशाली आश्वासक भी इंगलैण्ड तथा अन्य देशों में हैं । जहाजों के स्वामियों की बीमा करने वाली समितियाँ भी समुद्री-बीमा-व्यवसाय के एक बड़े भाग पर अधिकार रखती हैं ।

बीमा कम्पनियों के विषय में पालिसी स्वयं उन्ही से अथवा उनके एजेन्टों से प्राप्त की जा सकती है; किन्तु लायड्स-पालिसी केवल उसके दलाल-सदस्यों के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है । कम्पनियाँ शक्ति से अधिक जोखिम उठा लेने पर उसका पुनर्बीमा करा सकती है, किन्तु लायड्स के आश्वासक ऐसा नहीं कर सकते । लायड्स-संघ स्वयं बीमे का व्यवसाय नहीं करता, सदस्य ही करते हैं । किन्तु बीमा कम्पनियाँ स्वयं ही यह काम करती हैं । साधारणतः लायड्स के दलालों को बीमा करने वाले सदस्यों से उन्हें प्राप्त प्रीमियम का दस प्रतिशत कमीशन मिलता है । इस कमीशन की रकम बीमा कराने वाले से वसूल नहीं की जाती ।

बीमा कराने की विधि

लायड्स-संघ में : हम पहले ही कह चुके हैं कि लायड्स में दलाल-सदस्यों द्वारा ही बीमा कराया जा सकता है । बीमा कराने का इच्छुक व्यक्ति लायड्स

के किसी दलाल के पास अपना बीमा प्रस्ताव लेकर जाता है। प्रस्ताव को देख कर दलाल प्रीमियम की दर बतलावेगा। यदि वह दर प्रस्तावक को स्वीकार होगी तो वह एक पर्ची (Slip) तैयार करेगा। उस पर्ची को लेकर वह किसी आश्वासक के समक्ष उपस्थित करेगा। यदि वह पूरी जोखिम अपने ऊपर नहीं लेता तो दलाल संघ के अन्य आश्वासकों के पास जायगा और उनके सम्मुख उक्त पर्ची को उपस्थित करेगा। जितनी-जितनी जोखिम प्रत्येक आश्वासक लेता है उसे पर्ची पर लिख कर अपने हस्ताक्षर कर देता है। इस प्रकार पूरी जोखिम का बीमा हो जाने पर वह अपने कमीशन का अधिकारी बन जाता है। यह पर्ची, बीमित द्वारा पालिसी न मिलने के समय तक उसके स्थान में, प्रयुक्त होती है, यद्यपि उसकी शर्तें कानूनन मान्य नही होतीं। इंगलैण्ड में, वहाँ के कानून के अनुसार, बिना टिकट लगाया हुआ कॉन्ट्रैक्ट-पत्र वैध नहीं समझा जाता। तथापि व्यापारियों में बिना टिकट लगी पर्चियाँ सर्वत्र प्रचलित हैं। लायड्स-संघ के नियमानुसार पर्ची पर हस्ताक्षर होने के पश्चात् उसकी शर्तों का पालन करना हस्ताक्षर करने वाले आश्वासक के लिये आवश्यक हो जाता है। विशेष अथवा साधारण बेचान द्वारा पालिसी के समान ही ये पर्चियाँ प्रदान योग्य (Assignable) भी होती हैं।

इसके पश्चात् दलाल लायड्स-पालिसी सम्पूर्ण बीमित धन के लिये तैयार करता है। यदि बीमा किसी ऐसे देश में हुआ है जहाँ का टिकट सम्बन्धी कानून इंगलैण्ड के समान ही है, तो बीमा पालिसी तैयार होने के समय तक के लिये एक अस्थाई कॉन्ट्रैक्ट-पत्र तैयार कर लिया जाता है। इस प्रकार के अस्थाई कॉन्ट्रैक्ट भी लायड्स-संघ में व्यापक रूप से प्रचलित है।

कम्पनियों में : लायड्स-संघ और कम्पनी में बीमा कराने की पद्धतियों में अन्तर होता है। यह सभी जानते हैं कि कम्पनियाँ स्वयं ही बीमा करती हैं और शक्ति से अधिक जोखिम उठा लेने पर उसका पुनर्बीमा भी करा सकती हैं। कम्पनियों में बीमा कराने की कई प्रणालियाँ हैं। उनमें से एक यह भी है कि बीमा कराने का इच्छुक व्यक्ति उनमें से किसी से प्रीमियम की दर पूछता है। उसे प्राप्त

करने पर यदि वह तुरन्त ही अपनी स्वीकृति कम्पनी को भेज देता है तो वह अपनी पूर्व उल्लिखित दर पर ही उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगी। कॉन्ट्रैक्ट हो जाने पर पालिसी प्रस्तुत होने तथा बीमित को दिये जाने तक के अन्तर्काल के लिये एक वह स्मरण-पत्र (Memorandum or Cover Note) बना कर बीमित को देती है। यह लायड्स की पर्ची (Slip) के तुल्य होता है। स्मरण-पत्र की शर्तों को दोनों पक्ष मानने को बाध्य होते हैं। किन्तु उनमें सभी शर्तें अपने पूर्ण रूप में अंकित नहीं होतीं। जब उन्हें पालिसी के साथ पढ़ा जाता है तभी उन शर्तों को भली भाँति समझ सकते हैं। पालिसी की अवधि निश्चित समय से अधिक नहीं हो सकती। उसमें बीमा कराने वाले का नाम, बीमित-धन, जोखिम, यात्रा आदि बातों का स्पष्ट उल्लेख रहता है।

लायड्स-पालिसी की कुछ प्रमुख बातें : लायड्स की बीमा पालिसी सामुद्रिक बीमा-क्षेत्र में प्रामाणिक समझी जाती है और सर्वाधिक व्यापक रूप से प्रचलित है।† उससे सामुद्रिक बीमा सम्बन्धी सभी बातों का ज्ञान अत्यन्त सरलता से हो जाता है। अन्य बीमा-व्यवसायियों की पालिसियों में उसका अधिकांशतः अनुकरण होता है। उसमें विहित कुछ प्रमुख ब्योरों का विवरण नीचे दिया जाता है :—

(१) बीमा कराने वाले का नाम;
(२) रक्षित अथवा अरक्षित शब्द;
(३) यात्रा का विवरण तथा जोखिम की अवधि;
(४) जहाज और उसके नायक (Captain) का नाम;
(५) जहाज किन बन्दरगाहों से होकर जायगा और कहाँ-कहाँ ठहरेगा; अर्थात् उसके रुकने तथा ठहरने की स्वाधीनता (Touch & Stay)
(६) बीमे का मूल्य निर्धारण;

---

†इस सम्बन्ध में 'Lord Mansfield' का कथन इस प्रकार है "This policy of insurance is a very strange instrument, as we all

(७) बीमित जोखिम अथवा जोखिमें;
(८) अभियोग तथा व्यय;
(९) बीमा का प्रीमियम और उसकी दर;
(१०) स्वत्व-त्याग;
(११) स्मरण-पत्र (Memorandum)
(१२) बीमा करने वाले अथवा वालों के नाम और उनके (अथवा उनके प्रतिनिधि) के हस्ताक्षर तथा उनमें से प्रत्येक द्वारा ली हुई जोखिम।

लायड्स-संघ के आश्वासकों का सामुद्रिक बीमों से घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण यह नहीं समझना चाहिये कि वे स्वयं को उसी क्षेत्र में सीमित रखते हैं। वास्तविकता यह है कि अन्य प्रकार की जोखिमों का भी बीमा करते हैं; जैसे, युद्ध, कर निर्धारण अथवा वृद्धि, मौसमी दशा में परिवर्तन इत्यादि की जोखिमें। वे उन जोखिमों का भी बीमा करते हैं जो जुआ के सदृश होती हैं अथवा उनसे वैभिन्य दर्शित करना प्रायः असंभव होता है। साधारण बीमा कम्पनियाँ कानूनन वर्जित होने के कारण इनका बीमा स्वीकार नहीं कर सकतीं। कभी-कभी लायड्स के आश्वासक विचित्र-विचित्र जोखिमों का भी बीमा करते हैं—एक बार एक स्थूलकाय महिला ने, जो किसी सर्कस में काम करती थी, इस जोखिम के विरुद्ध बीमा कराया था कि कहीं उसका वज़न कम न हो जाय।†

सामुद्रिक बीमा-पालिसियों के प्रकार

समुद्र में जहाज और उसमें लदे हुए माल को अनेक प्रकार के संकटों से ग्रस्त हो जाने का भय लगा रहता है। माल के स्वभाव, जहाज की श्रेणी, यात्रा किये जाने वाले क्षेत्र की मौसमी दशा आदि के अनुसार भय घटता-बढ़ता रहता है। अतः यह स्पष्ट ही है कि विभिन्न स्वभाव तथा श्रेणी के व्यक्ति विभिन्न प्रकार

---

†जे० सी० मिश्रा-गाइड टू मेरीन, फायर एन्ड एक्सीडेंट इन्श्योरेन्स—पृष्ठ १४।

की पालिसियाँ चाहेंगे। इसी कारणवश व्यापारियों की आवश्यकता-पूर्ति के लिये बीमा संस्थाएँ अनेक प्रकार की पालिसियाँ निकालती हैं।

जोखिम-पालिसी (Risk Policy) : बन्दरगाहों में विशाल काय जहाजों का निर्माण होता है और उनमें लागत भी बहुत लगती है। उन जहाजों को तूफान आदि से सुरक्षित रखने के लिये उनके मालिक जोखिमी पालिसी लेते हैं।

यात्रा-पालिसी (Voyage Policy) : इस प्रकार की पालिसियाँ विशेषकर माल के बीमे के लिये उपयुक्त होती हैं। इन्हें एक बन्दरगाह से दूसरे लक्षित बन्दरगाह तक की निश्चित यात्रा के लिये लिया जाता है। इसमें सामुद्रिक तथा आकस्मिक स्थलीय जोखिमें सम्मिलित रहती हैं। ये अवधि (Time) पालिसी से पूर्णतः विपरीत होती हैं, क्योंकि इनमें समय का उल्लेख नहीं किया जाता। यदि हमें मद्रास से हांगकांग के लिये माल भेजना है तो हम उस पर यात्रा-पालिसी ले सकते हैं। ऐसी पालिसी जहाजों के बीमा के लिये अधिक उपयोगी नहीं होती।

यात्रा आरम्भ होने के साथ ही बीमक का उत्तरदायित्व का भी प्रारम्भ हो जाता है। किन्तु उत्तरदायित्व का निर्धारण पालिसी की शर्तों के आधार पर ही किया जा सकता है। यदि पालिसी में केवल "से" पद (From Clause) का उल्लेख हो तो जहाज के बन्दरगाह छोड़ने पर के क्षण से बीमक पर जोखिम का दायित्व आरम्भ हो जाता है। किन्तु यदि "पर और से" ("At and From" Clause) का उल्लेख हो तो जिस क्षण माल जहाज पर लद चुकता है उसी क्षण से कम्पनी का दायित्व आरम्भ होगा।

अवधि-पालिसी (Time Policy) : यह किसी निश्चित समय के लिये ली जाती है; जैसे, २० अप्रैल, १९४७ से १५ जनवरी, १९४८ तक के लिये इसके अन्तर्गत अधिक से अधिक एक वर्ष का बीमा होता है। इससे अधिक

समय की अवधि वाली पालिसी इंगलैण्ड में अवैध समझी जाती है।† यह जहाजों का बीमा कराने के लिये अधिक उपयोगी होती है क्योंकि उनके स्वामियों को प्रत्येक यात्रारम्भ तथा लक्षित बन्दरगाहों के बीच की यात्रा के लिये बार-बार बीमा कराने की झंझट से मुक्ति मिल जाती है। इसके अतिरिक्त, अपेक्षाकृत दीर्घकाल अवधि का बीमा होने के कारण 'अवधि-पालिसी' में कुछ कम प्रीमियम देना पड़ता है। यह ऐसे व्यापारियों के लिये भी उपयोगी सिद्ध हुआ है जो वर्ष भर में थोड़ा-थोड़ा कई बार में एक निश्चित मूल्य का माल भेजा करते हैं।

पालिसी की मियाद एक वर्ष पर निश्चित होने के कारण कभी-कभी बड़ी असुविधा हो जाती है। जैसे, यदि अवधि की समाप्ति ऐसी दशा में हो जब कि जहाज यात्रा में हो और उसकी यात्रा समाप्त न हुई हो। इस कठिनाई को दूर करने के लिये बहुधा "जारी रहने का पद" (Continuation Clause) लगा रहता है जिसके अनुसार यदि बारह महीने बीतने पर यात्रा समाप्त न हुई हो तो बीमक का दायित्व जारी रहता है और तब समाप्त होता है जब जहाज गंतव्य बन्दरगाह पर सुरक्षित दशा में पहुँच जाता है।

मिश्रित पालिसी (Mixed Policy): इस प्रकार की पालिसी प्रायः उन जहाजों के लिये ली जाती है जो कुछ नियत बन्दरगाहों को ही जाते हैं। इसमें यात्रा और अवधीय दोनों ही प्रकार की पालिसियों की विशेषताएँ सन्निहित रहती हैं। इसके अनुसार किसी विषय (Subject Matter) का बीमा निश्चित बन्दरगाहों के मध्य किसी निश्चित समय के लिये कराया जा सकता है; जैसे, कलकत्ता से न्यूयार्क तक का बीमा २६ मार्च से १५ नवम्बर, सन् १९४७ तक के लिये। पालिसी की शर्तों के अनुसार नियत अवधि के भीतर हानि होने पर बीमा-संस्था बीमित की हानि-पूर्ति करती है। यदि कोई व्यापारी समय-समय पर लगभग निश्चित वार्षिक मूल्य का माल किस्तों के रूप में भेजता है तो वह उसके लिये समय-सूचक अवधीय पालिसी ले सकता है।

---

†इण्डियन स्टाम्प ऐक्ट में भी यह स्पष्ट कर दिया गया है कि कोई 'अवधि-पालिसी' बारह महीने से अधिक समय के लिये नहीं चालू की जा सकती।

निर्धारित मूल्य-पालिसी (Valued Policy) : इस प्रकार की पालिसी के अन्तर्गत यह आवश्यक होता है कि बीमा कराते समय ही बीमे के विषय का मूल्य निर्धारित करके उसे पालिसी में अंकित कर दिया जाय। हानि होने पर बीमा कम्पनी इसी निर्धारित मूल्य को हानि-पूर्ति में देती है। इस प्रकार निर्धारित मूल्य को बीमितमूल्य (Insured Value) कहते हैं। इस मूल्य में माल का क्रय-मूल्य, जहाजी किराया तथा अन्य व्यय और भविष्य में होने वाले सम्भावित लाभ का १०अथवा ५१ प्रतिशत अंश सम्मिलित होता है। अतः बीमित मूल्य का निर्धारण साधारणतः इस प्रकार होता है :

(१) माल का लागत-मूल्य (Cost Price);

(२) माल के भेजने में किया हुआ व्यय, जैसे जहाज तथा कुली भाड़ा, प्रीमियम तथा अन्य व्यय;

(३) लाभ के निमित्त १० अथवा १५ प्रतिशत।

मूल्य-निर्धारित पालिसियों में निर्धारित मूल्य ही क्षति-पूर्ति का माप होता है। यदि समग्र माल की हानि हो जाती है तो यही निर्धारित मूल्य, और यदि आंशिक हानि होती है तो इसके अनुपात में उसी पूर्व निर्धारित मूल्य का एक अंश बीमित को प्राप्त होगा।

अनिर्धारित मूल्य-पालिसी (Un-valued Policy) : यह निर्धारित मूल्य-पालिसी से पूर्णतः प्रतिकूल होती है। जैसा कि हम अभी देख चुके हैं कि निर्धारित मूल्य-पालिसी में बीमितवस्तु का मूल्य पहले से ही निश्चित रहता है और उसकी क्षति होने पर उसी मूल्य को प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु, अनिर्धारित मूल्य-पालिसी में बीमितवस्तु का मूल्य पूर्व-निश्चित नही होता। जब हानि होने पर दावा किया जाता है उसी समय इसका निरूपण करते हैं। ऐसी अवस्था में क्षति-पूर्ति का माप बीमितमूल्य (Insured Value) नहीं, वरन् 'बीमा-योग्य-मूल्य' (Insurable Value) होता है। इसे ज्ञात करने के लिये माल के क्रय-मूल्य में जहाज का किराया तथा अन्य जहाजी व्यय

ही जोड़े जाते हैं; भविष्य में होने वाले लाभ (Anticipated Profit) का कोई अंश सम्मिलित नहीं किया जाता। माल की पूर्ण-हानि हो जाने पर यही बीमा-योग्य-मूल्य बीमित को प्राप्त हो सकता है। यदि हानि आंशिक ही होती है तो 'बीमा-योग्य-मूल्य' से हानि का अनुपातिक अंश ही बीमित को प्राप्त होगा। 'बीमा-योग्य-मूल्य' का निर्धारण करने के लिये मेरीन इन्श्योरेन्श ऐक्ट की धारा १६ में निम्नांकित नियम का वर्णन है :

१. माल के बीमा में : बाजार दर से माल की लागत तथा माल भेजने में किया हुआ व्यय तथा बीमा-व्यय जोड़ कर 'बीमा-योग्य-मूल्य' निकाला जाता है।

२. जहाज के बीमा में : यात्रा आरम्भ होने के पूर्व जहाज का मूल्य, उसके साथ की समस्त आवश्यक सामग्रियों का मूल्य, जहाज में रखे हुये रसद इत्यादि का मूल्य, कप्तान के पास की आवश्यक रकम और जहाज को यात्रा योग्य बनाने के सभी आवश्यक व्ययों को जोड़ा जाता है। इस योगफल में फिर प्रीमियम जोड़ दिया जाता है।

३. किराया का बीमा : इसमें मिलने वाले किराये पर बीमा-व्यय जोड़ दिया जाता है।

ब्लाक-पालिसी (Block Policy) : यह अवधि-पालिसी का ही एक विशेष रूप है। दक्षिणी-अफ्रीका में बीमा कम्पनियाँ खानों से सोना निकालने के समय से लेकर उसके लक्ष्य-स्थान तक पहुँचने के समय तक की जितनी भी जोखिमें होती हैं, उन्हें एक ही ब्लाक पालिसी के अन्तर्गत स्वीकार कर लेती हैं।

मुद्रा-पालिसी (Currancy Policy) : विनिमय-दर में परिवर्तन से विदेशी हितों के रक्षार्थ ये पालिसियाँ विदेशी मुद्राओं में स्वीकार की जाती हैं। इनका प्रीमियम भी उन्हीं मुद्राओं में प्राप्त किया जाता है। इनका प्रचार लायड्स-संघ के सदस्यों में विशेष रूप से है। इसका कारण यह ही है कि वे भूमण्डल के सभी भागों में बीमा करते हैं। यद्यपि उनकी अधिकांश पालिसियाँ पौंड-स्टर्लिंग

में ही होती हैं तथापि विदेशी बीमितों की सुविधा और अपने व्यवसाय की उन्नति के दृष्टिकोण से वे अन्य देशों की मुद्राओं में भी पालिसियाँ देते हैं।

खुली पालिसी (Open or floating Policy) : इस पालिसी अन्तगत बीमा करते समय माल का मूल्य निर्धारण नहीं किया जाता। पीछे से जब दावा उपस्थित होता है तभी उसका निश्चय किया जाता है। यह साधारण रूप से ही तैयार कर ली जाती है और जहाज का नाम तथा अन्य बातें उसमें पीछे से लिखी जाती हैं।

निरन्तर विदेशों को माल भेजने वाले व्यापारियों के लिये यह बहुत लाभदायक होती है। एक बार खुली रकम का बीमा करा लेने से उन्हें बार बार बीमा कराने की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि जैसे जैसे माल लदता जाता है बीमित धन की मात्रा गिरती जाती है। जब वह पूर्णतः समाप्त हो जाता है तब नवीन पालिसी लेने की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार की पालिसियों को 'घोषित पालिसी' (Declaration Policy) भी कहते हैं क्योंकि बीमित, पालिसी के अन्तर्गत भेजे जाने वाले माल में अपने हित की घोषणा क्रमानुसार करता है।

कभी कभी 'खुली पालिसी' में समय का भी उल्लेख रहता है किन्तु यह 'अवधि-पालिसी' की श्रेणी में नही गिना जाता। स्पष्ट है कि 'खुली-पालिसी' सामान्यतः 'यात्रा-पालिसियों' का एक सामूहिक रूप है, क्योंकि इसमें यात्रा का उल्लेख रहता है, पालिसी में दिया हुआ बीमित-धन केवल अनेक बार भेजे जाने वाले माल के मूल्य के सम्बन्ध में एक सीमा निर्धारित करता है। इस प्रकार समय का उल्लेख केवल बीमक को किसी निश्चित समय के अन्तर्गत अपने दायित्व का अनुमान लगा सकने के लिये ही होता है। अतः, 'खुली पालिसी' एक वर्ष से अधिक समय के लिये भी ली जा सकती है जो कि 'अवधि-पालिसी' में मुमकिन नहीं।

हित पालिसी (Interest Policy) : हित पालिसी वह पालिसी होती है जिसके विषय में बीमित का बीमा-योग्य हित होता है। हम पूर्व ही कह चुके हैं कि सामुद्रिक बीमा-पालिसी की वैधता के लिये बीमित वस्तु में बीमित का बीमा योग्य हित होना अनिवार्य होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक वैध सामुद्रिक बीमा पालिसी हित पालिसी भी होती है। किन्तु कभी कभी कुछ व्यक्ति सन्देहपूर्ण बीमा-योग्य हित अथवा उसके बिना भी पालिसियाँ ले लेते हैं इन्हें बीमा-योग्य हितयुक्त पालिसियों से पृथक् समझना चाहिये।

नामांकित पालिसी (Named Policy) : जिन पालिसियों में माल ले जाने वाले जहाज का नाम, माल में हित आदि का उल्लेख दिया रहता है, वे नामांकित पालिसी कहलाती हैं।

द्यूत पालिसी (Wager Policy) : इस प्रकार का सामुद्रिक बीमा-पत्र अवैध और अवैधानिक समझा जाता है। नियमानुसार बीमे का कॉन्ट्रैक्ट दोनों पक्षों के पारस्परिक पूर्ण विश्वास, ईमानदारी और बीमा-योग्य हित के साथ होना चाहिये। किन्तु द्यूत पालिसी के विषय में बीमित का बीमा-योग्य हित नहीं होता। यह भी हो सकता है कि उसमें कोई ऐसी शर्त विहित हो कि बीमक बीमा-योग्य हित की विद्यमानता का प्रमाण न माँग सके। इन पालिसियों को हित-विहीन (Policy proof of Interest or No Interest Policy) पालिसियों के नाम से पुकारा जाता है। किसी हित-विहीन पालिसी का बीमक यदि दावे का उदय होने पर उसका भुगतान करने से विमुख हो जाय तो कानून के द्वारा भुगतान करने के लिये उसे विवश नहीं किया जा सकता।

साधारणतः यह देखा जाता है कि जो व्यक्ति बीमा-योग्य हित के बिना बीमा स्वीकार करते हैं, दावे का उदय होने पर उसका भुगतान भी कर ही देते हैं। क्योंकि यदि वे ऐसा न करें तो उनकी प्रसिद्धि को धक्का पहुँचेगा और उनके व्यापार का पतन होगा। इसके फलस्वरूप उनकी आय भी गिरने लगेगी। इस स्थिति को कोई भी चतुर व्यापारी स्वीकार नहीं कर सकता।

मेरीन इन्श्योरेन्स ऐक्ट १९०६ के पास होने के पश्चात् से इस प्रकार की पालिसियाँ रद्द घोषित किये जाने पर भी इनके प्रचलन में कमी नहीं हुई क्योंकि बीमक इसे "सम्मान-बीमा पत्र" (Honour Policy) के रूप में चलाते रहे। अतएव १९०९ में एक और विधान पास हुआ जिसे 'मेरीन इन्श्योरेन्स (गैम्बलिंग पालिसीज़) ऐक्ट' (Marine Insurance Gambling Policies Act 1909) कहते हैं। इसके अनुसार 'द्यूत-पालिसी' न केवल रद्द ठहराई गई वरन् इसे अवैध समझा गया और ऐसी पालिसी लेने वाले अथवा जारी करने वाले के लिये छः मास का कारावास अथवा जुर्माना निश्चित कर दिया गया। इन नियमों और नियन्त्रणों के कारण अब 'द्यूत पालिसी' का चलन बहुत कम हो गया है।

वास्तव में ये हित विहीन पालिसियाँ व्यर्थ ही नहीं होतीं। वे व्यापार की आवश्यकताओं को बहुत दूर तक पूरा करती हैं और कभी कभी तो उनकी उपा-देयता बहुत अधिक हो जाती है। उदाहरणार्थ कभी कभी ऐसा होता है कि बीमित के लिये बीमा-योग्य हित का प्रमाण देना एक प्रकार से बहुत कठिन होता है। उक्त स्थिति में यह हित विहीन पालिसी उसके लिये अमूल्य सिद्ध होती है क्योंकि यदि वह इस प्रकार की पालिसी नहीं लेता तो भविष्य में हानि होने पर उसे स्वयं ही उसका भार उठाना पड़ेगा। यही कारण है कि कानूनन वर्जित होते हुए भी ये द्यूत पालिसियाँ सर्वत्र प्रचलित है।

क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त (Principle of Indemnity)

समुद्री बीमे का कॉन्ट्रैक्ट साधारणतः एक क्षति पूरक कॉन्ट्रैक्ट होता है। इसके अनुसार बीमक समुद्री अथवा समुद्र सम्बन्धी जोखिमों से बीमित वस्तु को हानि पहुँचने पर उसकी क्षतिपूर्ति का आश्वासन बीमित को देता है। बीमा करने वाला केवल वास्तविक हानि की ही पूर्ति के लिये उत्तरदायी होता है।

इस प्रकार के बीमों का वैधानिक उद्देश्य यथार्थक्षति से बीमित-पक्ष को बचाना होता है। अतः, बीमित जब कभी अपने किसी माल का दोहरा बीमा

(Double Insurance) कराता है तो उसे दोनों बीमकों से केवल वास्तविक क्षति के तुल्य ही क्षतिपूर्ति प्राप्त होगी—इससे अधिक नहीं। यदि किसी व्यक्ति ने 'अ' और 'ब' कम्पनियों से क्रमशः अपने किसी एक ही निश्चित माल का पाँच-पाँच हजार रुपये का बीमा कराया है और यदि माल की कीमत पाँच हजार रुपए ही है तो हानि होने पर बीमित को दोनों कम्पनियों से कुल मिला कर पाँच हजार रुपए ही प्राप्त हो सकेंगे यद्यपि उसने बीमा दस हज़ार रुपये का कराया था। बीमा कम्पनियाँ इस हानि को परस्पर विभक्त कर लेंगी।

यदि सूक्ष्म रूप से सामुद्रिक बीमा को देखा जाय तो प्रतीत होगा कि वह सर्वथा क्षतिपूरक भी नहीं होता क्योंकि कुछ परिस्थितियों में बीमित को वास्तविक हानि से अधिक धन भी प्राप्त हो जाता है। उदाहरणार्थ निर्धारित मूल्य पालिसी (Valued Policy) के सम्बन्ध में हानि होने पर पूर्व निश्चित रकम बीमा कम्पनी को देनी पड़ती है; और यह आवश्यक नहीं होता कि वह रकम हानि के बराबर ही हो, वह उस से अधिक भी हो सकती है क्योंकि उसमें सम्भावित लाभ की कुछ प्रतिशत भी निहित रहती है। इसका तात्पर्य यह है कि हानि होने पर बीमित को केवल वास्तविक क्षति की पूर्ति ही प्राप्त नहीं होगी, अपितु उसे कुछ लाभ भी प्राप्त हो जायगा। पुनः, सामुद्रिक बीमे का कॉन्ट्रैक्ट सभी प्रकार की समुद्र यात्रा सम्बन्धी जोखिमों के लिये नहीं होता; जैसे, बीमक उन जोखिमों का दायित्व कभी धारण नहीं करता जिनका दायित्व सार्वजनिक वाहक होने के नाते जहाज के स्वामी पर होता है।

जीवन बीमा इससे भिन्न श्रेणी का होता है और उसके विषय में क्षतिपूर्ति का प्रश्न भी नहीं उठता क्योंकि किसी के जीवन का मूल्य आँकना असम्भव होता है। इसी कारणवश बीमित अथवा उसके उत्तराधिकारी को सम्पूर्ण बीमित-धन प्राप्त होता है; और बीमित की स्थिति प्राप्त करने का सिद्धान्त (Principle of Subrogation) भी उसमें लागू नहीं होता। किन्तु, यह सिद्धान्त सामुद्रिक बीमों में पूर्ण रूप से प्रयुक्त होता है।

अध्याय १८ का परिशिष्ट

[लायड्स बीमापत्र का नमूना]

BE IT KNOWN THAT

as well in..................... our own Name as for and in the name and names of all and every other person or persons to whom the same doth, may, or sha'l appertain, in part or in all doth make assurance and cause................. and them, and every of them, to be insured, lost or not lost at and from

Seal

....

upon any kinds of goods and merchandises and also upon the body, tackle, apparel, ordnance, munition, artillery, boat, and furniture, of and in the good ship or vessel called the........................

S. G.

whereof is master, under God, for this present voyage.................. ...
or whoseover else shall go for master in the said ship, or by whatsoever other name or names the said ship or the master thereof, is or shall be named or called; beginning the adventure upon the said goods and merchandises from the loading thereof aboard the said ship

upon the said ship etc.

and shall so continue and endure, during her abode there upon the said ship, etc. And further until the said ship, with all her ordnance, tackle, apparel, etc. and goods and merchandises whatsoever shall be arrived at

upon the said ship etc. until she hath moored at anchor twenty-four hours in good safety; and upon the goods and merchandises, until the same be there discharged and safely landed. And it shall be lawful for the said ship, etc. in this voyage to proceed and sail to and stay at any ports or places whatsoever

without prejudice to this insurance. The said ship, etc., goods and merchandises etc., for so much as concerns the assured by agreement between the assured and assurers in this policy, are and shall be valued at

Touching the adventures and perils which we the assurers are contented to bear, and do take upon us in this voyage, they are of the seas, men of war, fire, enemies, pirates. rovers, thieves, jettisons, letters of mart and countermart, surprisals, takings at sea, arrests, restraints, and detainments of all kings, princes, and people, of what nation, condition, or quality soever, barratry of the master and mariner, and of all other perils, losses and misfortunes that have or shall come to the hurt, detriment, or damage of the said goods and merchandises, and ship, etc., or any part thereof, And in case of any loss or misfortune, it shall be lawful to the assured, their factors, servants, and assigns to sue, labour, and travel for, in and about the defence, safeguards, and recovery of the said goods and merchandises and ship, etc., or any part thereof, without prejudice to this insurance; to the charges whereof we the assurers, will contribute each one according to the rate and quantity of his sum herein assured. And it is especially declared and agreed that no acts of the insurer or insured

in recovering, saving, or preserving the property insured shall be considered as a waiver, or acceptance of abandonment. And it is agreed by us, the insurers, that this writing or policy of assurance shall be of as much force and effect as the surest writing or policy of assurance hereto-fore made in Lombard Street, or in the Royal Exchange, or elsewhere in London. And so we, the assurers, are contented, and do hereby promise and bind ourselves each one for his own part, our heirs, executors, and goods to the assured, their executors, administrators, and assigns for the true performance of the promises, confessing ourselves paid the consideration due unto us for this assurance by the assured, at and after the rate of

IN WITNESS whereof, we, the assurers, have subscribed our names and sums assured in London.

N B.—Corn, fish, salt, fruit, flour, and seed are warranted free from average, unless general, or the ship be stranded—sugar, tobacco, hemp, flax, hides, and skins are warranted free from average, under five pounds per cent; and all other goods, also the ship and freight are warranted free from average, under three pounds per cent., unless general, or the ship be stranded.

अध्याय १९

बीमा पालिसी की शर्तें

वैसे तो किसी भी सामुद्रिक बीमक की पालिसी कोई भी रूप धारण कर सकती है, यदि उसमें पालिसी की सब आवश्यक बातें आ जायें तो भी विभिन्न बीमा कम्पनियों तथा आश्वासकों द्वारा दी हुई पालिसियों में कुछ न कुछ भिन्नता रहती ही है। किन्तु वह कुछ विशेष नही होती। इसका कारण यह होता है कि वे सब एक प्रामाणिक पालिसी का आधार लेकर बनाई जाती हैं। साथ ही उनकी रचना में समान नियमों का पालन तथा समान प्रथाओं का अनुसरण भी किया जाता है। उनमें जो शब्द प्रयुक्त होते हैं वे अपने सार्व-जनिक तथा सरल अर्थ ही में लिये जाते हैं। जब तक किसी विशेष व्यापार की प्रचलित प्रथा अथवा अन्य किसी कारण से उक्त प्रकार के अर्थ के स्थान पर उनका विशेष अर्थ नहीं हो जाता, उन्हें किसी विशेष अर्थ में व्यवहार नहीं कर सकते। महत्त्वपूर्ण बातों में ये सब लायड्स पालिसी के अनुरूप होती हैं क्योंकि वही प्रामाणिक तथा आदर्श समझी जाती है। अतः, हम यहाँ पर एक प्रामाणिक लायड्स पालिसी का सूक्ष्म विवेचन करेंगे।

लायड्स बीमा पालिसी की शब्द रचना

इसकी शब्द रचना प्राचीन तथा कुछ विचित्र सी होती है। अनेक बार न्यायालयों ने उसकी तीव्र आलोचना भी की है। लार्ड मैन्सफील्ड (Lord Mans field) के शब्दों में 'बीमे की यह पालिसी एक अत्यन्त विचित्र दस्तावेज

है, जैसा कि हम सब जानते और अनुभव करते है।' निःसन्देह उसका रूप प्राचीन और विलक्षण है, तथापि बीमा क्षेत्र में उसका असीम महत्त्व है। उसके प्राचीन रूप में बीमा संस्थाएँ आज कल की अनेक आवश्यकताओं को स्थान नहीं दे सकतीं। अतः एक पृथक् कागज़ में लिखकर उन्हें पालिसी के साथ जोड़ दिया जाता है। कितनी ही बार उसे परिवर्तित कर देने का प्रश्न उठा; किन्तु व्यापारियों के विरोध के कारण कुछ भी नही किया जा सका। इस विरोध के अनेक कारण है। व्यापारी पालिसी के प्रति आस्था और विश्वास रखते हैं। वे उसके प्राचीन रूप को अत्यन्त शुभ एवं कल्याणकारी समझते है। उसकी शब्द रचना पर न्यायाधीशों के अनेक बार के निर्णयों ने उसके प्रत्येक शब्द का अर्थ स्पष्ट कर दिया है। एक कारण यह भी है कि चूकि यह प्राचीन समय से उपयोग होती आ रही है, अतः, अन्य प्राचीन वस्तुओं के समान आगे भी व्यवहृत होती रहना चाहती है। जब कभी बीमा करने वाले उसे बदलने का प्रयत्न करते है बीमा कराने वालों को उनकी सदाशयता पर अविश्वास होने लगता है। अतएव, वह अभी तक अपने प्राचीन रूप में ही विद्यमान है।

समुद्री पालिसी आज जिस रूप में दीख पड़ती है उसकी रचना सन् १५२३ ई० में हुई थी और लायड्स-संघ ने उस रूप को सन् १७९९ में अपनाया था। तभी से वह ज्यों का त्यों चला आ रहा है। व्यापारियों में इसका विशेष मान होने के कारण सन् १९०६ के अंग्रेज़ी समुद्री बीमा कानून ने भी उसे बदलने का कोई प्रयत्न नही किया। १९वीं शताब्दी के आरम्भ तक तो पालिसी के प्राचीन रूप से ही काम चलता रहा और उसके रूपान्तर की आवश्यक्ता भी प्रतीत नही हुई। किन्तु उसके अनन्तर समुद्री बीमे की रीति-रिवाजों और व्यवहार में इतने परिवर्तन आये कि अपने प्राचीन रूप में समुद्री बीमा पालिसी एक विचित्र दस्तावेज बन गई।

समुद्री बीमा पालिसी की कानूनी आवश्यकताएँ

समुद्री बीमा-कॉन्ट्रेक्ट की शर्तें जिस दस्तावेज में विहित रहती हैं उसे समुद्री बीमा पालिसी कहा जाता हैं। इस बीमा कॉन्ट्रैक्ट का समुद्री बीमा

पालिसी के रूप में होना आवश्यक है। कानूनन मान्य होने के लिये उसे लिखित होना चाहिये। इंगलिश मेरीन इन्श्योरेन्स ऐक्ट ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जब तक सामुद्रिक-बीमापत्र उल्लिखत नही किया जायगा तब तक न्यायालयों की दृष्टि में उसका कोई अस्तित्व नहीं रहेगा। यही बात इण्डियन स्टाम्प एक्ट में भी दी हुई है। इसके अतिरिक्त बीमा करने वाले अथवा करने वालों के हस्ताक्षरों के अतिरिक्त निम्नांकित बातें और अंकित होनी चाहिये :—

(१) बीमित अथवा उसके प्रतिनिधि का नाम जो उसकी ओर से बीमा कराता है।

(२) बीमे का विषय और बीमा की गई जोखिम।

(३) यात्रा का विवरण अथवा जोखिम की अवधि, अथवा दोनों, जैसा भी आवश्यक हो।

(४) बीमित-धन जिसके लिये बीमा कराया गया है।

(५) बीमा करने वालों के नाम।

उपर्युक्त बातों सहित ही कोई बीमा पत्र वैध हो सकता है। किसी प्रामाणिक पालिसी में उनके अतिरिक्त प्रत्येक व्यापार की आवश्यकताओं, सुविधाओं, और रीतिओं से सम्बन्धित बातें भी दी रहती हैं। वे निम्न प्रकार लिखी रहती हैं।

आरम्भिक शब्द (Opening Wards) : सामुद्रिक बीमा पालिसी निम्न प्रकार आरम्भ की जाती है:—

"यह विदित हो कि... ...

(Be it known that..........)

कभी कभी उक्त प्रकार न लिखकर इस से भी पुरातन रूप में आरम्भ करते हैं—

"ईश्वर के नाम पर, एवमस्तु .. ..
(In the name of God Amen.....)

इन शब्दों का वैधानिक दृष्टिकोण से कोई महत्त्व नहीं होता। फिर भी रीति के अनुसार पालिसियां उक्त भाँति ही आरम्भ की जाती हैं।

बीमित का नाम : "यह विदित हो" शब्दों के पश्चात् जो रिक्त स्थान होता है उसमें बीमित अथवा उसकी ओर से बीमा कराने वाले उसके प्रतिनिधि का नाम लिखा जाता है। जब तक इस रिक्त स्थान की पूर्ति नहीं हो जाती तब तक मेरीन इन्श्योरेन्स ऐक्ट की धारा २३ के अनुसार दस्तावेज पालिसी नहीं कहला सकता।

एक अथवा अधिक बीमित व्यक्ति (Person or Persons Assured) : इस विषय में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे सब व्यक्ति जो कानून की दृष्टि में कॉन्ट्रैक्ट करने योग्य होते हैं उपर्युक्त वाक्यांश में सम्मिलित समझे जाते हैं। इसमें "सब के लिये", "सब के नाम" "दूसरे प्रत्येक व्यक्ति", "एक अथवा एक से अधिक व्यक्ति" का भी उल्लेख होता है। इनके द्वारा ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को संरक्षण प्राप्त होता है जिसका पालिसी समाप्त हो जाने पर अथवा उसके चलन के समय में हित होता है।

रक्षित अथवा अरक्षित (Lost or not Lost) : इस वाक्यांश का उद्देश्य उस स्थिति में बीमित की क्षतिपूर्ति कराना होता है जब कि माल जहाज पर होता है और वह अपनी यात्रा प्रारम्भ कर चुका होता है। किन्तु, उस माल का बीमा पहिले से नहीं होता—जहाज रवाना हो जाने के पश्चात् कराया जाता है। ऐसे समय में बीमा कराने के इच्छुक व्यक्ति के लिये यह जानना दुस्साध्य होता है कि वास्तव में उसका माल सुरक्षित है अथवा नष्ट हो गया। यदि बीमित पूर्ण विश्वास के साथ यह समझ कर कि उसका माल जहाज पर है, जब कि वास्तव में वह खो चुका होता है, बीमा करा लेता है तो बीमित को बीमे का रुपया प्राप्त करने का अधिकार होता

है। कुछ विद्वानों की सम्मति है कि उक्त प्रकार की हानिपूर्ति उचित नहीं होती और 'रक्षित अथवा अरक्षित' (Lost or not Lost), वाक्यांश को पालिसी में स्थान नही देना चाहिये। किन्तु अपनी प्रसिद्धि बनाये रखने के लिये सभी बीमा कम्पनियाँ पालिसी में इन शब्दों को लिखती हैं।

यदि कोई व्यक्ति यह जानते हुए भी कि उसका माल नष्ट हो चुका है; बीमक को धोखा देने के उद्देश्य से बीमा करा लेता है, तो इस बात के प्रगट होने पर बीमा कम्पनी पालिसी को तुरन्त रद कर सकती है। इसी प्रकार यदि बीमा कम्पनी को यह ज्ञात हो कि जिस जहाज में माल आ रहा था वह सुरक्षित अवस्था में अपने लक्षित स्थान पर पहुँच चुका है, तो वह उस माल का बीमा नहीं कर सकती। यदि इस बात को छिपा कर वह बीमा कर लेती है तो उसे प्रीमियम बीमित को लौटा देना पड़ेगा।

वर्त्तमान काल में बेतार के तार, समुद्रीतार और रेडियो आदि की सहायता से किसी भी जहाज के विषय में यह ज्ञात किया जा सकता है कि वह किस समय कहाँ पर है और किस दशा में है। अत: "रक्षित है अथवा अर-क्षित" का वाक्यांश उपयोगहीन एवं निस्सार सा प्रतीत होता है। प्राचीन समय में जब यातायात के सुलभ साधन नहीं थे तब बन्दरगाह से रवाना होने के पश्चात् जहाज के विषय में आवश्यकतानुसार कोई सूचना प्राप्त कर सकना एक प्रकार से असम्भव ही होता था। ऐसी अवस्था में माल मँगाने वाला व्यक्ति जहाज के आगमन के पूर्व किसी भी समय अपने माल का बीमा करा सकता था। सारांश यह कि इस वाक्यांश को व्यवहारिक रूप देने के लिये बीमक तथा बीमित का बीमा के विषय में सम्बन्ध में पूर्ण अज्ञान आवश्यक होता है।

यात्रा का विवरण और जोखिम की अवधि (At and from) : यह वाक्यांश "..पर..से.." रूप में होता है। रिक्त स्थानों में बन्दरगाहों के नाम लिखे होते हैं। साथ ही यात्रा का पूर्ण विवरण भी लिखा जाता है।

जोखिम उस स्थान से आरम्भ होती है जहाँ बीमा कराया जाता है और वहाँ समाप्त होती है जहाँ जहाज की यात्रा का अन्त होता है अथवा जहाँ तक के लिये बीमा कराया जाता है ।

यदि बीमा हो गया हो; किन्तु जहाज ने यात्रा आरम्भ न की हो अथवा बीमा हो चुका हो; किन्तु बीमित माल जहाज पर लादने और यात्रा आरम्भ होने के पूर्व ही नष्ट हो जाय तो एक अत्यन्त जटिल स्थिति उत्पन्न हो जाती है । इस स्थिति के सुलझाव के लिये पहले से ही उपाय निश्चित कर लेते हैं । जो हो, दोनों में से किसी एक पक्ष पर उक्त हानि का पूर्ण भार पड़ने से परिस्थिति कुछ सन्तोषजनक नहीं होगी । अतः सुव्यवस्थित व्यवसाय-संचालन के लिये इस विषय में कुछ सुधार किये गये हैं । उनके अनुसार अब वाक्यांश के रिक्त स्थानों में जहाज के रवाना होने के स्थान 'पर' यात्रा के अन्त 'से' की जोखिम लिखी रहती है । इसका परिणाम यह होता है कि बीमा होने के पश्चात् बीमित प्रत्येक अवस्था में सुरक्षित रहता है—चाहे माल जहाज पर लदने के पूर्व ही नष्ट हो जाय । वाक्यांश के रिक्त स्थानों में यह भी लिख सकते हैं :—

"यह जोखिम यात्रा आरम्भ होने के बन्दरगाह के गोदाम से यात्रा समाप्त होने के बन्दरगाह के गोदाम तक के लिये है" अथवा यह जोखिम यात्रा आरम्भ होने के बन्दरगाह के गोदाम से उस समय तक के लिये है जब तक कि उसका मालिक माल को छुडा न ले ।

जहाज का नाम (Name of the ship) : पालिसी में जहाज का नाम लिखना काननन आवश्यक नहीं होता किन्तु परम्परा के अनुसार उसे लिखा जाता है । यह वाक्यांश निम्न प्रकार होता है—

"किसी प्रकार के माल और सामान पर...अच्छे जहाज अथवा... नाम के जहाज में" । 'अच्छे जहाज', का प्रयोग 'जहाज समुद्र यात्रा के योग्य है' की अप्रत्यक्ष साधारण शर्त स्मरण कराने के लिये होता है । इन शब्दों का वाक्यांश में निहित होना निरर्थक-सा है क्योंकि समुद्री बीमे में प्रत्येक अप्रत्यक्ष साधारण शर्त का पालन अनिवार्य होता है ।

एक बार जब जहाज का नाम पालिसी में अंकित कर दिया जाता है, उसे बीमक की अनुमति प्राप्त किये बिना बदला नहीं जा सकता। किन्तु किसी दुर्घटना में फँस जाने पर माल दूसरे जहाज में पहिले जहाज से लाया जा सकता है और इस दूसरे जहाज का नाम बीमक की बिना पूर्वानुमति प्राप्त किये भी पालिसी में लिखाया जा सकता है ।

जहाज के नायक का नाम (Name of the Master) : यह निम्न प्रकार लिखा जाता है—"कथित जहाज में उसका नायक. . . .है ।" वर्त्तमान समय में जहाज के नायक का नाम लिखना साधारणतः आवश्यक नहीं समझा जाता । विशेष रूप में भयपूर्ण यात्राओं में ही उसकी आवश्यक्ता पड़ती है क्योंकि उसके लिये साधारण से अधिक योग्य एवं कुशल नाविक की अपेक्षा होती है ।

यह एक प्रकार की प्रत्यक्ष साधारण शर्त होती है अतः इसका पालन करना अत्यन्त आवश्यक होता है । प्राचीन काल में इसका प्रयोग सदैव किया जाता था क्योंकि उस समय यात्रा-काल में जहाज के आपत्तिग्रस्त हो जाने की सम्भावना कहीं अधिक रहती थी । इसके अन्तर्गत यह व्यवस्था भी रहती है कि यदि जहाज का स्वामी बीमारी अथवा किसी कारणवश जहाज पर न जा सके तो उसके स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति उसका कार्यभार सम्भाल सकेगा ।

स्पर्श और टिकाव (Touch & Stay) : यह वाक्यांश निम्न प्रकार लिखा जाता है :—"जहाज का इस यात्रा में अग्रसर होना तथा यात्रा करना और किसी भी बन्दरगाह या स्थान पर पहुँचना और ठहरना नियमित होगा—प्रस्तुत बीमा के प्रति बिना किसी दुर्भावना के । बीच के रिक्त स्थान में उन बन्दरगाहों के नाम तथा कुछ अन्य बातें लिखी जाती हैं जहाँ जहाज पहुँचने और ठहरने के लिये स्वतन्त्र होता है । उनका उल्लेख जहाज को मार्ग-विचलित होने से बचाने के लिये किया जाता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाज आवश्यकता पड़ने पर किसी भी बन्दरगाह पर लगभग बिना किसी प्रतिबन्ध के जा सकता है ।

तथापि व्यावहारिक रूप में वह इतनी स्वच्छन्दता से कार्य नहीं कर सकता और उसे निम्नांकित तीन नियमों का अनिवार्यतः पालन करना पड़ता है ।

(१) जिन बन्दरगाहों पर जहाज पहुँचता और ठहरता है, उन्हें यात्रा के साधारण मार्ग में स्थित होना चाहिये । यदि वह साधारण अथवा निश्चित न जाकर किसी अन्य मार्ग द्वारा लक्ष्य-स्थान पर पहुँचता है तो उसे स्पष्टतः कुछ ऐसे बन्दरगाहों पर ठहरना पड़ेगा जो यात्रा के साधारण मार्ग में नहीं पड़ते । बीमा कम्पनी इसे सहन नहीं कर सकती ।

(२) जिन बन्दरगाहों पर उसे पहुँचना है उन पर पालिसी में विहित क्रम के अनुसार ही पहुँचना चाहिये । यदि पालिसी में इस क्रम का उल्लेख नहीं किया गया है तो उसे भौगोलिक क्रम के अनुसार वहाँ पहुँचना चाहिये । उदाहरणार्थ लन्दन से स्वेज़ जाने वाले जहाज़ को जिब्राल्टर पर पहुँचने के पूर्व लिस्बन के बन्दरगाह पर पहुँचना चाहिये । यही नियम माल को लादने तथा उतारने के सम्बन्ध में भी लागू होता है ।

(३) बीमा की गई यात्रा में किसी उचित और आवश्यक कार्य के लिये ही उसे किसी बन्दरगाह पर जाना चाहिये ।

(४) इसी प्रकार ऐसे बन्दरगाहों पर ठहरने के पश्चात् बिना अनुचित विलम्ब किये जहाज को पुनः अपनी यात्रा प्रारम्भ कर देनी चाहिये क्योंकि अनावश्यक विलम्ब होने से बीमक का दायित्व समाप्त हो जाता है ।

जहाज का मार्ग-विचलन (Deviation) : जब जहाज अपना साधारण अथवा निश्चित पथ-त्याग कर अन्य मार्ग ग्रहण करता है तो कहा जाता है कि वह मार्ग-विचलित हो गया । जैसे ही जहाज अपने मार्ग से विचलित होता है, बीमक द्वारा धारणा की गई जोखिमों की मात्रा में अन्तर आ जाता । फलतः, वह अपने उत्तरदायित्व से पृथक् हो जाता है ।

अंग्रेज़ी सामुद्रिक बीमा विधान के अनुसार यदि कोई जहाज बिना किसी वैध कारण के पालिसी द्वारा निश्चित मार्ग से विचलित होता है तो बीमा करने

वाला मार्ग-विचलन के समय से अपने उत्तरदायित्व से स्वतन्त्र हो जाता है। पीछे से जहाज चाहे बिना किसी प्रकार की हानि उठाये ही अपने निश्चित मार्ग पर आ जाय, रद हुई पालिसी पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। निम्नांकित अवस्थाओं में जहाज मार्ग से विचलित समझा जाता है :—

(१) पालिसी द्वारा निश्चित मार्ग के त्यागने पर,

(२) यदि कोई निश्चित मार्ग पालिसी में अंकित नहीं है, तो साधारण मार्ग (Customary route) के त्यागने पर।

इस विषय में महत्वपूर्ण बात यह है कि बीमा करने वाला जहाज के पथ-विचलन सम्बन्धी उद्देश्य के आधार पर ही अपने उत्तरदायित्व से छुटकारा नहीं पा सकता अर्थात् वह यह कह कर अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकता कि जहाज उसके द्वारा स्वीकृत मार्ग को त्याग कर अन्य मार्ग ग्रहण करने की इच्छा रखता था। उसे उत्तरदायित्व से मुक्त करने के लिये जहाज का यथार्थ रूप में मार्ग से विचलित होना आवश्यक होता है।

जहाज का ठीक समय पर यात्रा आरम्भ न करना और लक्ष्य स्थान पर न पहुँचना भी मार्ग-विचलन के अन्तर्गत समझे जाते हैं। इसी प्रकार बीमित माल के लादने और उतारने में भी अनुचित विलम्ब नहीं होना चाहिये। किसी भी प्रकार के अनुचित तथा अनियमित विलम्ब—चाहे वह यात्रा आरम्भ करने के विषय में हो या मार्ग में—के कारण हानि होने पर बीमा कम्पनी उसकी पूर्ति के लिये बाध्य नहीं होती।

निम्नांकित परिस्थितियों में जहाज द्वारा मार्ग-विचलन अथवा विलम्ब क्षम्य होता है :—

(१) यदि पालिसी में मार्ग से विचलित (Deviation) होने का अधिकार स्पष्ट रूप से दे दिया गया है; कभी कभी मार्ग से अलग होने का अधिकार पालिसी की शर्तों से ही प्राप्त हो जाता है। यह पालिसी में 'मार्ग-

विचलन अथवा यात्रा परिवर्तन' के वाक्यांश (Change of Voyaye Clause) को जोड़ देने से साधारणतः किया जाता है;

(२) यदि वह किसी ऐसे कारण से होता है जो नायक तथा उसके स्वामी के नियंत्रण से बाहर है; जैसे समुद्री तूफान में फँस कर दूसरे मार्ग पर चला जाना;

(३) यदि वह किसी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष साधारण शर्त (Express or Implied Warranty) की पूर्ति के लिये होता है; उदाहरणार्थ 'जहाज का समुद्र यात्रा योग्य होना' एक अप्रत्यक्ष साधारण शर्त है। इसे पूरा करने के लिये जहाज अपने मार्ग से हट सकता है;

(४) यदि वह जहाज अथवा बीमित विषय की रक्षा के लिये होता है; जैसे, मार्ग में जहाज के बुरी तरह क्षत-विक्षत हो जाने पर;

(५) यदि वह मानव-जीवन अथवा आपत्ति-ग्रस्त जहाज की सहायता के, लिये जिसमें मानव जीवन संकट में होता है, विचलित होता है;

(६) यदि वह जहाज में किसी व्यक्ति के लिये डाक्टरी सहायता (Surgical Aid) प्राप्त करने के उद्देश्य से होता है ;

(७) यदि वह राज-शत्रु, समुद्री डाकुओं, दंगाइयों आदि से आत्म-रक्षा के निमित्त किया जाता है;

(८) यदि वह नाविकों द्वारा चोरी (Barratry) के कारण होता है। ज्योंही मार्ग-विचलन अथवा विलम्ब के क्षंतव्य हेतु का निवारण हो जाय, त्योंही समीचीन सूचना के पश्चात् जहाज को निश्चित मार्ग पर आकर अपनी यात्रा आरम्भ कर देनी चाहिये। यदि ऐसा नहीं होता अर्थात् कारण की समाप्ति के पश्चात् भी वह मार्ग से विचलित रहता है तो पालिसी रद हो जाती है।

मूल्य-निर्धारण (Valuation) : इस वाक्यांश की आवश्यकता निर्धारित-मूल्य पालिसियों में ही पड़ती है । अनिर्धारित-मूल्य-पालिसियों में केवल इतना ही लिखा रहता है, "इसका मूल्य ....निर्धारित होगा।" विषय की क्षति हो जाने पर ही उसका मूल्य आंका जाता है। यथार्थ हानि जानने के लिये यह देखना आवश्यक होता है कि हानि सम्पूर्ण बीमित विषय की हुई है अथवा उसके किसी भाग की ही। अनिर्धारित-मूल्य-पालिसी में जो धन हानि होने पर बीमित को प्राप्त होता है उसे 'बीमा-योग्य मूल्य' (Insurable Value) कहते हैं और उसे निम्न प्रकार ज्ञात किया जाता है :—

(१) माल के बीमे में—माल के वास्तविक मूल्य में जहाज का किराया, अन्य जहाजी व्यय तथा बीमा सम्बन्धी व्यय जोड़ कर ज्ञात किया जाता है ।

(२) किराये के बीमे में—बीमा सम्बन्धी व्ययों सहित वास्तविक किराया ही बीमा-योग्य मूल्य माना जाता है ।

(३) जहाज के बीमे में—जोखिम आरम्भ होने के समय उसके सज्जा, उपकरण, अधिकारियों तथा अन्य कर्मचारियों के भोजन आदि की सामग्री, उनको अग्रिम दिये हुए वेतन अथवा मजदूरी और जहाज को समुद्र यात्रा-योग्य बनाने में मरम्मत के व्ययों सहित जहाज के मूल्य में बीमा सम्बन्धी खर्चों को जोड़ कर निकाला जाता है ।

इस सम्बन्ध में यह जान लेना आवश्यक है कि समुद्री बीमा पालिसी में 'माल' (Goods) शब्द का आशय व्यापारिक माल से होता है। इसमें व्यक्तिगत सम्पत्ति अथवा यात्रा-काल में उपभोग की जाने वाली वस्तुएँ सम्मलित नहीं होतीं । यदि कोई व्यापारिक रीति विद्यमान नहीं है तो 'माल' के अन्तर्गत जीवित पशुओं और जहाज के बारदाने (Deck Cargo) का समुद्री बीमा नहीं हो सकता—उसे विशेष रूप से पृथक् कराना पड़ेगा । संक्षेप में बैंक नोट, हुन्डी, जीवित पशु, सिक्के, बहुमूल्य धातुएँ, जवाहिरात, आभूषण, आदि (यदि वे व्यापार के लिये नहीं हैं) 'माल' शब्द में निहित नहीं समझे जाते ।

जोखिमें (Perils) : इस वाक्यांश में उन जोखिमों का वर्णन रहता है जिनके यात्रा में उपस्थित होने पर, फलस्वरूप क्षति की पूर्ति का उत्तरदायित्व, बीमा करने वाले अपने ऊपर लेते हैं। इसके अन्तर्गत, समुद्र, अग्नि, युद्धरत-व्यक्ति, शत्रु, चोर, डाकू, लुटेरे, जेटीसन, शत्रु-देश के कार्य, नाविकों द्वारा चोरी आदि के कारण होने वाली जोखिमें आती हैं। लायड्स-पालिसी में इन आपत्तियों को इस प्रकार लिखा गया है :—

"........of the seas, men of war, fire, enemies, pirates, rovers, thieves, jettison, letters of mart and Counter-mart, surprisals, taking at sea, arrests, restrains and detainments of all Kings, princes and people, of what nation, condition or quality soever, barratry of the master and mariners, and of all other perils..."

समुद्री जोखिम (Peril of the Sea): इसमें वे सभी जोखिमें सम्मिलित नहीं होतीं, जो समुद्र-यात्रा-काल में उपस्थित हो सकती हैं; केवल वे ही निहित समझी जाती हैं जो समुद्र के कारण उपस्थित होती हैं और साथ ही जो आकस्मिक तथा मानव-नियन्त्रण के परे होती हैं; ‡ यथा, समुद्र के जल, तूफ़ान, जल में अदृश्य चट्टान अथवा भूभाग से टकराने, भूमि पर लग जाने, सागर की प्रबल लहरों इत्यादि से होने वाली हानियों की जोखिमें। किन्तु वायु तथा लहरों के स्वाभाविक कार्यों से उत्पन्न हानि सम्मिलित नहीं होती।*

---

‡ "There must be some casualty, something which could not be foreseen as one of the necessary incidents of the adventure. The purpose of the policy is to secure an indemnity against accidents which *may* happen, not against events which *must* happen"

Lord Hershell:
Wilson vs. Cargo ex-Xantho
(1887)

Lord Hershell ने इसको इस प्रकार स्पष्ट किया है : "I think it clear that the term 'peril of the seas' does not cover every accident or casualty which may happen to the subject matter of insurance on the sea. It must be a peril 'of' the sea".

अग्नि की जोखिम (Fire) : जहाज के नायकों और उसके नाविकों की लापरवाही, विस्फोट, वज्रपात, आदि कारणों से जहाजों पर प्रायः अग्निकांड हो जाया करते हैं। पालिसी में ये जोखिमें सम्मिलित समझी जाती हैं। इसी प्रकार आग बुझाने में उपयोग हुए जल, अग्नि की उष्णता अथवा उसके धूम से हुई हानि के प्रति भी बीमक उत्तरदायी समझा जाता है। किन्तु यदि अग्नि लगने के निमित्त स्वयं बीमित अथवा उसका एजेन्ट ही उत्तरदायी है तो बीमक इस प्रकार की हानि की पूर्ति के लिये उत्तरदायी नहीं होगा। कभी-कभी जान-बूझ कर भी बीमित-वस्तु को क्षार कर देना पड़ता है; जैसे, स्वास्थ्य अधिकारियों की आज्ञा से बीमित-वस्तु में किसी भयानक रोग के कृमि उत्पन्न हो जाने अथवा सड़ कर दुर्गन्ध फलाने पर। इस स्थिति में भी बीमक क्षति-पूर्ति नहीं करेगा। इन जोखिमों से बीमक के विलग रहने का कारण यह ही है कि प्रामाणिक पालिसी में वे अंकित नहीं हैं। किन्तु, अतिरिक्त प्रीमियम देकर इनसे सम्बन्धित वाक्यांश पालिसी में जुड़वाए जा सकते हैं।

युद्ध की जोखिमें (War Risks) इसके अन्तर्गत युद्धकालीन सभी प्रकार की जोखिमें आ जाती हैं; यथा, शत्रु द्वारा जहाज का बन्दी बनाया जाना, उसे रोक रखना इत्यादि।

युद्ध-रत व्यक्ति तथा शत्रु—युद्ध-रत व्यक्तियों में सभी प्रकार के युद्ध-पोत सम्मिलित होते हैं। 'शत्रु', शब्द में शत्रु-देश भी संयुक्त होते हैं।

'प्रतिशोध-पत्र'—सरकार की ओर से कुछ व्यक्तियों को प्रदान किये जाते हैं। उनके प्राप्तकर्त्ताओं को शत्रु द्वारा स्वदेश के जहाजों को पहुँचाई गई क्षति का प्रतिशोध लेने का अधिकार होता है।

प्रतिशोध-विरोध पत्र (Letters of marts and counter-marts) : के प्राप्तकर्त्ताओं को 'प्रतिशोध-पत्र' रखने वाले व्यक्तियों का सामना करन का अधिकार दिया जाता है। युद्ध की जोखिमें पालिसी में इस प्रकार दी जाती है :—

"Men of war, enemies, letters of mart and countermart, surprisals, takings at seas, arrests, restraints and detainments of all kings, princes and people of what nation, condition or quality soever".

समुद्री डाकुओं, चोरों और लुटेरों की जोखिम (Pirates, rovers, thieves) : प्राचीन काल में इस प्रकार की जोखिमें अधिक रहा करती थीं। आजकल इनकी मात्रा बहुत अल्प है। इस सम्बन्ध में 'चोर' शब्द का अर्थ स्पष्ट कर देना उचित तथा आवश्यक प्रतीत होता है। इस शब्द का तात्पर्य साधारण चोर से नहीं, वरन् डकैत से ही होता है। सामुद्रिक बीमे में समुद्री डाकू और चोर में कोई अन्तर नहीं होता।

जेटीसन की जोखिमें (Jettison) : 'आवश्यकता पड़ने पर जहाज को हलका करने अथवा किसी संकट से बचाने के लिये माल, सामग्री, सज्जा, उपकरण आदि को समुद्र में फेंक देना अथवा मस्तूल आदि को काट देना' जेटीसन कहलाता है। पालिसी में इसकी जोखिमें सम्मिलित रहती हैं। किन्तु यदि माल अपने स्वभावगत दोष के कारण ही (जैसे सड़ कर दुर्गन्ध फैलाने के कारण) फेंक दिया जाता है, तो वह जेटीसन के अन्तर्गत नही समझा जाता।

नाविकों द्वारा चोरी की जोखिम (Barratry) : यह पालिसी में सम्मिलित होती है और बीमा करने वाला इसके द्वारा हानि होने पर उसको पूरा करता है।

उक्त तथा उनके सदृश सभी जोखिमें एक समुद्री बीमा पालिसी में आ जाती हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि किसी भी प्रकार की जोखिम, जो समुद्र यात्रा में उपस्थित हो सकती है, पालिसी के अन्तर्गत होती है। इस प्रकार की जोखिम का भार बीमक पर डालने के लिये विशेष रूप से पालिसी में व्यवस्था करानी पड़ती है। उसके लिये बीमक अतिरिक्त प्रीमियम वसूल करने का अधिकारी होता है।

अभियोग तथा व्यय (Sue & labour Clause). बीमा कराने वाले और उसके एजेन्ट का यह कर्त्तव्य होता है कि वह यात्रा में बीमित वस्तु पर

किसी प्रकार का संकट आने पर उसको टालने तथा वस्तु की रक्षा अथवा संभावित हानि को न्यूनतम करने का भरसक प्रयत्न करे। यह कार्य उसी कोटि का होना चाहिये जैसा कि माल के अबीमित होने की दशा में होता। इसमें जो व्यय बीमित को करने पड़ते है उसे बीमा करने वाले चुकाने के लिये वाध्य होते है। किन्तु इन व्ययों को न्यायसंगत और विवेकपूर्ण (reasonable) होना चाहिये। वर्तमान समय में यातायात के सुगम तथा गतिशील साधनों के द्वारा माल के स्वामी को उसके सम्बन्ध में सब प्रकार की सूचनाएँ मिलती रहती है। किसी अनिष्ट की सूचना मिलते ही वह अपने माल की रक्षा के लिये सचेष्ट हो जाता है; किन्तु बीमा कम्पनी इतनी शीघ्र उक्त कार्यवाही नही कर सकती। माल के स्वामी का जहाज पर साधारणतः उपस्थित रहना सम्भव नही होता। अतः इस सम्बन्ध में जहाज का नायक उसका प्रतिनिधि समझा जाता है और माल पर संकट आने पर वही आवश्यक कार्यवाही करता है। यह कार्यवाही पूर्ण ईमानदारी से होनी चाहिये तथा इसकी सूचना माल के स्वामी को शीघ्रातिशीघ्र देनी चाहिये। इसके अतिरिक्त व्यय ऐसे अवसर पर होना चाहिये जब हानि अथवा विपत्ति आ चुकी हो—खतरे के होने के पूर्व किया गया व्यय इसमें शामिल नहीं किया जाता। एक बात यह भी है कि व्यय सामान्यतः सभी विषयों की सुरक्षा के हेतु नही किया जाना चाहिये; इसे किसी विशेष-हित (Particular Interest) के सम्बन्ध में ही होना चाहिये जैसे किसी जहाज को बचाने के लिये अथवा किसी माल को बचाने के लिये। इस प्रकार का व्यय 'विशेष-व्यय' (Particular Charges) कहलाता है।

पालिसी में इस पद की शर्त को इस प्रकार लिखा गया है:

"And in the case of any loss or misfortune it shall be lawful to the assured, their factors, servants and assigns to sue, labour and travel for, in and about the defence, safeguards and recovery of the said goods and merchandise and ship etc. or any part thereof without prejudice to this insurance to the charges whereof we, the assurers will contribute each one according to the rate and quantity of his sum herein assured".

स्वत्व-त्याग (Waiver Clause) : यह वाक्यांश एक प्रकार से उपर्युक्त 'अभियोग तथा व्यय' के वाक्यांश को ही विस्तृत करता है। इसके अनुसार अभियोग तथा व्यय के अन्तर्गत बीमित वस्तु की रक्षा तथा उसकी क्षति को न्यूनतम करने वाले कार्यों को समय पड़ने पर करना बीमित और बीमक दोनों का कर्त्तव्य होता है। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि बीमित के 'परित्याग' (Abandonment) के अधिकार पर, जिसका वर्णन हम आगे चल कर करेंगे, इस वाक्यांश का कोई प्रभाव नही पड़ता। यह वाक्यांश अत्यन्त महत्वपूर्ण है और सभी बीमा पालिसियों में मुख्य स्थान पाता है। यह इस प्रकार लिखा जाता है—'और यह विशेषरूप से घोषित तथा........नही समझा जायगा।'

इस पद का पालिसी में इस प्रकार उल्लेख होता है :—

"And it is specially declared and agreed that no acts of the assurer or assured in covering, saving or preserving the property insured shall be considered as waiver or acceptance cf abandonment".

प्रीमियम (Premium Clause) : इसके द्वारा आश्वासक प्रीमियम की रकम की प्राप्ति स्वीकार करते है। लायड्स की पालिसी में यह स्पष्ट रूप से लिखा होता है कि बीमा होने के पूर्व ही प्रीमियम जमा कर दिया गया है; किन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता। लायड्स-संघ के दलाल बीमा कराते समय नही, उसके कुछ दिन पश्चात् ही प्रीमियम की रकम आश्वासकों को चुकाते है। परन्तु बीमा होने पर सम्पूर्ण प्रीमियम की रसीद बीमा कराने वालों को दे दी जाती है। पीछे से दलाल यदि प्रीमियम आश्वासकों को न दे तो बीमित पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। आश्वासकों को दलाल ही से उसे प्राप्त करने का अधिकार होता है। दलालों को बीमा कराने वाले से प्रीमियम का धन प्राप्त न होने के समय तक पालिसी को रोक रखने तथा न देने पर उसे वसूल करने का अधिकार होता है। यदि बीमित-जोखिम का आरम्भ नही होता तो आश्वासक बीमा कराने वाले को प्रीमियम वापिस लौटा देते है। किन्तु एक बार जोखिम आरम्भ

हो जाने के पश्चात् प्रीमियम नहीं लौटाया जा सकता, चाहे जोखिम अन्त तक चले अथवा बीच में ही समाप्त हो जाय।

स्मरण-पत्र (Memorandum Clause) : यह वाक्यांश विशेष सूचना के रूप में होता है। इसका उद्देश्य छोटी-छोटी हानियों से आश्वासकों की रक्षा करना है। अधिक समय तक टिकने तथा शीघ्र ही नष्ट होने वाली सभी प्रकार की वस्तुओं का बीमा होता है। बीमित-जोखिमो में से कसी न किसी के कारण उक्त वस्तुओं की कुछ न कुछ क्षति भी हो ही जाती है। अनाज, फल, आटा, बीज इत्यादि ऐसे ही शीघ्र नष्ट होने वाले पदार्थ हैं। उनके प्रति बीमक उत्तरदायी तभी होता है जब उनका उल्लेख पालिसी में विशेष रूप से किया गया हो, अथवा जहाज नष्ट हो जाय अथवा स्मरण-पत्र के अन्तर्गत आते हों। इस सम्बन्ध में निम्न लिखित तीन नियम लागू होते हैं :—

(अ) अनाज, मछली, नमक, फल, आटा, और बीज जो शीघ्र ही नष्ट अथवा विकृत हो जाने वाले स्वभाव की वस्तुएँ हैं, उनकी हानि-पूर्ति के लिये आश्वासक तभी उत्तरदायी होगा, जब कि हानि या तो जहाज के भूमि से लग जाने के कारण हुई हो अथवा वह साधारण-आंशिक हो।

(ब) चीनी, तम्बाकू, चमड़ा इत्यादि वस्तुएँ ,जो अधिक शीघ्र नष्ट होने वाले स्वभाव की नहीं होती, उनकी हानि के लिये बीमक तभी उत्तरदायी होगा जब कि वह वस्तु के मूल्य के ५%से अधिक हो।

(स) अन्य सब प्रकार की वस्तुओं (जहाज और उसके किराये सहित) के लिये बीमा करने वाला तीन प्रतिशत से अधिक हानि होने पर ही उसकी पूर्ति करेगा। 'ब', तथा 'स', में भी 'अ' का नियम लागू होता है अर्थात् यदि हानि जहाज भूमि से लग जाने से अथवा साधारण-आंशिक हो, तो ीमा करने वाला हानि-पूर्ति करता है।

यह पद पालिसी ें इस प्रकार उल्लेख किया जाता है :—

N. B "Corn, fish, salt, fruit, flour and seed are warranted free from average, unless general, or the ship be stranded—

sugar, tobacco, hemp, flax, hides and skins are warranted free from average, under five pound per cent and all other goods, also the ship and freight are warranted free from averages under three poun_s per cent unless general or the ship be stranded".

बीमक अथवा बीमकों के हस्ताक्षर और प्रत्येक का दायित्व : इसमें प्रत्येक आश्वासक अपने दायित्व का पूर्ण वर्णन स्पष्ट शब्दों में करके अपने हस्ताक्षर करता है। कुछ विशेष सूचनाएँ तथा विशष-आंशिक हानि का उल्लेख भी इसमें किया जाता है।

अन्य सामुद्रिक जोखिमों और आकस्मिक घटनाओं के वर्णन द्वारा वाक्यांशों की संख्या में वृद्धि की जा सकती है। किन्तु, लायड्स-संघ की पालिसी में लगभग सभी आवश्यक बातें आ जाती है। इसलिये सभी बीमा-व्यवसायी उसी के आधार पर अपनी पालिसियाँ बनाते हैं। आवश्यकतानुसार कतिपय दूसरे वाक्यांश भी जोड़ दिये जाते हैं। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :—

विशेष-आंशिक हानि सहित (W. P. A. or With Particular Average) : इसके अनुसार बीमक प्रत्येक विशेष-आंशिक हानि के लिये, जो पालिसी में अंकित अथवा उसमें निहित या विशेष रूप से जोड़ी हुई जोखिम के कारण होती है, उत्तरदायी होता है। पालिसी में इसके अंकित रहने पर स्मरण-पत्र की शर्तें लागू नही होतीं।

विशेष-आंशिक हानि रहित (F. P. A. or Without Particular Average) : जब यह वाक्याश पालिसी में लिखा रहता है तो बीमक विशेष आंशिक हानि के लिये केवल दो अवस्थाओं में उत्तरदायी होता है : (१) यदि आंशिक हानि 'विशेष-आंशिक हानि' नहीं है, (२) यदि वह आंशिक-हानि जहाज के भूमि से लग जाने, जलमग्न होने अथवा भस्म होने से होती है।

समग्र जोखिमों के निमित्त (A. A. R. or Against All Risks) : पालिसी में सके सम्मिलित रहने पर बीमा करने वाला उन सभी

जोखिमों के लिये उत्तरदायी होता है जिनके विरुद्ध बीमा कराया गया है।

विदेशी साधारण-आंशिक हानि (F. G. A. or Foreign General Average) : इसके अनुसार यदि यात्रा पूर्ण की जाती है तो लक्षित बन्दरगाह और यदि बीच ही में भंग कर दी जाती है तो यात्रा भंग होने के बन्दरगाह, में प्रचलित कानून के आधार पर बनाया गया 'साधारण-आंशिक हानि का विवरण' दोनों पक्षों को मान्य होता है।

प्रत्येक आंशिक हानि रहित (F. A. A. or Free from All Average) : इसके अनुसार बीमक किसी भी आंशिक हानि को पूरा करने के लिये दायी नहीं होता—चाहे वह विशेष-आंशिक हो अथवा साधारण-आंशिक।

टकराने की जोखिम (R. D. or Running Down) : जब कोई पोत किसी अन्य पोत से टकरा जाने का दोषी प्रमाणित होता है तो उसका स्वामी निर्दोष पक्ष के प्रति हानि-पूर्ति के लिये दायी होता है। किन्तु यदि इस जोखिम का उसने बीमा करा लिया है तो बीमक ही यह क्षति-पूर्ति करेगा वह इस क्षति का प्राय: $\frac{3}{4}$ भाग ही देता है और शेष $\frac{1}{4}$ बीमित को स्वयं देना पड़ता है। किन्तु आज कल 'टकराने की जोखिम' वाक्यांश के स्थान पर '$\frac{4}{4}$ टकराने की जोखिम वाक्यांश', (4/4 R. D. C.)को जोड़ देने से बीमक से टकराने से उत्पन्न समस्त हानि भी प्राप्त की जा सकती है। जहाजों के बीमों में बहुधा इस वाक्यांश का प्रयोग होता है। लायड्स की प्रामाणिक पालिसी में इस जोखिम का उल्लेख नही रहता। अत: इसे पृथक् रूप से पालिसी में सम्मिलित कराना पड़ता है।

पालिसी चालू रहने का वाक्यांश (Continuation Clause) : यदि किसी जहाज का बीमा किसी निश्चित अवधि के लिये कराया जाता है और यदि वह उसके व्यतीत हो जाने पर भी अपने लक्ष्य-स्थान पर नहीं पहुँचता, तो

पालिसी समाप्त हो जाती है। इस वाक्यांश के रहने पर अवधि की समाप्ति के पूर्व ही बीमक को पालिसी चालू रहने देने का सन्देश भेज देने से पालिसी का अन्त नहीं होता और वह निश्चित स्थान तक चालू रहती है। इस समय-वृद्धि के लिये बीमक कुछ उचित अतिरिक्त प्रीमियम बीमित से प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

(Sister Ship Clause) कभी-कभी एक ही कम्पनी के दो जहाजों की आपस में समुद्री खतरों द्वारा मुठभेड़ हो जाती है। ऐसी दशा में यदि एक मुठभेड़ के लिये जिम्मेदार ठहराया जाय तो दावे का निपटारा आपस में ही कर लेते हैं। इसका अर्थ यह होता है कि ऐसी स्थिति में पंचायत (Arbitrations) द्वारा दावे का निपटारा होता है।

उपर्युक्त वाक्यांशों के अतिरिक्त कभी-कभी 'अधिकृत तथा बन्दी हो जाने की जोखिम से रहित' (F. C. S. or Free of Capture and Seizure) 'हड़तालों, दंगों ओर नागरिक उपद्रवों की जोखिम से रहित' आदि वाक्यांश भी आवश्यकता होने पर जोड़ दिये जाते हैं।

अध्याय २०

सामुद्रिक हानियाँ
(Marine Losses)

समुद्र-मार्ग द्वारा माल भेजने पर यदि कभी किसी व्यक्ति को किसी प्रकार की हानि होती है, तो उसे या तो जहाजी कम्पनी जहाजी बिल्टी (Bill of lading) अथवा जहाजी समझौते (Charter Party) की शर्तों के अनुसार सहन करती है अथवा बीमा कम्पनी पालिसी की शर्तों के अनुसार उसे उठाती है। यदि वह हानि न तो जहाजी बिल्टी के अन्तर्गत आती है और न समुद्री बीमा पालिसी के, तो उसे माल का स्वामी स्वयं ही सहन करता है।

सामुद्रिक हानियाँ दो प्रकार की होती है :—

(१) पूर्ण हानि (Total Loss)

(२) आंशिक हानि (Partial Loss)

यदि कोई व्यक्ति केवल पूर्ण हानि के हेतु ही बीमा कराता है तो उसे आंशिक हानि होने पर क्षति-पूर्ति का कोई भाग प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार यदि केवल आंशिक हानि का ही उसने बीमा कराया है तो पूर्ण हानि होने पर उसे क्षति-पूर्ति में कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। बीमा कम्पनी केवल पालिसी की शर्तों के अनुसार ही क्षति-पूर्ति करती है। अतः बीमा कराने वाले के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि बीमा कराते समय वह पूर्ण तथा आंशिक दोनों ही प्रकार की हानियों के विरुद्ध बीमा कराये। यदि ऐसा होता है तो बीमक किसी भी प्रकार की हानि होने पर उसकी पूर्ति के लिये बाध्य होगा।

जब पालिसी दोनों प्रकार की हानियों, के लिये ली जाती है तो कभी-कभी ऐसा होता है कि आंशिक हानि के होने के कुछ समय पश्चात् उसी वस्तु पर 'पूण हानि' भी हो जाती है। ऐसी स्थिति कभी-कभी बड़ी अड़चन पेश करती है। अतः यदि आंशिक-हानि का दावा बीमित कर चुका हो किन्तु बीमक द्वारा उसका भुगतान होने के पूर्व ही पुनः उसी वस्तु पर 'पूर्ण-हानि' का दावा किया जाय, तो इसको कैसे सुलझाया जाय ? वैधानिक नियमानुसार ऐसी स्थिति में बीमक केवल पूर्ण-हानि की ही पूर्ति कर सकता है। क्योंकि यदि उसी वस्तु पर आंशिक एवं पूर्ण दोनों दावों का भुगतान किया जाय तो बीमित को कुल मिला कर 'वास्तविक हानि' से अधिक धन प्राप्त हो जायगा, जो 'क्षति-पूर्ति-सिद्धान्त' के सर्वथा विरुद्ध है। किन्तु हेनरी कीट के अनुसार 'जहाजी-बीमे' में यदि किसी बीमक ने अवधि समाप्त हो चुकने पर भी जहाज की आंशिक हानि पर किये गये दावे का भुगतान न किया हो और इसी बीच दूसरी पालिसी की अवधि के अन्तर्गत दूसरे बीमक के ऊपर पूर्ण-हानि का दावा किया जाय तो बीमित प्रथम पालिसी पर प्रथम बीमक से आंशिक-हानि और दूसरी पालिसी पर दूसरे बीमक से पूर्ण-हानि की पूर्ति करा सकता है।‡

अब हम 'पूर्ण हानि' और 'आंशिक हानि' का सविस्तार वर्णन करेंगे।

पूर्ण-हानि

सम्पूर्ण बीमित वस्तु का नाश हो जाने पर कहा जाता है कि उसकी पूर्ण हानि हो गई। वह दो प्रकार की होती है :—

(१) वास्तविक पूर्ण हानि (Actual total loss)

(२) अवास्तविक पूर्ण हानि (Constructive total loss)

वास्तविक पूर्ण हानि : उस समय होती है, जब कि बीमे के विषय अर्थात् बीमित वस्तु का अस्तित्व नष्ट हो जाता है या वह इस प्रकार क्षत हो जाती है कि उस भाँति की दीख नहीं पड़ती जिसका बीमा कराया गया था, अथवा स्पष्टतः

‡Henry Keate : Guide to Marine Insurance, p. 117.

उसका स्वामी उससे वंचित हो जाता है।† उदाहरणार्थ जब कोई जलयान समुद्र में डूब जाता है अथवा बहुत समय तक अंतर्हित रहने के पश्चात् भी उसका कोई समाचार प्राप्त नहीं होता और लायड्स-संघ की ओर से उसे खोया हुआ घोषित कर दिया जाता है, तब वास्तविक पूर्ण हानि समझी जाती है। उस समय बीमा कम्पनियों के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वे अपने-अपने बीमा सम्बन्धी दायित्वो का भुगतान करें। इसी प्रकार जब बीमा कराई हुई किसी प्रकार की जोखिम से माल पूर्णतः नष्ट हो जाता है, उसका रूपान्तर हो जाता है, वह बीमित के लिये प्रयोजनहीन अथवा उपयोगरहित हो जाता है, उसे पुनः प्राप्त कर सकना सर्वथा असम्भव दीख पड़ता है, अथवा ऐसी कोई अन्य बात हो जाती है तब भी वास्तविक-पूर्ण हानि मानी जायगी।

वास्तविक-पूर्ण-हानि के अनेक उदाहरण हैं। यदि पालिसी में संवृत्त किसी जोखिम से तूफान में जहाज डूब जाय या अग्नि द्वारा जहाज अथवा माल भस्म हो जाय या टक्कर द्वारा जहाज जलमग्न हो जाय तो वास्तविक-पूर्ण-हानि का दावा होता है। इसी प्रकार यदि जहाज के गंतव्य स्थान तक न पहुँचने के कारण अथवा माल के सड़ जाने या नष्ट हो जाने से मध्यवर्ती बन्दरगाह पर बेच दिये जाने के कारण यदि किराया (Freight) पूर्णतया नष्ट हो जाता है तो ऐसी दशा में भी वास्तविक पूर्ण-हानि होगी। कभी-कभी जहाज अथवा माल सामुद्रिक खतरों द्वारा इस प्रकार क्षति-ग्रस्त हो जाता है कि उसका मूलरूप ही परिवर्तित हो जाता है (ceases to be a thing of the kind insured)। जैसे, चमड़ा पानी में भीग कर इस ढंग का हो जाय कि उसे चमड़े के रूप में प्रयोग न किया जा सके, या मांस सड़ कर खाद हो जाय, अथवा जहाज चट्टान से टकरा कर चूर-चूर हो जाय और केवल उसका लोहा, लकड़ी शेष रह जाय, अथवा

---

† मेरीन इन्श्योरेन्स ऐक्ट धारा ५७ (१) वास्तविक-पूर्ण-हानि' को इस प्रकार स्पष्ट करता है :—

"When the subject matter-insured is destroyed, or so damaged as to cease to be a thing of the kind insured, or where the assured is irretrievably deprieved thereof"

चीनी का रूप समुद्री जल से बदल जाय या तम्बाकू किसी दुर्गन्धयुक्त पदार्थ के प्रभाव से नष्ट हो जाय—इन सभी अवस्थाओं में पूर्णहानि का दावा हो सकताहै ।*

कभी-कभी बीमित 'बीमित-वस्तु' से असाध्य रूप से वंचित हो जाता है, ऐसी दशा में भी पूर्ण हानि होती है । जैसे जहाज शत्रु के हाथों में आ जाय और समुद्र की लहर के चपेट में पड़ कर कहीं दूर किनारे पर जमीन पर आ लगे और उसे पुन: जहाज के रूप में प्रयोग करना सम्भव न हो ।

अवास्तविक-पूर्ण हानि (Constructive otal loss) : इसमें वास्तविक-पूर्ण हानि के समान वस्तु नष्ट नहीं हो जाती—वह विद्यमान रहती है । किन्तु वह इस प्रकार से क्षत हो जाती है कि उसकी मरम्मत कराकर उसे वास्तविक-पूर्ण हानि से सुरक्षित रखने का व्यय उसके मूल्य के बराबर अथवा उससे अधिक होता है । कोई भी कुशल तथा चतुर व्यापारी ऐसा व्यय उठाने के लिये तत्पर नहीं होगा क्योंकि वह सोचेगा कि इतने में तो वह नवीन वस्तु प्राप्त कर सकता ।‡

यदि कोई जहाज किसी चट्टान से टकरा कर इस प्रकार क्षत-विक्षत हो जाय कि उसकी मरम्मत का व्यय उसके मूल्य से अधिक हो, तो इसे 'अवास्तविक-पूर्ण-हानि' कहेंगे । एक दूसरा उदाहरण लीजिए । किसी जहाज को शत्रु ने बन्दी कर लिया है और भविष्य में उसके वापस मिल जाने की आशा है । किन्तु उसे पुन: प्राप्त करने और मरम्मत कराने का व्यय उसके मूल्य से अधिक आँका जाता है । यह भी अवास्तविक-पूर्ण-हानि का उदाहरण है ।

---

*दे० Henry Keate : Guide to Marine Insurance, pp. 55—58.

‡मेरीन इन्श्योरेन्स ऐक्ट धारा ६० (१) में 'अवास्तविक-पूर्ण-हानि' की परिभाषा इस प्रकार दी है:

"There is a constructive total loss, where the Subjet-matter insured is reasonably abandoned on account of its actual total loss appearing to be unavoidable or because it could not be preserved from actual loss without an expenditure which would exceed its value when the expenditure had been incurred."

वास्तविक-पूर्ण-हानि तथा अवास्तविक-पूर्ण-हानि का अन्तर उपर्युक्त कथन से स्पष्ट हो गया होगा। यहाँ पर एक उदाहरण और लेते हैं। यदि तम्बाकू सामुद्रिक आपत्तियों के कारण इतनी नष्ट हो जाय कि उसका मूल रूप ही बदल जाय और वह तम्बाकू के रूप में न बेची जा सके तो इस हानि को 'वास्तविक-पूर्ण-हानि' कहेंगे। परन्तु यदि उसी तम्बाकू को पुनः कुछ व्यय कर के किसी साधन से तम्बाकू के रूप में लाया जा सके और ऐसा करने में यदि व्यय इतना अधिक हो कि तम्बाकू को बेच देने पर भी वसूल न किया जा सके तो इस हानि को 'अवास्तविक-पूर्ण-हानि' कहेंगे। ऐसी दशा में तम्बाकू को स्थूल रूप में पाना सम्भव है परन्तु व्यवसायिक दृष्टिकोण से इतने अधिक व्यय पर ऐसा करना उचित नहीं।‡

परित्याग (Abandonment)

जब अवास्तविक-पूर्ण-हानि होती है और बीमित माल के बुरी तरह क्षत हो जाने के फलस्वरूप प्रयोजनहीन हो जाने के कारण उसे त्याग देना चाहते हैं तो वह बीमक को उस माल के 'परित्याग' की सूचना' देता है।†। इस सूचना का अर्थ यह होता है कि उसने बीमित माल को अपने स्वामित्व से मुक्त कर दिया है। परित्याग के पश्चात् यदि उस वस्तु से किसी प्रकार की आय होती है तो बीमा करने वाला उसको प्राप्त करने का अधिकारी होगा। लार्ड एबिन्जर (Lord

‡. The distinction between actual total loss and constructive total loss has been well defined as the difference between physical impossibility and mercantile impossibility"—Keate: Guide to Marine Insurance p. 60

†मेरीन इन्श्योरेन्स ऐक्ट धारा ६१ में यह इस प्रकार स्पष्ट किया गया है:

"Where there is a constructive total loss the assured may either treat the loss as a partial loss, or abandon the subject-matter insured to the insurer and treat the loss as if it were an actual total loss".

Abinger) के अनुसार बीमा करने वाले का हित इसी बात में होता है कि उसके द्वारा बीमित वस्तु सुरक्षित रूप में अपने लक्ष्य स्थान पर पहुँच जाय । किन्तु यदि यात्रा में वह वस्तु पूर्वत: नष्ट हो जाय अथवा समुद्री जोखिमों से इस अवस्था को प्राप्त हो जाय कि उसका अपने निश्चित स्थान पर सुरक्षित अवस्था में पहुँचना असम्भव हो जाय तो बीमा करने वाला बीमा-कॉन्ट्रैक्ट की शर्तों के अनुसार बीमित धन चुकाने के लिये बाध्य होता है। उदाहरण के लिये पोत का शत्रु द्वारा अधिकृत अथवा बन्दी कर लिये जाने या बलपूर्वक रोके जाने पर, माल सहित अपने लक्ष्य-स्थान पर पहुँचना, स्पष्टत: असम्भव हो जाता है। इसी भाँति अन्य जोखिमें हो सकती हैं, जिनके कारण जहाज अथवा माल पूर्णत: अथवा अंशत: नष्ट हो सकता है या इस अवस्था को प्राप्त हो सकता है कि उसकी पुनर्प्राप्ति का व्यय इतना अधिक हो कि उसे न लाना ही उत्तम प्रतीत होने लगे।

'परित्याग की सूचना' देने का नियम यह है कि यदि वस्तु किसी अंश में विद्यमान है और उसके प्राप्त होने की कोई आशा है तो 'परित्याग की सूचना' बीमक को अवश्यमेव प्राप्त होनी चाहिये। किन्तु यदि इस बात का कोई निश्चित प्रमाण न हो कि माल नष्ट होते समय किसी अंश में अवशिष्ट रह गया था, यदि सूचना प्राप्त करने का अधिकार बीमक ने छोड़ दिया हो, यदि उसने अपनी जोखिम का पुनर्बीमा करा लिया है, यदि सूचना प्राप्त करने से उसे किसी प्रकार का लाभ पहुँचने की सम्भावना न हो, अथवा जब माल पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है और उसकी मरम्मत की तनिक भी सम्भावना न हो तो उक्त सूचना देना आवश्यक नहीं होता। जब कभी सूचना देना आवश्यक हो, उसे पूर्णत: शर्तरहित (Unconditional) और स्पष्ट होना चाहिये।‡ साथ ही यह भी अपेक्षित होता है कि दुर्घटना सम्बन्धी समाचार प्राप्त होने पर यथासम्भव शीघ्र ही उसे भेज दिया जाय।

‡ "The notice of abandonment must be direct and express and I think the word abandon should be used to make it effectual"

—Lord Ellenborough: Parmater vs. Todhunter (1836)

पूर्ण हानि का दावा करने की विधि (Procedure of making a claim for total loss) : बीमित को पूर्ण हानि का दावा करते हुए निम्नलिखित पत्रों सहित एक आवेदन-पत्र बीमक के पास भेजना चाहिये :—

परित्याग की सूचना (Notice of Abandonment) : इसे अवास्तविक-पूर्ण-हानि के सम्बन्ध में ही भेजना अपेक्षित होता है। यदि यह उचित समय के भीतर अथवा सर्वथा नही भेजा जाता तो बीमित केवल आंशिक-हानि-पूर्ति का अधिकारी होगा, पूर्ण-हानि-पूर्ति का नहीं। यदि बीमा करने वाला इस सूचना-पत्र को स्वीकार करता है तो यह समझना चाहिये कि वह क्षति-पूर्ति करने के लिये प्रस्तुत है; इससे विपरीत अवस्था का आशय यह होता है कि वह दावे का भुगतान नही करना चाहता। और तब बीमित न्यायालय में अभियोग चलाकर ही अपने दावे का धन वसूल कर सकता है।

विरोध (Protest) : हानि प्रमाणित करने के लिये इसे भेजना अति आवश्यक होता है। इसमें दुर्घटना तथा हानि का उल्लेख किया जाता है और जहाज के नायक तथा एक-दो अधिकारियों के हस्ताक्षर भी होते हैं। ये हस्ताक्षर एक सरकारी विरोध-लेखक (Notary Public) की उपस्थिति में होना आवश्यक हैं। वह इन हस्ताक्षरों की साक्षी करता है।

बीजक (Invoice) : दावे के आवेदन-पत्र के साथ-साथ माल का बीजक भी भेजना चाहिये। माल का वास्तविक मूल्य और उससे सम्बन्धित व्यय जानने के लिये यह परमावश्यक होता है।

जहाज़ी बिल्टी (Bill of Lading) : इसे भेजना इसलिये आवश्यक होता है कि यह जहाज पर माल का लादा जाना प्रमाणित करती है।

बीमा-पत्र (Insurance Policy) : इसे भेजने का कारण यह है कि यह बीमक को उसके दायित्व का स्मरण कराता है।

उपर्युक्त पत्रों के साथ में 'बीमित की स्थिति-प्राप्ति का पत्र' (Letter of Subrogation) भेजना भी वांछनीय होता है यद्यपि अनिवार्य नहीं।

बीमित की स्थिति-प्राप्ति

इस सिद्धान्त का उपयोग सामुद्रिक, अग्नि तथा अन्य क्षति पूरक बीमों में ही होता है—जीवन बीमा में नहीं। जब किसी क्षति पूरक बीमे की शर्तों के अनुसार बीमक, बीमित की क्षति-पूर्ति कर देता है तब उन सभी अधिकारों का स्वामी बन जाता है जो बीमित को किसी अन्य व्यक्ति के विरुद्ध वस्तु की अबीमित अवस्था में प्राप्त होते। इस नियम का उद्देश्य यही है कि बीमित, बीमक तथा अन्य पक्ष दोनों से एक ही वस्तु की क्षति-पूर्ति न करा सके। एक उदाहरण के द्वारा इसे सरलता पूर्वक समझा जा सकता है। कल्पना कीजिए कि किसी 'अ' का बीमा दस हजार रुपये का कराया गया था। वह समुद्र यात्रा करते समय किसी अन्य जहाज 'ब' से टकरा कर नष्ट हो गया। 'अ' जहाज के स्वामी की क्षति-पूर्ति करने के पश्चात् उक्त नियमानुसार बीमक को 'ब' जहाज के मालिक से अपनी क्षति-पूर्ति कराने का अधिकार होगा, यदि बीमित-पोत उसके जहाज की गलती से टकरा कर नष्ट हुआ है। यह भी सम्भव है कि बीमक को दावे में चुकाई गई रकम से अधिक अन्त में प्राप्त हो जाय। इस दशा में वह सम्पूर्ण प्राप्त-धन का अधिकारी होता है। मान लीजिये कि किसी आश्वासक को किसी जहाज के लायड्स-संघ द्वारा 'खोये हुये' घोषित किये जाने के फलस्वरूप १०,०००) बीमित को क्षति-पूर्ति में देने पड़ते है। यदि इसके अनन्तर जहाज़ निश्चित बन्दरगाह पर सुरक्षित पहुँच जाता है अथवा बीमक किसी प्रकार प्राप्त कर लेता है और उसे वेचने पर उसे चौदह हजार रुपये मिलते है, तो वह पूरा विक्रय-धन रख सकता है। इस ४,०००) की अतिरिक्त रकम पर बीमित कोई दावा नहीं कर सकता।

निकटतम कारण

(Causa Proxima or Proximate Cause)

समुद्री बीमा के क्षेत्र में यह सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अपने पूर्ण रूप में यह इस प्रकार लिखा जाता है—Causa Proxima non-remota spectatur.

अर्थात् हानि होने पर उसके निकटतम कारण को देखना चाहिये न कि उसके सुदूर कारण को। प्रायः ऐसा होता है कि किसी हानि के एक से अधिक कारण होते हैं। उस अवस्था में यह निश्चय करना बड़ा कठिन होता है कि वास्तव में हानि का कारण क्या है। अतः, उसका निर्णय करते समय उसके सर्वाधिक निकट कारण को ही देखा जाता है। दूसरे शब्दों में यह निश्चय किया जाता है कि उस हानि में सबसे अधिक योग किस कारण का है। उसका निश्चय होने पर, यदि उसके विरुद्ध बीमा कराया गया है और उसके उत्पन्न होने में बीमित का कोई हाथ नही है, तो बीमा करने वाला हानि को पूरा करने के लिये बाध्य होगा।‡ उदाहरण के लिये मान लीजिए कि किसी माल का समुद्र यात्रा में अग्नि की जोखिम के विरुद्ध बीमा कराया गया है। यदि किसी विस्फोटक पदार्थ के द्वारा आग लग जाने से माल जल जाता है, तो इस दशा में बीमा करने वाला क्षति-पूर्ति के लिये उत्तरदायी होगा क्योंकि उसका निकटतम कारण अग्नि है न कि विस्फोटक पदार्थ। वह तो कवल एक निमित्त मात्र है। बीमा करने वाला यह नहीं कह सकता कि आग विस्फोटक पदार्थ से लगी है जिसकी जोखिम का बीमा नही कराया गया था। एक दूसरा उदाहरण और लीजिए। किसी जहाज में चमड़े और तम्बाकू की कुछ गाँठें जा रही थीं। किसी प्रकार समुद्र का जल उस स्थान पर पहुँच गया जहाँ पर चमड़ा रखा हुआ था। इसके

---

‡ "Where two or more causes are in operation and the effective cause is a risk covered by the policy, underwriters are liable"—Keate:

Guide to Marine Insurance p. 70.

"Unless the policy otherwise provides, the insurer is liable for any loss proximately caused by a peril insured against but he is not liable for any loss which is not proximately caused by a peril insured against".—

दे० मेरीन इन्स्योरेन्स ऐक्ट धारा ५५,

* दे० Keate: Guide to Marine Insurance p. 52.

परिणाम-स्वरूप चमडा सड़ने लगा और उसकी दुर्गन्ध से तम्बाकू खराब हो गई। तम्बाकू का बीमा समुद्र-जल की जोखिम के विरुद्ध है। इस विषय में यह कहा जायगा कि तम्बाकू की क्षति समुद्र-जल से ही हुई है क्योंकि उसके द्वारा चमड़ा सड़ा और उसकी दुर्गन्ध ने तम्बाकू नष्ट कर दी। इस सम्बन्ध में यह जानना भी आवश्यक है कि बीमा करने वाला किसी अप्रत्यक्ष, परिणाम स्वरूप या सुदूर कारण से हुई हानि के लिये उत्तरदायी नही होता। यदि किसी माल का बीमा किसी जोखिम के विरुद्ध कराए जाने पर उसकी हानि हो जाय तो बीमा करने वाला केवल उसी हानि की पूर्ति करेगा। वह उस माल के द्वारा प्राप्त होने वाले लाभ अथवा उसके विक्रय-कॉन्ट्रैक्ट को पूरा न कर सकने के लिये दी हुई क्षति-पूर्ति के लिये उत्तरदायी नही होगा।

अप्राप्त क्षति-पूर्ति
(Unrepaired Damage)

इस सम्बन्ध में कानून का नियम यह है कि "यदि किसी पालिसी के अन्तर्गत कोई आंशिक हानि होती है और उसके पूर्ण किये जाने के पूर्व ही कोई पूर्ण हानि भी हो जाती है तो बीमित केवल पूर्ण हानि को प्राप्त कर सकता है।"

"किन्तु यदि कोई जहाज क्षति-ग्रस्त हो जाता है और उस क्षति की पूर्ति उसकी यात्रा अथवा अवधि-पालिसी के अन्त होने के पूर्व ही नहीं की जाती तथा उस जहाज पर ली हुई दूसरी पालिसी के चालू रहने के समय में पूर्ण हानि भी हो जाती है तो बीमित को दूसरे आश्वासकों से पूर्ण तथा पहले आश्वासकों से आंशिक क्षति-पूर्ति प्राप्त करने का अधिकार होता है।"

अध्याय २१

सामुद्रिक हानियाँ

[क्रमशः]

विगत अध्याय में हम 'पूर्ण हानि का' वर्णन कर चुके हैं; अब आंशिक हानि पर प्रकाश डालेंगे। अंग्रेज़ी में इसे 'एवरेज लास' (Average Loss) कहते हैं। आंशिक, हानि-पूर्ण हानि से विपरीत होती है। जब सम्पूर्ण बीमित-वस्तु सर्वथा क्षति-ग्रस्त अथवा नष्ट नहीं होती, तब कहा जाता है कि उसकी 'आंशिक हानि' हुई है। यह चार प्रकार की हो सकती है :—

(१) विशेष-आंशिक हानि।

(२) साधारण-आंशिक हानि।

(३) विशेष व्यय।

(४) रक्षा-पुरस्कार।

विशेष-आंशिक हानि : यह किसी बीमित जोखिम के द्वारा बीमित-वस्तु की वह आंशिक हानि होती है जो साधारण-आंशिक हानि नही होती। अतः कहा जा सकता है कि यह किसी बीमित-जोखिम द्वारा हुई किसी विशेष हित का आंशिक क्षय है। उदाहरणार्थ, यदि माल की, जहाज आदि के किसी भाग की किसी बीमा की हुई जोखिम (चट्टान से टकराने, अग्नि इत्यादि) से समुद्र में क्षति हो जाय

तो उसे विशेष-आंशिक हानि कहेंगे। इसकी निम्न लिखित विशेषताएँ होती हैं :—‡

(अ) यह आंशिक होती है।

(ब) यह किसी विशेष स्वार्थ की ही क्षति होती है।

(स) यह किसी आकस्मिक दुर्घटना—तूफान, अग्नि आदि के कारण ही होती है।

(द) यह बीमा की हुई किसी निकटतम जोखिम का ही परिणाम होती है।

(प) यह बीमा कॉन्ट्रैक्ट के सभी पक्षों के हित में नहीं होती, जैसी कि साधारण-आंशिक-हानि होती है।

(र) इसका भार पूर्णतः बीमक अथवा बीमित पर पड़ता है—इसे बाँटा नहीं जा सकता।

प्रायः माल के किसी भाग की 'पूर्ण हानि' तथा विशेष-आंशिक हानि में समानता-सी लक्षित होती है और इसके कारण कभी-कभी बड़ी उलझनें उत्पन्न हो जाती है। इन दोनों में वास्तविक अन्तर निम्नांकित होता है।

जब बीमा की हुई वस्तुएँ एक ही प्रकार, श्रेणी और नमूने की होती है और उनका मूल्य पालिसी में पृथक्-पृथक् न लिखकर सम्मिलित रूप ही में अंकित होता है, तब बीमित-विषय (Subject matter) के किसी भाग की क्षति 'विशेष-आंशिक हानि' समझनी चाहिये। इसी प्रकार जब वे विभिन्न प्रकार, श्रेणी

---

‡विशेष-आंशिक हानि का उल्लेख मेरीन इन्श्योरेन्स ऐक्ट धारा ६४ में इस प्रकार है : "It is a partial loss of the subject matter insured, caused by a peril insured against and which is not a general average loss".

दे० William Gow: Marine Insurance p. 195.

"Particular average is the liability attaching to a Marine Insurance policy in respect of damage or partial loss accidentaly and immediately caused by some of the perils insured against to some particular interest (as the ship alone or the cargo alone) which has arrived at the destination of the venture".

और नमूने की होती हैं और उनका मूल्य पालिसी में सम्मिलित न लिख कर पृथक्-पृथक् लिखा जाता है, तब विभाजनीय बीमित विषय के किसी भाग की क्षति 'पूर्ण हानि' कही जाती है।

जहाज की विशेष-आंशिक हानि (Particular Average on Ship) : जहाज के क्षति-ग्रस्त होने पर जब बीमित उसकी मरम्मत कराता है, तब वह उसका व्यय बीमक से माँग सकता है। ऐसे अवसर पर 'प्राचीन के लिये नवीन' वस्तु का नियम लागू होता है। इस नियम का आशय यह है कि जब पुरानी जीर्ण-शीर्ण वस्तु के स्थान पर नवीन वस्तु दी जाय तो उसके परिमाण में कुछ कमी होनी चाहिये। दूसरे शब्दों में पुरानी वस्तु से नवीन वस्तु का मूल्य अधिक होगा। यदि पुरानी वस्तु के स्थान पर उसी श्रेणी और प्रकार की नूतन वस्तु दी जाती है तो वास्तविक हानि से अधिक हर्जाना बीमित को प्राप्त हो जायगा। किन्तु यह क्षति-पूर्ति के सिद्धान्त के विपरीत होगा। अतः उसके पालन के लिये यह आवश्यक है कि यदि नवीन वस्तु दी जाय तो उसका मूल्य अपेक्षाकृत अल्प हो जिससे वह विनष्ट पुरानी वस्तु के मूल्य से अधिक न हो। उदाहरण के लिये यदि किसी जहाज का कोई भाग नष्ट-भ्रष्ट हो गया है तो उसकी मरम्मत में नवीन सामग्री का उपयोग इस प्रकार किया जाय कि उसका मूल्य नष्ट वस्तु के मूल्य से अधिक न हो। यदि मरम्मत में अधिक श्रम और अल्प सामग्री की आवश्यकता पड़ती है तो पुरानी के स्थान पर नई सामग्री का व्यय कुछ कम कर देना अपेक्षित होगा। किन्तु जब श्रम और सामग्री दोनों ही समान मात्रा में वांछनीय होंगे, तब उनकी मात्रा में कमी नहीं लाई जा सकती। जहाज की मरम्मत के बाद पुराना माल बेचकर जो धन प्राप्त होगा उसे क्षति-पूर्ति में प्राप्य धन में से घटा दिया जाता है। क्षति-पूर्ति का माप मरम्मत का उचित व्यय होता है। यदि ध्वंस जहाज बिना मरम्मत कराये ही बेच दिया जाय तो भी बीमित मरम्मत का व्यय प्राप्त करने का अधिकारी होता है क्योंकि उस दशा में जहाज का वह मूल्य प्राप्त नहीं हो सकता जो उसके अच्छी अवस्था में होने से प्राप्त होता।

जैसा भी हो, संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि बीमित वस्तु के नष्ट-भ्रष्ट भाग की मरम्मत का व्यय बीमक से वसूल किया जा सकता है। किन्तु वह बीमित मूल्य से न तो अधिक हो और न उसके ३ प्रतिशत से कम। साथ ही यह भी आवश्यक है कि वह उचित तथा विवेकपूर्ण हो।

माल की विशेष-आंशिक हानि (Particular Average on Cargo) : जब माल की आंशिक क्षति हो जाती है तब लक्षित बन्दरगाह पर पहुंचने के पश्चात् किसी कुशल परीक्षक द्वारा उसकी जाँच-पड़ताल कराई जाती है। परीक्षा करके वह माल की हानि के सम्भावित कारण से सम्बन्धित एक प्रमाण-पत्र देता है। तदुपरान्त विशेष-आंशिक हानि का विवरण-पत्र (Statement of Particular Average) बनाया जाता है।

उक्त विवरण-पत्र तैयार करने में सर्व प्रथम वास्तविक हानि ज्ञात की जाती है। इसकी माप माल के निश्चित बन्दरगाह पर उसकी सुरक्षित और क्षति-ग्रस्त अवस्थाओं के मूल्यों का अन्तर होता है। उदाहरण के लिये, कोई व्यक्ति बम्बई से कुछ माल रोम के लिये भेजता है। वह मार्ग में क्षति-ग्रस्त हो जाता है। उसका मूल्य सुरक्षित अवस्था में १,०००) होता; किन्तु उसके नुकसानी हो जाने के कारण केवल ६००) ही हस्तगत होते हैं। इस अवस्था में कहा जायगा कि चार सौ रुपये की वास्तविक हानि हुई है। यदि उक्त माल के लिये निर्धारित-मूल्य पालिसी ली गई है और बीमा १,०००) का ही है तो बीमक पूरे ४००) हानि-पूर्ति में देगा।

यदि बीमा एक हजार रुपये से कुछ न्यूनाधिक रकम का है तो बीमक को चार सौ रुपये से कम अथवा अधिक क्षति-पूर्ति में देने होंगे। उपर्युक्त उदाहरण में कल्पना कर लीजिए कि माल का १,५००) का बीमा कराया गया था। अच्छी अवस्था में अपने निर्धारित स्थान पर पहुँचने से वह १,०००) में विक्रय हो सकता था; किन्तु क्षति-ग्रस्त होने के कारण उसके लिये ६००) प्राप्त होते हैं। यहाँ पर बीमा कराने वाले को यथार्थतः चार सौ रुपये की हानि होती है। अतः

उसे इतना ही धन बीमा कम्पनी से प्राप्त होना चाहिये। किन्तु, क्योंकि बीमा पन्द्रह सौ रुपये का है इसलिये, उसे ६००) रुपये मिलेंगे। इस विषय में हम एक दूसरा उदाहरण और लेते हैं। मान लीजिए कि कलकत्ते से टोकियो जाने वाले माल का स्वामी उसके लिये ८००) रुपये की निर्धारित-मूल्य पालिसी लेता है। पहले के समान ही उसे उसके निश्चित स्थान पर अच्छी अवस्था में बेचे जाने पर १,०००) प्राप्त हो सकते थे। किन्तु क्षत होने के कारण वह केवल ६००) में ही बिक्री होता है। इस प्रकार बीमा कराने वाले को चार सौ रुपये की हानि होती है। किन्तु उसे केवल ३२०) ही क्षति-पूर्ति में प्राप्त होंगे और अवशिष्ट हानि स्वयं ही उठानी पड़ेगी, क्योंकि बीमा केवल ८००) का ही कराया गया था।

अनिर्धारित-मूल्य पालिसी में कोई बीमित-मूल्य अंकित न होने के कारण उसके आधार पर कोई हिसाब नही लगाया जाता। बीमित वास्तविक हानि को, माल के क्षति-ग्रस्त भाग की मरम्मत अथवा बिक्री के व्ययों सहित, बीमक से पूरा करा सकता है बशर्ते कि वह बीमित-धन की सीमा का उल्लंघन न करे। दूसरे शब्दों में कह सकते है कि आवश्यक व्ययों सहित माल के क्षति-ग्रस्त भाग का 'बीमा-योग्य मूल्य' ही बीमित को प्राप्त हो सकता है। हानि का प्रतिशत निश्चित बन्दरगाह पर माल के सुरक्षित अवस्था में प्राप्तव्य मूल्य के अनुसार होता है। और सुरक्षित अवस्था का मूल्य उस स्थान का थोक भाव होता है। बीमा करने वाला बाजार भाव घटने-बढ़ने से होने वाली हानि के लिये उत्तरदायी नहीं होता। विशेष-आंशिक हानि का इस सम्बन्ध में एक रूप और हो सकता है जो वास्तव में किसी श्रेणी के माल की पूर्ण हानि होती है; जैसे, जहाज़ द्वारा भेजी गई पचास गाँठों में से दस गाँठों का नष्ट हो जाना। इसकी क्षति-पूर्ति का निर्धारण भी उपर्युक्त विधि से ही किया जायगा।

किराये की विशेष-आंशिक हानि (Particular Average on Freight) : जब माल भेजने वाला जहाज का किराया अग्रिम ही चुका देता है तब वह माल के मूल्य में उसे जोड़ कर बीमा

कराता है। इस प्रकार माल की हानि होने की दशा में वह किराये की हानि से भी सुरक्षित रहता है।' यदि वह ऐसा न करे तो माल की क्षति होने पर, उसके बीमित होने की दशा में, उसे माल की क्षति-पूर्ति तो प्राप्त होगी, किन्तु किराये की क्षति का भार स्वयं ही उठाना पड़ेगा। इसी प्रकार यदि निश्चित बन्दरगाह पर पहुँचते-पहुँचते माल की विशेष आंशिक क्षति हो जाय और माल का स्वामी उसका किराया देने से इन्कार कर दे, क्योंकि कानून के अनुसार जहाजी कम्पनी किराया प्राप्त करने की अधिकारिणी तभी होती है जब वह माल को सुरक्षित अवस्था में लक्ष्यस्थान पर पहुँचा दे, तो जहाजी कम्पनी को किराये की क्षति सहनी पड़ेगी। इस हानि से बचने के लिये वह लभ्य किराये का बीमा करा लेती है। तदनन्तर उक्त वर्णित अवस्था उत्पन्न होने पर यदि जहाजी कम्पनी को किराये की हानि होती है तो वह उसे बीमा करने वाले से पूरा करा सकती है।

विशेष-आंशिक हानि-पूर्ति का दावा करने के लिये निम्नलिखित कागज़ात बीमक के पास भेजने पड़ते हैं—

(१) जहाजी बिल्टी,

(२) पालिसी,

(३) माल का बीजक,

(४) निश्चित बन्दरगाह पर माल की अच्छी अवस्था के मूल्य का प्रमाण-पत्र

(५) क्षत माल की बिक्री का प्रमाण-पत्र,

(६) प्रमाण-पत्रों को प्राप्त करने के व्ययों का विवरण।

साधारण-आंशिक हानि (General Average)

कानून द्वारा जहाज के नायक को यह अधिकार होता है कि यात्रा में किसी भयानक जोखिम के उदय होने पर सार्वजनिक हितो (Common Interest) तथा सम्पत्ति की रक्षा के लिये उचित कार्य करे और इसके लिये विचारपूर्वक व्यय तथा त्याग करने में भी पीछे न हटे। इस प्रकार स्वेच्छापूर्वक जो असाधारण व्यय अथवा हानि

उठाई जाती है, उसे ही साधारण-आंशिक हानि कहते हैं। जेटीसन द्वारा हानि इसका पुराना और सर्व विदित उदाहरण है।

आंशिक हानि के उक्त विवरण से यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि सामुद्रिक बीमे से उसका किंचित भी सम्बन्ध नहीं होता। उसके न होने पर भी साधारण-आंशिक हानि का प्रादुर्भाव हो सकता है। इससे लाभ उठाने वाले पक्षों को प्राप्त लाभ के अनुपात में उसकी पूर्ति करनी पड़ती है। इसी प्रकार जिस पक्ष के हित का बलिदान किया जाता है उसे क्षति-पूर्ति प्राप्त होती है। अस्तु इस हानि के दो साधन होते हैं:--

(१) सम्पत्ति-त्याग।

(२) व्यय।

साधारण-आंशिक हानि की विशेषताएँ

(१) जोखिम का उदय साधारण यात्रा में होता है।

(२) हानि स्वेच्छापूर्वक उठाई जाती है।

(३) त्याग अथवा व्यय जहाज तथा माल की सार्वजनिक हित-रक्षा के दृष्टि-कोण से होता है।

(४) व्यय अनुचित नहीं होता--वह न्याय संगत और विवेकपूर्ण होता है।

(५) त्याग उस व्यक्ति के दोष के कारण नहीं होता जिसके हित का बलि-दान किया जाता है।

(६) त्याग अथवा व्यय ऐसे खतरे के समय ही किया जाता है जो वास्त-विक और भयपूर्ण होता है अर्थात् वह असाधारण स्वभाव का होता है--ऐसा नहीं होता जैसा कि समुद्र-यात्रा में प्रायः अपेक्षित होता है।

(७) उस त्याग अथवा व्यय के फलस्वरूप जहाज और माल की रक्षा हो जाती है।

साधारण-आंशिक हानि में सम्मिलित न होने वाले व्यय और हानियाँ

(१) जब जहाज के मालिक की गलती से कोई व्यय अथवा त्याग आवश्यक हो जाता है; जैसे, जहाज के 'समुद्र-यात्रा करने योग्य' न होने पर यात्रा में उसके लिये किसी खर्च का आवश्यक हो जाना। इस अवस्था में जहाज का मालिक अपनी आंशिक-हानि के लिये स्वयं उत्तरदायी है।

(२) जब कोई हानि जहाज के मालिक के किसी अनुचित कार्य के कारण होती है।

(३) जब त्याग अथवा व्यय से कोई वास्तविक लाभ नहीं होता। उदाहरण के लिये जहाज का मस्तूल काटा गया; किन्तु ऐसा करने के पूर्व ही उपस्थित खतरे के कारण जहाज इस अवस्था को प्राप्त हो गया हो कि चाहे मस्तूल काटा जाता अथवा नही, वह शीघ्र नष्ट होता ही।

(४) यदि उसका उद्देश्य पूर्ण नहीं होता; जैसे, जहाज आश्रय के बन्दरगाह में हो और माल उतारने के पश्चात् अग्नि से नष्ट हो जाय।

साधारण-आंशिक हानि में सम्मिलित होने वाले व्यय तथा त्याग और उनकी क्षति-पूर्ति

व्यय : निम्नांकित व्यय साधारण-आंशिक हानि में स्थान पाते हैं :—

(१) रक्षा के लिये जहाज के किसी बन्दरगाह में आश्रय लेने से सम्बन्धित व्यय।

(२) जहाज की मरम्मत कराने के लिये माल को बाहर निकालने और उसके उपरान्त लादने के व्यय।

(३) जहाज में पानी भर जाने पर उसको निकालने का व्यय।

(४) जहाज और उसके माल की रक्षा के लिये रक्षकों को दिया गया पुरस्कार आदि।

इस प्रकार के व्ययों से जो हानि होती है, उसकी पूर्ति 'सार्वजनिक सहायता' के द्वारा होती है।

त्याग : इसके अन्तर्गत हम क्रमशः जहाज, माल और किराये से सम्बन्धित त्याग तथा उसकी क्षति-पूर्ति के साधन, माध्यम तथा आधार पर प्रकाश डालेंगे।

(अ) जहाज द्वारा किये गये त्याग पर विचार करते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि इसमें साधारण अवस्था में हुई क्षति का विचार नहीं किया जाता। यदि सार्वजनिक संकट के समय जहाज का नायक उसका कोई भाग रक्षा के निमित्त आवश्यक समझ कर स्वेच्छा से नष्ट कर दे अथवा उसका कोई यंत्र ऐसी स्थिति में रख दे कि वह नष्ट हो जाय, तो सार्वजनिक रक्षा के लिये उठाई गई इस प्रकार की क्षति की पूर्ति उन पक्षों (Parties) से पूरी कराई जा सकती है जिनको उससे लाभ हुआ है। किसी छिद्र द्वारा आते हुए जल को रोकने के लिये पतवार का उपयोग करना, किसी लदे हुए माल में भयंकर आग लग जाने पर उसे बुझाने के लिये जहाज के किसी भाग को काट कर जल का प्रवेश होने देना आदि 'जहाज के त्याग' के उदाहरण हैं।

जहाज द्वारा कोई त्याग किये जाने पर उसके स्वामी को जो हानि होती है उसकी पूर्ति का परिमाण जहाज की मरम्मत के उचित व्यय के आधार पर निश्चित किया जाता है। प्रायः यह देखा जाता है कि इस प्रकार की साधारण-आंशिक हानि होने के पहले विशेष-आंशिक हानि हो जाती है। ऐसी अवस्था में साधारण-आंशिक हानि का निश्चय करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। मान लीजिए कि कोई जहाज यात्रा करते समय किसी चट्टान से टकरा कर ध्वंस हो जाता है। तत्पश्चात् वह तूफान में घिर जाता है। उसकी रक्षा करने के लिये उसका नायक उसका मस्तूल आदि नष्ट कर देता है। फिर किसी प्रकार वह एक बन्दरगाह में पहुँच कर आश्रय ग्रहण करता है और वहाँ शीघ्र ही बिक जाता है। इस दशा में साधारण-आंशिक हानि का निश्चय करना सरल नहीं है। बहुत कुछ

विचार-विनिमय के पश्चात् विशेषज्ञों न इसे ज्ञात करने के लिये यह विधि बनाई है कि जहाज के सुरक्षित अवस्था के मूल्य में से विशेष-आंशिक-हानि होने पर उसकी मरम्मत के व्यय को निकाल दिया जाय। इस विधि को एक उदाहरण द्वारा सुगमता पूर्वक समझा जा सकता है:—

जहाज का सुरक्षित अवस्था में मूल्य ...	१०,०००)
विशेष-आंशिक-हानि पर मरम्मत का व्यय ...	७,५००)
साधारण-आंशिक-हानि के समय का मूल्य	२,५००)
बिक्री द्वारा प्राप्त धन	२००)
त्याग के फलस्वरूप साधारण-आंशिक-हानि का परिमाण ...	२,३००)

(ब)— सार्वजनिक हित-रक्षणार्थ माल के किसी अंश को जहाज हल्का करने के लिये समुद्र में फेंक दिये जाने या कोयला समाप्त हो जाने पर उसे ईंधन के रूप में जलाये जाने अथवा ऐसे ही किसी अन्य प्रकार से उसका उपयोग किये जाने से 'माल का लगा' समझा जाता है। इस भाँति विनष्ट माल के स्वामी को क्षति होती है। उसकी पूर्ति माल के निश्चित बन्दरगाह पर उसके प्राप्तव्य शुद्ध-मूल्य के आधार पर की जाती है। इसे जानने के लिये वे सभी व्यय; जो सामान्यतः माल के भेजने वाले को उसके सुरक्षित अवस्था में पहुँचने पर उतरवाने, बेचने आदि में करने पड़ते, उसके मिश्रित-मूल्य (Gross Value) में से घटा दिये जाते हैं। यदि किसी माल का मिश्रित-मूल्य ५००) है और उसके उतारने, बेचने आदि का व्यय २०) है तो उसका शुद्ध-मूल्य (Net Value) ४८०) रूपया होगा।

(स)— जब सार्वजनिक हित के लिये माल को समुद्र में फेंक दिया जाता है तब उसके स्वामी को तो हानि होती ही है; किन्तु साथ ही जहाज के स्वामी को भी हानि होती है। उसे यह हानि किराये की होती है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि माल को सुरक्षित अवस्था में लक्षित स्थान पर पहुँचा देने पर ही वह किराया पाने का अधिकारी होता है। किन्तु जब माल मार्ग ही में उत्ताल तरंगों का आहार बन चुका है तब वह अपने लक्षित स्थान पर पहुँचेगा

-कैसे ! इस प्रकार उसका निश्चित बन्दरगाह पर सुरक्षित पहुँचाने के प्रतिफल जो किराया मिलता, वह नहीं मिल सकता। यह जहाज के स्वामी के 'किराये का त्याग' हुआ। इस त्याग के फलस्वरूप उसे जो क्षति होती है उसकी पूर्ति का माप निश्चित बन्दरगाह पर पहुँचने पर प्राप्त होने वाले और माल को समुद्र में फेंक देने के फलस्वरूप न प्राप्त होने वाले किरायों का अन्तर ही होना है।

'सार्वजनिक सहायक' और 'सहायता का परिमाण' : किसी व्यक्ति को जब साधारण-आंशिक हानि होती है, वह उसे उन व्यक्तियों से पूरा कराने का अधिकार रखता है जिनके हितों की रक्षा उसकी हानि के द्वारा हुई है। दूसरे व्यक्ति उस हानि की पूर्ति 'दर-योग्य-सहायता' (Rateable Contribution) के द्वारा करते हैं। यह दर-योग्य-सहायता 'सार्वजनिक सहायता' कहलाती है।

जब कोई साधारण-आंशिक हानि होती है, वह सभी के हितों की रक्षा करने के लिये होती है। माल के स्वामी, जहाज के स्वामी और किराया पाने वाले तीनों को ही उससे लाभ होता है। अतः इन्हीं को इस हानि का भार भी सहन करना पड़ता है। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि जब वे उसका लाभ उठाते हैं, तब उसका भार भी उन्हें ही वहन करना होगा। ये तीन व्यक्ति—माल का स्वामी, जहाज का स्वामी तथा किराया पाने वाला—संयुक्त रूप से 'सार्वजनिक सहायक' (Contributing Interests) कहे जाते हैं।

साधारणतः यात्रा समाप्त होने वाले बन्दरगाह पर उसमें प्रचलित नियमों के अनुसार उस हानि की पूर्ति की जाती है। किन्तु यदि किसी कारणवश यात्रा मध्य में ही समाप्त कर दी जाय, तो इस मध्यवर्ती बन्दरगाह के नियमों के अनुसार ही सब कार्य सम्पादित होंगे। अब हम यह देखेंगे कि उक्त 'सार्वजनिक सहायकों' के द्वारा दी जाने वाली सहायता का आधार क्या होता है। वह प्रत्येक सहायक के लिये पृथक् होता है; यथा,

जहाज के स्वामी के लिये : जहाज का मालिक साधारण-आंशिक हानि होने के पश्चात् यात्रा समाप्त अथवा भंग करने के बन्दरगाह पर जहाज के प्राप्तव्य मूल्य के आधार पर उक्त सहायता देगा।

माल भेजने वाले के लिये : निश्चित बन्दरगाह पर, और यदि यात्रा किसी पथवर्ती बन्दरगाह पर ही भंग कर दी जाती है तो उसी पर माल का प्राप्तव्य विक्रय-मूल्य उसकी सहायता का आधार होता है।

किराया पाने वाले के लिये : सहायता का आधार किराये का वह परिमाण होता है, जिसकी रक्षा साधारण-आंशिक हानि के द्वारा होती है अर्थात् जो उसे अवशिष्ट माल पर प्राप्त होगा।

जहाज और माल के मालिक तथा किराया पाने वाले जिन मूल्यों के आधार पर अपनी सहायता देते हैं, उनका 'बीमित मूल्य' से कोई सम्बन्ध नहीं होता। सहायता के ये आधार 'सहायता के मूल्य' (Contributing Values) कहलाते हैं। यदि यह मान लें, कि किसी जहाज का बीमित मूल्य ८०,०००) रुपया है, किन्तु लक्षित बन्दरगाह पर वह ९०,०००) रुपया आंका जाता है तो इस दशा में जहाज के स्वामी को ९०,०००) रुपये के आधार पर उक्त सहायता देनी होगी, ८०,०००) के आधार पर नही। इसी प्रकार यदि उस बन्दरगाह पर उसका विक्रय मूल्य केवल ५०,०००) है तो वह इन्ही ५०,०००) के आधार पर सहायता देगा।

साधारण-आंशिक हानि की व्यवस्था (Adjustment of General Average) : साधारण-आंशिक हानि होने पर 'सार्वजनिक सहायकों' को कितनी मात्रा में सहायता देनी चाहिये, इसका हिसाब लगाना तनिक जटिल कार्य होता है; क्योंकि उसमें कानून तथा प्रथाओं से सम्बन्धित कतिपय उलझनें आती है। अत: यह कार्य 'हानि-व्यवस्थापकों' (Average Adjusters) के द्वारा कराया जाता है, जो इसके विशेषज्ञ होते हैं। हानि-व्यवस्थापक के द्वारा 'साधारण-आंशिक हानि का व्यवस्था-पत्र' तैयार कराने का उत्तरदायित्व जहाज के स्वामी पर होता है। यह आवश्यक नहीं होता कि हानि-व्यवस्थापक उसी बन्दरगाह का व्यक्ति हो जहाँ यात्रा समाप्त होती है। अब साधारण-आंशिक हानि-व्यवस्था का एक उदाहरण लीजिए।

किसी जहाज का मूल्य २५,०००) है। वह १६,०००) का माल लाद कर किसी निश्चित बन्दरगाह की ओर प्रस्थान करता है जहाँ निरापद पहुँचने पर उसके स्वामी को ३,०००) किराये में मिलेंगे। किन्तु मार्ग में किसी कारण-वश छिद्र हो जाने के फलस्वरूप उसमें जल भर जाता है। इस पर सार्वजनिक रक्षा के उद्देश्य से उसका नायक माल का चतुर्थांश समुद्र में फेंकवा देता है और कुछ भाग एक दूसरे जहाज में स्थानान्तरित करा देता है जिसमें ४००) व्यय होते हैं। इस विषय में यदि हम सहायता के मूल्य अथवा आधार उपर्युक्त अंकों को ही मान कर साधारण-आंशिक हानि का व्यवस्था-पत्र बनाएँ तो वह निम्न प्रकार होगा :—

साधारण-आंशिक हानि का व्यवस्था-पत्र

सार्वजनिक सहायक Contributing Interest	सहायता का मूल्य या आधार Contributing Values (रू०)	सहायता का अनुपात Proportion of Contribution (रू०)	सहायता Contribution (रू०)
जहाज	२५,०००	२५,००० / ४४,०००	२,५००
माल	१६,०००	१६,००० / ४४,०००	१,६००
किराया	३,०००	३,००० / ४४,०००	३००
	४४,०००	......	४,४००

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि, ४,४००) [फेंके गये माल का मूल्य ४०००) + व्यय ४००)] की उक्त हानि को सार्वजनिक सहायकों के मध्य उनके हितों के अनुपात में विभक्त कर दिया गया है।

प्रतिस्थापित व्यय : विशेष-आंशिक हानि से क्षत-विक्षत होकर जब कोई जहाज आश्रय के बन्दरगाह में मरम्मत के लिये जाता है, तब उसमें लदे हुए माल को उतरवाना आवश्यक हो जाता है। उस समय यदि यह प्रतिभासित हो कि उसकी मरम्मत के लिये माल को उतरवाने और तदन्तर लदवाने का व्यय, उसे लक्षित बन्दरगाह तक घसीट कर अथवा किसी अन्य उपाय से ले जाने के व्यय से न्यून होगा, जो अल्प व्ययपूर्ण कार्य ही करना चाहिये। बुद्धिमत्ता और विवेक की यही माँग है। इस प्रकार जहाज के नायक के समक्ष रक्षा के जब दो अथवा अधिक साधन उपस्थित होते हैं, वह उनमें से उसी को अंगीकार करेगा, जिसका व्यय अपेक्षाकृत अल्प हो और लाभ अधिक अथवा समान। इस उपाय के लिये जो व्यय किये जाते हैं, वही 'प्रतिस्थापित व्यय' (Substituted Expenses) कहे जाते हैं। अन्य साधारण-आंशिक हानियों के समान प्रतिस्थापित व्ययों का भार भी सार्वजनिक सहायकों पर ही पड़ता है।

माल की बिक्री से साधारण-आंशिक हानि : सार्वजनिक सुरक्षा के लिये कोई असाधारण व्यय आवश्यक होने पर, उसके प्रबन्ध का उत्तरदायित्व जहाज के नायक पर होता है। यदि आवश्यकता-पूर्ति के लिये पर्याप्त धन उसके पास नहीं होता, तो उसे वह किसी न किसी प्रकार जुटाता है। इसके लिये उसके पास अनेक उपाय होते हैं जिनमें से एक लदे हुए माल के किसी भाग को बिक्री कर देना भी है। ऐसी अवस्था में विक्रेय माल के स्वामी को क्षति-पूर्ति मिलनी चाहिये। इसका माप उसका शुद्ध विक्रय-मूल्य होता है। किन्तु यदि यह मूल्य उचित अथवा लक्षित बन्दरगाह में प्राप्तव्य मूल्य से न्यून है, तो वह प्राप्त तथा प्राप्तव्य मूल्यों का अन्तर भी वसूल कर सकने का अधिकारी होता है। इस प्रकार की हानि की पूर्ति भी सार्वजनिक सहायता के द्वारा ही होती है।

आश्रय के बन्दरगाह पर माल यदि लाभ पर अथवा निश्चित बन्दरगाह की अपेक्षा अधिक मूल्य पर बिक्री होता है तो उसका स्वामी सम्पूर्ण विक्रय-धन प्राप्त कर सकता है। सारांश यह है कि वह लाभ का अधिकारी होता है; हानि का दायी नहीं।

इस सम्बन्ध में जहाज के नायक को यह ध्यान में रखना आवश्यक होता है कि यदि वह किसी अन्य साधन से व्यय के लिये आवश्यक धन-संग्रह कर सकता है तो उसे माल बेचने के उपाय का उपयोग नहीं करना चाहिये।

यार्क-एन्टवर्प के नियम (York Antwerp Rule) : साधारण-आंशिक हानि सम्बन्धी वे नियम हैं जो संसार के सभी देशों में प्रचलित तथा मान्य हैं। इन्हीं के आधार पर साधारण-आंशिक हानि का विवरण बनाया जाता है। इनके निर्माण के पूर्व विदेशों को जाने वाले जहाजों को किसी प्रकार की साधारण-आंशिक हानि होने पर बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था; क्योंकि नियमानुसार जहाँ पर यह घटित होती थी, वहीं के नियमानुसार उसका विवरण प्रस्तुत करना पड़ता था—कारण यह कि यही कानून था और है भी। फिर, चूंकि साधारण-आंशिक हानि की पूर्ति का सिद्धान्त स्वाभाविक न्याय पर आधारित है, अतः इससे सम्बन्धित नियमों का प्रत्येक देश में पाया जाना स्वयंसिद्ध था। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि वे एकदम सदृश नहीं हो सकते थे—उनमें वैभिन्न होना स्वाभाविक था। अस्तु उक्त कठिनाई से त्राण पाने के लिये सर्वप्रथम न्यूयार्क में तत्पश्चात् एन्टवर्प और लिवरपूल में विशेषज्ञों की अन्तर्राष्ट्रीय सभाएँ की गई और पारस्परिक समझौते से कुछ ऐसे नियमों का निर्माण कर लिया गया, जो सभी देशों को मान्य थे। अब उक्त अवस्था में, जिसकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं, इन्हीं का प्रयोग होता है। ये ही यार्क-एन्टवर्प नियमों के नाम से सर्वविदित हैं।‡

स्मरण-पत्र : जैन्सन का वाक्यांश (Memorandum : Janson's Clause) : हम 'बीमा पालिसी की शर्तें' नामक अध्याय के अन्तर्गत देख चुके हैं कि बीमा करने वाले कुछ दशाओं में तीन प्रतिशत और कुछ दशाओं में पाँच प्रतिशत से कम हानि होने पर उसकी पूर्ति नहीं करते। योरप के कतिपय देशों में यह रीति चल पड़ी है कि हानि की मात्रा उक्त प्रतिशतों से अधिक हो जाने पर भी उसकी पूर्ति सम्पूर्णतः नहीं की जाती। इन प्रतिशतों से ऊपर

‡विशेष विवरण के लिये 'यार्क-एन्टवर्प रूल्स—१८९०-१९२४' देखिए।

हुई हानि हीं को बीमक चुकाता है। उदाहरणार्थ किसी वस्तु का बीमित-मूल्य १०,०००) रूपया है और पालिसी में ५% जेन्सन–वाक्यांश संयुक्त है। उस वस्तु पर ७००) रूपये की हानि हो जाती है। इस अवस्था में बीमक केवल दो सौ रूपये ही क्षति-पूर्ति में देगा और शेष बीमित को स्वयं ही सहन करना होगा। यह ज्ञात करने के लिये कि निर्धारित हानि हुई है अथवा नहीं, विशेष-आंशिक हानि के अतिरिक्त अन्य किसी हानि पर ध्यान नहीं दिया जाता—व्यय भी नहीं जोडे जाते। जो हो, इस वाक्यांश के नियमों का उद्देश्य यह होता है कि बीमित को भी हानि का कुछ अंश अवश्य सहन करना चाहिये।

पृथक् मूल्यांकन और अनुक्रमिक मूल्यांकन (Separate Valuation & Valuation in Series) स्मरण-पत्र के अनुसार विशेष-आंशिक हानि के एक निश्चित मात्रा से कम होने पर बीमा कम्पनी उसकी पूर्ति के लिये बाध्य नहीं होती। हानि की यह निश्चित मात्रा कुछ प्रकार के मालों के निमित्त तीन प्रतिशत और कुछ दूसरों के लिये पांच प्रतिशत है। बड़ी रकम का बीमा कराने वालों के लिये यह नियम अति कठोर सिद्ध होता है; क्योंकि निर्धारित सीमा से उसके तनिक भी न्यून होने पर सम्पूर्ण हानि उन्हें ही सहन करनी पड़ती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये माल को कई भागों में विभक्त कर लिया जाता है। फिर प्रत्येक भाग का अलग-अलग बीमा कराया जाता है। जब हानि होती है, तब उसकी पूर्ति करने अथवा न करने का निर्णय प्रत्येक भाग के लिये पृथक् रूप से किया जाता है, सम्पूर्ण बीमित माल का एक साथ नहीं।

विशेष व्यय (Particular Charges) : कानून के अनुसार 'विशेष व्यय' वे व्यय होते हैं जो बीमित वस्तु की रक्षा या उसे विनाश से बचाने के लिये बीमित अथवा उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किये जाते हैं और जो साधारण-आंशिक हानि तथा रक्षण-पुरस्कार से भिन्न होते हैं। इस परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे (१) किसी बीमित वस्तु विशेष की रक्षा के लिये होते हैं, (२) लक्षित बन्दरगाह पर पहुँचने के पूर्व किये जाते हैं, और

(३) बीमित जोखिम अथवा जोखिमों से बीमित वस्तु की रक्षा होती हुई हानि को रोकने अथवा उसको न्यूनतम करने के निमित्त ही किये जाते हैं।

विशेष व्यय बीमा पालिसी के 'अभियोग तथा व्यय' वाक्यांश, जिसका वर्णन हम किसी विगत अध्याय में कर चुके हैं, के अन्तर्गत किये जाते हैं। बीमक से इन्हें वसूल कर लेने का अधिकार बीमित को होता है।

रक्षा-पुरस्कार (Salvage Charges) : यह पुरस्कार उस व्यक्ति को प्रदान किया जाता है जो समुद्र में जहाज, माल आदि की रक्षा करता है या उसमें सहयोग देता है। इसे प्राप्त करने के लिये रक्षमाण वस्तु को अधिकृत कर सकता है। यदि वह उसके हाथ से किसी प्रकार निकल जाती है तो वह समुद्री न्यायालय में अभियोग चला सकता है। किन्तु इस विषय में यह जान लेना आवश्यक है कि यह पुरस्कार रक्षक तभी प्राप्त कर सकता है जब वह अपने उद्योग में कृतकार्य हो जाता है। साथ ही रक्षा-कार्य किसी अन्य पक्ष (Third Party) के द्वारा होना चाहिये। इस पुरस्कार का भार उन व्यक्तियों पर पड़ता है, जिनकी सम्पत्ति की रक्षा की गई है अथवा जिनके कारण संकट उत्पन्न हुआ था। यदि इसकी जोखिम के विरुद्ध बीमा है अथवा साधारण-आंशिक हानि में इसे सम्मिलित कर लिया जाता है, तो बीमा कम्पनी से इसे वसूल किया जा सकता है।

धन-संग्रह

यह अनेक बार कहा जा चुका है कि यात्रा में साधारण तथा असाधारण विभिन्न प्रकार के व्ययों की आवश्यकता पड़ा करती है। जहाज के नायक को उनके लिये धन एकत्रित करना पड़ता है। इसके लिये प्रायः वह दो उपाय उपयोग में लाता है; या तो वह जहाज में लदे हुए माल के किसी भाग को बेचकर काम चलाता है अथवा ऋण लेता है।

माल की बिक्री द्वारा : जहाज पर लदे हुए माल को बेच कर धन एकत्रित करने के विषय में हम पिछले पृष्ठों में उल्लेख कर चुके हैं। जहाज के नायक को

यह अधिकार दिया जाता है कि यात्रा-काल में धन की आवश्यकता पड़ने पर वह माल के किसी भाग को बेच कर उसकी पूर्ति कर सकता है।

• **ऋण द्वारा** : वर्तमान काल में अधिकांशत: जहाज के नायक को ऋण लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। तार, बेतार के तार, समुद्री तार आदि समाचार भेजने के गतिशील साधनों की विद्यमानता के कारण, जब कभी संकट में पड़ कर वह धन की आवश्यकता अनुभव करता है तभी अपने स्वामी को सूचित कर उसे शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त कर सकता है। किन्तु प्राचीन काल में, जैसा कि सर्वविदित है, ये सुविधाएँ उपलब्ध न थीं। अत: आवश्यकता पड़ने पर जब वह किसी अन्य उपाय से धन प्राप्त नहीं कर सकता था, तब वह ऋण का आश्रय लेता था। ऋण जहाज, माल अथवा दोनों की जामिनी पर लिये जाते थे। आज कल इन प्रकारों से ऋण लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनका जो कुछ भी महत्व है वह ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ही है।

जहाज की जमानत पर ऋण (Bottomry) : जब नायक जहाज को गिरवी रख कर ऋण लेता था तब उसे एक दस्तावेज लिखनी पड़ती थी जिसे 'जहाजी बन्धक की दस्तावेज' (Bottomry Bond) कहते थे। कभी-कभी जहाज के साथ-साथ माल और प्राप्य किराये को भी जमानत के रूप में बन्धक कर दिया जाता था। किन्तु साधारणत: ऐसा नहीं होता था। उसके लिये जहाज का नायक भी व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता था। जहाज की जमानत पर ऋण प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित आवश्यकताओं की पूर्ति अपेक्षित होती थी :—

(१) उसके बिना यात्रा चालू रखना असम्भव हो।

(२) उसके अतिरिक्त अन्य किसी साधन से अपेक्षित धन प्राप्त होना नितान्त दुर्लभ हो।

(३) उतना ही ऋण लिया जाय, जितना यात्रा-समाप्ति के लिये अनिवार्य हो।

उक्त प्रकार से प्राप्त किये हुए ऋण का भुगतान जहाज के निश्चित बन्दर-गाह पर पहुँचने पर ही होता था। यदि वह अपने लक्ष्य-स्थान पर पहुँचने के पूर्व ही मार्ग में जलमग्न हो जाता था अथवा किसी अन्य प्रकार से उसकी पूर्ण हानि हो जाती थी तो ऋणी के लिये इस ऋण को चुकाना आवश्यक नहीं होता था। उस समय ऐसा भी कभी-कभी होता था कि नायक को जहाज की जामिनी पर ही एक से अधिक बार ऋण लेना पड़ता था। उस अवस्था में भुगतान का क्रम यह होता था कि सर्वान्तिम ऋण का भुगतान सर्वप्रथम और सवप्रथम ऋण का भुगतान सर्वान्त में होता था। इस नियम का आधार यह विचार था कि यदि अन्तिम महाजन ऋण न देता तो जहाज का अपने निश्चित बन्दरगाह पर पहुँचना असम्भव होता और उस दशा में सर्वप्रथम महाजन को अपने ऋण के भुगतान में कुछ भी प्राप्त न हो सकता।

माल की जमानत पर ऋण (Respondentia) : कभी-कभी केवल माल को ही बन्धक रख कर नायक ऋण प्राप्त कर लेता था। इसके लिये उसे 'माल की जमानत की दस्तावेज' (Respondentia Bond) भरनी पड़ती थी। इसके भुगतान के लिये भी जहाज का अपने निश्चित बन्दरगाह पर पहुँचना आवश्यक था। माल की जमानत पर लिये जाने वाले ऋण के लिये निम्नांकित बातें आवश्यक होती थीं :—

(१) धन का केवल माल के हितार्थ ही आवश्यक होना;

(२) माल को बिक्री कर देने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय धन-प्राप्ति का न होना; और

(३) सम्भव होने पर माल के स्वामियों की अनुमति प्राप्त कर लेना।

अध्याय २२

सामुद्रिक बीमे का प्रीमियम और पालिसी का प्रदान

प्रीमियम : जो रकम बीमित द्वारा बीमक को बीमा कॉन्ट्रैक्ट की शर्तों के अनुसार जोखिम लेने और उसके उपस्थित होने के फलस्वरूप हानि की पूर्ति के लिये दी जाती है, वह प्रीमियम कहलाती है। सामुद्रिक बीमे के प्रीमियम का हिसाब जीवन-बीमा के प्रीमियम के सदृश्य किसी वैज्ञानिक आधार पर निर्धारित नहीं होता और न हो सकता है। इसके अनेक कारणों में से सर्वप्रधान यह है कि उसकी गणना करने के लिये जीवन-मृत्यु के समान समुद्र-यात्रा सम्बन्धी जोखिमों के विश्वसनीय आँकड़ों का महान अभाव है। इस अभाव की पूर्ति भी अत्यन्त कठिन एवं दुस्साध्य है; क्योंकि उक्त जोखिमों की संख्या, उनकी भयानकता, उनकी विशालता आदि की कोई सीमा निर्धारित नही की जा सकती। फलतः सामुद्रिक बीमा के प्रीमियम की दरें अधिकांशतः अनुमान, कल्पना, और बीमा व्यवसायियों की पारस्परिक प्रतिद्वन्दिता पर ही निर्भर होती हैं।

प्रीमियम की वापसी : सामान्यतः जैसे ही बीमक को बीमित से प्रीमियम प्राप्त होता है, बीमा की हुई जोखिम का भार भी उसके ऊपर आ जाता है। इसके पश्चात् प्रीमियम बीमित को वापस नहीं लौटाया जा सकता। यह तो साधारण नियम है; किन्तु इसके कुछ अपवाद भी हैं। कुछ अवसर ऐसे आते हैं जब बीमित अपने प्रीमियम को पूर्णतः अथवा अंशतः वापस पा सकता है। हम उनमें से कुछ का उल्लेख करते हैं।

(१) जब पालिसी में ही कुछ ऐसी शर्तें लिखी हों, जिनके अनुसार बीमक

प्रीमियम का कोई भाग बीमित को लौटा दे; जैसे किसी घटना के घटित होने पर,

(२) जब बीमा हो जाने के पश्चात् माल भूल से जहाज पर लादा नहीं जाता,

(३) जब बीमित अज्ञान से किसी दूसरे माल का बीमा करा लेता है- उसका बीमा नहीं कराता, जिसका कराना चाहिये था,

(४) जब बीमा कम्पनी अन्यायपूर्वक बीमा कॉन्ट्रैक्ट रद कर देती है,

(५) जब दोहरे बीमे के द्वारा किसी वस्तु का आवश्यकता से अधिक धन का बीमा (Over Insurance) हो जाता है। परन्तु यह अनिर्धारित मूल्य पालिसियों में ही लागू होता है, बशर्तें कि दोहरा बीमा जान-बूझ कर किसी अवांछनीय मन्तव्य से न किया गया हो।

(६) जब स्वाभाविक न्याय के सिद्धान्तानुसार प्रीमियम को पूर्णतः अथवा अंशतः लौटा देना आवश्यक हो जाय; जैसे, बिना किसी प्रकार का धोखा देने अथवा कुप्रतिनिधित्व करने की इच्छा से कोई बीमित किसी मूलभूत तथ्य को बीमा कराते समय प्रगट नहीं करता। पीछे से उसके ज्ञात होने पर बीमक बीमा कॉन्ट्रैक्ट को रद कर सकता है; किन्तु उसे प्रीमियम बीमित को लौटाना पड़ेगा।

समुद्री बीमा पालिसी का प्रदान (Assignment of Marine Policy) : समुद्री बीमा पालिसी के प्रदान के निमित्त कोई विशेष विधि नहीं है। इसके लिये उसकी पीठ पर बेचान (Endorsement) के समान हस्तान्तर करके उसे प्रदान करने की इच्छा से किसी व्यक्ति को दे देना ही पर्याप्त है। विदेश को प्रस्थान कर चुकने के पश्चात् अपने निश्चित स्थान तक पहुँचने के समय तक माल का अनेक बार क्रय-विक्रय होता है। यदि पालिसी का प्रदान न किया जाय तो उक्त क्रय-विक्रय सम्भव न होगा। अतः पालिसी की अवधि के भीतर चाहे जितनी वार प्रदान किया जा सकता है, उसकी संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। इसी प्रकार पालिसी में यदि बीमक को प्रदान की सूचना भेजने की शर्त

नहीं है, तो उसे प्रदान की सूचना देना आवश्यक नहीं होता। इस विषय से सम्बन्धित आवश्यक बातें ये हैं :—

(१) प्रदान करते समय बीमित माल में बीमित का बीमा-योग्य हित अवश्य हो।

(२) उस समय बीमित जोखिम चालू हो।

ये दोनो बातें प्रदान के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। प्रदान करने के पश्चात् यदि यह ज्ञात होता है कि उसे करते समय माल नष्ट हो चुका था, तो इसका अर्थ यह होता है कि प्रदानकर्त्ता ने उससे सम्बन्धित अपने सारे अधिकार उस व्यक्ति को दे दिये हैं जिसके नाम में पालिसी प्रदान की गई है। यदि पालिसी में किसी वाक्यांश के द्वारा प्रदान का निषेध कर दिया गया है तो उसका प्रदान नहीं हो सकता।

चतुर्थ भाग

अग्नि-बीमा

अध्याय २३

परिचय

मानव समाज की आवश्यकता-पूर्ति के लिये अग्नि कितनी अपेक्षित है, यह बतलाना निरर्थक है। उसके महत्व एवं उपादेयता का ज्ञान इसी से हो सकता है कि हम बिना उसकी सहायता के अपना भोजन भी प्राप्त नहीं कर सकते। वास्तविकता यह है कि उसने हमारी सभ्यता और संस्कृति के विकास, हमारे ज्ञान और विज्ञान के उत्कर्ष, हमारी कला और व्यवसाय की उन्नति, हमारी सुविधाओं और आनन्दवर्धक सामग्रियों की उपलब्धता इत्यादि अनेकों दिशाओं में महान सहायता की है। सम्भवतः यही कारण है कि संसार के अनेक धर्मों में अग्नि एक उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित है। किन्तु जहाँ एक ओर उसका इतना मनोरम तथा सुखद रूप है, वहाँ दूसरी ओर उसका विकराल तथा कठोर रूप भी है। जहाँ एक ओर वह हमारी परम सहायिका, शुभचिन्तिका तथा हित साधिका है, दूसरी ओर घोरतम शत्रु भी है। प्रतिवर्ष करोड़ों-अरबों रुपये की हानि संसार के मनुष्यों को उसके कारण उठानी पड़ती है; सहस्त्रों मानव और पशु उसके द्वारा भस्म हो जाते हैं, अनेकों व्यक्ति निरालम्ब तथा निराधार हो जाते हैं और न जाने कितनों का भविष्य अन्धकारमय हो जाता है। जो हो, अग्नि के उपयोग में आने पर मनुष्य जब उसके स्वभाव से परिचित हो गया तब यह अवधानपूर्वक उसका उपयोग करते हुए उसकी हानियों से बचने का प्रयत्न भी करने लगा जिसमें अभी तक वह अधिकांशतः सफल नहीं हो सका है।

अग्नि-बीमे का आरम्भ और विकास : वाणिज्य-व्यवसाय पर अग्निदेव की विशेष कृपा रहा करती है। उसमें अग्निकाण्ड द्वारा क्षति के अवसर अधिक रहते हैं। अग्नि-बीमा इससे बचने का एक साधन है। किन्तु बचने का अर्थ यह नहीं है कि बीमा करा लेने से अग्नि द्वारा क्षति नहीं होती। वह तो होगी ही क्योंकि अग्नि का स्वभाव ही है कि जिस वस्तु का स्पर्श करे, उसे क्षार कर दे। आशय यह है कि बीमा करा लेने के पश्चात् यदि हानि होती है तो बीमा करा लेने वाले की क्षति-पूर्ति बीमक कर देता है। इस प्रकार यह कहा जाता है कि बीमित को क्षति नही होती। परन्तु वास्तविकता यह भी नही है। बीमित बीमक को जो प्रीमियम अग्नि द्वारा हानि की जोखिम उठाने के विनिमय में देता है, कम से कम उसकी क्षति तो उसे होती ही है। फिर बीमक पर भी क्षति का पूर्ण भार कभी नहीं पड़ता—केवल उतना ही पड़ता है जितना अग्नि-बीमा कराने वाले जन-समूह के प्रत्येक सदस्य पर, क्योंकि उसका कार्य उक्त जन-समूह के विभिन्न सदस्यों के मध्य एक व्यक्ति की हानि को विभक्त कर देना भर ही होता है। अतः अपने अन्तिम रूप में अग्नि द्वारा हुई क्षति का भार समाज को उठाना पड़ना है।

यदि हम अग्नि बीमा के विकास पर ध्यान दें तो देखेंगे कि वाणिज्य-व्यवसाय की उन्नति तथा उद्योग-धन्धों के विकास के साथ उसका घनिष्ट सम्बन्ध है। उनकी अभिवृद्धि तथा उत्कर्ष के साथ-साथ उसकी भी उन्नति हुई है। यह स्वाभाविक भी प्रतीत होता है। हम पहले ही कह चुके हैं कि अग्नि से सर्वाधिक हानि व्यापार, उद्योग आदि ही को होती है। ज्यों-ज्यों उनका विस्तार तथा प्रसार होता गया, अग्नि द्वारा हानि की मात्रा और उसके फलस्वरूप अग्नि बीमा की माँग भी अधिकाधिक बढ़ती गई। यही कारण है कि प्राचीन काल में जब व्यवसाय, उद्योग आदि विशेष उन्नति पर नही थे, अग्नि-बीमे की भी विशेष आवश्यकता न थी।

सर्वप्रथम हालैण्ड ने इस ओर अपना ध्यान गम्भीरतापूर्वक आकर्षित किया था। इंगलैण्ड में वर्तमान कालीन अग्नि-बीमा-प्रणाली के प्रवर्त्तक श्री निकोलस

बार्बन (Nicholas Barban) नामक सज्जन समझे जाते हैं। उन्होंने लन्दन नगर में, वहाँ के सन् १६६६ के 'महान अग्निकाण्ड' के कुछ समय पश्चात् अग्नि-बीमा का अपना व्यक्तिगत व्यवसाय आरम्भ किया था। कुछ कालोपरान्त अन्य व्यक्तियों के सहयोग से सन् १६८० में सम्भवतः संसार की सर्वप्रथम 'अग्नि-बीमा-संस्था' (The Fire Insurance Office) की स्थापना भी उन्होंने की थी।

क्रमशः इस व्यवसाय ने उस देश में प्रगति की। प्रारम्भ में केवल छोटी-छोटी रकमों के लिये निवास-गृहों का ही बीमा किया जाता था। आजकल के समान उन दिनों बीमा करने वालों में प्रतिद्वन्द्विता का अभाव था; किन्तु बीमा कराने वालों में वह अवश्य रहती थी। इस सम्बन्ध में ज्ञातव्य बात यह भी है कि उस समय अग्नि-बीमा व्यवसायियों के पास उससे सम्बन्धित आँकड़ों का अभाव था, जिनके आधार पर वे अपने प्रीमियम की दर निर्धारित कर सकते। अतः इस कार्य के लिये उन्हें अनुमान तथा कल्पना पर ही निर्भर रहना पड़ता था। किन्तु अब वह दशा नहीं है। पूर्वानुभव के आधार पर संगृहीत आँकड़ों की सहायता से अग्नि-बीमा के प्रीमियम की दरें बहुत कुछ निश्चयात्मक रूप से निर्धारित कर ली गई हैं। इस विषय में जीवन-बीमा के प्रीमियम की दरों के पश्चात् उन्हीं का स्थान है।

आधुनिक समय में अग्नि-बीमे का कार्य केवल संस्थाओं और व्यक्तिगत व्यवसायियों के हाथों में ही नहीं है। यूरप के अनेक देशों में उस पर वहाँ की सरकारों का एकाधिकार है। सम्पत्ति के स्वामी के लिये अग्नि-बीमा कराना वहाँ अनिवार्य होता है। अर्थात् उसे प्रतिवर्ष अग्नि-बीमे का प्रीमियम ठीक उसी प्रकार चुकाना पड़ता है जिस प्रकार कोई कर।

अग्नि बीमा और जीवन तथा समुद्री-बीमा की तुलना

अग्नि और जीवन-बीमे : (१) अग्नि-बीमा एक क्षति पूरक कॉन्ट्रैक्ट होता है; किन्तु जीवन-बीमा ऐसा नहीं होता; क्योंकि उसमें दावा उपस्थित

होने पर सम्पूर्ण बीमित धन बीमित अथवा उसके अधिकारी को प्राप्त हो जाता है।

(२) अग्नि-बीमा साधारणत: १० दिन से लेकर एक वर्ष तक के लिये होता है; किन्तु जीवन-बीमा की अवधि अधिकांशतः बीमित की इच्छा पर ही निर्भर रहती है और प्रत्येक दशा में वह अग्नि-बीमा की अवधि से कहीं दीर्घ होती है।

(३) अग्नि-बीमा में केवल सुरक्षा का ही तत्व विद्यमान रहता है; किन्तु जीवन-बीमा में सुरक्षा तथा धन-संग्रह के दो तत्व पाये जाते हैं।

(४) अग्नि-बीमा की जोखिमें विभिन्न प्रकार की तथा निरन्तर न्यूनाधिक होनेवाली होती हैं। इसी कारणवश प्रत्येक प्रकार की जोखिम के लिये उसके स्वभावानुसार प्रीमियम की दर पृथक्-पृथक् होती है; किन्तु जीवन-बीमा में समान आयु के औसत व्यक्तियों के लिये वह समान ही होती है। केवल कुछ मामलों में उसे तनिक बढ़ाया जाता है, घटाया नहीं जाता।

(५) अग्नि-बीमे में पालिसी का वापसी-मूल्य (Surrender Value) नहीं होता, किन्तु जीवन-बीमों में सामान्यत: दो अथवा तीन वर्षों के पश्चात् बीमित स्वेच्छा से उसे प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है।

(६) अग्नि-बीमा के सम्बन्ध में यह आवश्यक होता है कि बीमित का बीमा के विषय में बीमा कराते समय तथा हानि होने के समय भी बीमा-योग्य हित हो; किन्तु जीवन बीमा में बीमा कराते समय ही उसका होना आवश्यक होता है।

(७) अग्नि-बीमा पालिसी बिना बीमक की अनुमति प्राप्त किये किसी अन्य व्यक्ति के नाम में प्रदान नहीं की जा सकती; किन्तु जीवन-बीमा पालिसी के प्रदान के विषय में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं होता।

(८) अग्नि-बीमा में बीमित की स्थिति-प्राप्ति का सिद्धान्त पूर्णतः लागू होता है; किन्तु जीवन-बीमा में नही।

(९) अग्नि-बीमा में नैतिक जोखिम सर्वदा निहित रहती है। दूसरे शब्दों में उसमें यह बहुत सम्भव होता है कि बीमा कराने वाला बीमित धन प्राप्त करने के उद्देश्य से स्वयं ही बीमित वस्तु में आग लगा दे अथवा किसी अन्य से लगवा

दे; किन्तु जीवन-बीमा में, इस प्रकार, बीमा के विषय (जीवन) को बीमित धन प्राप्त करने के मन्तव्य से नष्ट कर देने की सम्भावना केवल अल्पतम मात्रा में ही हो सकती है—इससे अधिक कदापि नहीं।

अग्नि और सामुद्रिक-बीमे : ये दोनों ही क्षति-पूरक होने के कारण यद्यपि तद्रूप दीख पड़ते हैं, तदपि उनमें कुछ बातें पूर्णतः भिन्न होती हैं —

(१) समुद्री-बीमा में बीमा कराते समय बीमा-योग्य हित की विद्यमानता आवश्यक नहीं होती, हानि होने के समय ही उसका होना पर्याप्त है; किन्तु अग्नि-बीमा कराते समय के अतिरिक्त हानि के समय भी उसका उपस्थित होना अपेक्षित होता है।

(२) समुद्री-बीमे में यदि बीमित वस्तु के लिये निर्धारित-मूल्य-पालिसी ली जाती है,तो बीमा कराने वाले को हानि होने पर हानि-पूर्ति के साथ सम्भावित लाभ का भी कुछ अंश प्राप्त हो जाता है; किन्तु अग्नि बीमे में वास्तविक हानि-पूर्ति के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता।

(३) सामुद्रिक बीमा की पालिसी बीमित को सूचित किये बिना भी किसी अन्य व्यक्ति के नाम में प्रदान (Assign) की जा सकती है; किन्तु अग्नि-बीमा की पालिसी बिना बीमक की अनुमति प्राप्त किये प्रदान नहीं की जा सकती।

अग्नि-बीमा संस्थाओं के प्रकार : ये दो प्रकार की होती हैं: (१) सदस्य संस्थाएँ (Tariff Offices) (२) असदस्य संस्थाएँ (Non-Tariff Offices)। सदस्य संस्था का आशय उस बीमा कम्पनी से होता है जो 'अग्नि-बीमा-संस्था-समिति'. (Tariff Association) की सदस्य होती है। इस समिति का कार्य अग्नि सम्बन्धी विभिन्न प्रकार की जोखिमों के लिए प्रीमियम की तालिकाएँ निश्चित करना है। उसकी सदस्य संस्थाएँ उन तालिकाओं का अनुसरण करती हैं। असदस्य संस्थाएँ उन तालिकाओं के अनुसार बीमे की दरें निश्चित नहीं करतीं। साधारणतः नवीन अग्नि-बीमा कम्प-

नियाँ सदस्य संस्थाओं के प्रीमियम को दरों से कुछ कम लेकर लाभ उठाने के लिये प्रयत्नशील होती हैं जिससे वे अग्नि-बीमा के क्षेत्र में अपनी स्थिति दृढ़ कर सकें। अतः वे उस समिति का सदस्य बनना अहितकर समझती हैं, क्योंकि सदस्य बन जाने पर उसके द्वारा निश्चित प्रीमियम की दरों को मानना उनके लिये अनिवार्य हो जायगा। किन्तु वास्तव में उन्हें इस कार्य से कुछ लाभ नहीं होता, कारण यह कि उनमें पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता का राज्य रहता है। सम्भवतः यही कारण है कि उनकी संख्या बहुत कम है और उनके हाथों में व्यवसाय भी किसी उल्लेखनीय मात्रा में नहीं है।

अध्याय २४

अग्नि-बीमे का कॉन्ट्रैक्ट

आधार भूत सिद्धान्त : अन्य बीमों के समान अग्नि-बीमा भी एक कॉन्ट्रैक्ट है। यह वह कॉन्ट्रैक्ट है जिसके अनुसार बीमक बीमित से प्राप्त प्रीमियम के विनिमय में किसी सम्पत्ति विशेष की अग्नि द्वारा हानि एक निर्धारित अवधि के भीतर होने पर एक निश्चित रकम की सीमा तक हानि-पूर्ति करता है। यह निम्नलिखित तीन सिद्धान्तों पर आधारित होता है :—

(१) क्षति-पूर्ति का सिद्धान्त।

(२) बीमा-योग्य हित का सिद्धान्त।

(३) पूर्ण विश्वास का सिद्धान्त।

क्षति-पूर्ति का सिद्धान्त (Principle of Indemnity) : इस सिद्धान्त पर हम 'सामुद्रिक बीमा' के अध्याय में पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं। अग्नि-बीमा में इस सिद्धान्त का विशेष महत्व है; क्योंकि वह पूर्णतः इसी पर निर्भर होता है। यदि कोई व्यक्ति अपनी किसी सम्पत्ति का अग्नि की जोखिम के विरुद्ध बीमा करा लेता है तो वह हानि होने पर उसे अपने बीमक से पूरा करा सकता है। इस हानि-पूर्ति का माप हानि होने के समय बीमित वस्तु का क्रय-मूल्य होता है। यदि कोई व्यक्ति अपने घर का दस सहस्र रूपये का बीमा एक वर्ष के लिये कराता है और पालिसी की अवधि के भीतर आग लग जाने से उसको ५००) रूपये की हानि होती है, तो उस व्यक्ति को बीमा कम्पनी से केवल पाँच सौ रूपये ही क्षति-पूर्ति में मिलेंगे। इससे अधिक उसे कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। संक्षेप

में यही क्षति-पूर्ति का सिद्धान्त है। इसके अनुसार बीमित व्यक्ति को हानि के उपरान्त ठीक उसी स्थिति में रख दिया जाता है जिसमें वह हानि होने के पूर्व था, उससे उत्तम अथवा निम्न स्थिति में नहीं। बीमा कम्पनियाँ इसी सिद्धान्त के आधार पर हानि-पूर्ति के दावों का भुगतान करती हैं।

यदि अग्नि-बीमा इस सिद्धान्त पर आधारित न होता, तो सम्भव था कि कोई भी व्यक्ति इस व्यवसाय को अंगीकार न करता। उसके अभाव में अग्नि-बीमा कराने वालों का विचार होता कि अपनी सम्पत्ति को जला कर हानि कर लेने से उन्हें उसके मूल्य से अधिक धन बीमा कम्पनी से प्राप्त हो सकता है। इस विचार धारा का परिणाम यह होता कि अवसर मिलने पर वे सदैव अपनी बीमित सम्पत्ति को भस्म कर के क्षति-पूर्ति का दावा करते और इस प्रकार लाभ उठाते। ऐसी परिस्थिति में यह बहुत सम्भव था कि यह कुछ लोगों का व्यवसाय बन जाता। क्षति-पूर्ति का सिद्धान्त सर्वसाधारण को उक्त नैतिक पतन से रोकता है क्योंकि वे जानते हैं कि उन्हें वास्तविक हानि से अधिक कुछ भी प्राप्त नही हो सकता। वैसे तो अनेक व्यक्ति आजकल भी समय-समय पर, बीमित वस्तु में स्वयं ही आग लगा कर अथवा किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा आग लगवा कर,बीमित धन वसूल कर लिया करते है। तथापि उक्त सिद्धान्त के कारण इस मनोवृत्ति को प्रोत्साहन नहीं मिलता; उससे एक अन्य दोष का जन्म और होता और वह यह कि अधिक दावे उत्पन्न होने के कारण बीमा कम्पनियों को निरन्तर अपने प्रीमियम की दरें बढ़ानी पड़ती। फलत: सत्यवादी एवं विश्वासपूर्ण व्यक्तियों को हानि होती और वे अग्नि-बीमा से विमुख रहते। सारांश यह है कि क्षति-पूर्ति के सिद्धान्त की अनुपस्थिति सर्वसाधारण को नैतिक पतन की ओर प्रवृत्त करती और अग्नि-बीमा वाणिज्य-व्यवसाय की उन्नति तथा सम्पत्ति की रक्षा का साधन न रह कर मनुष्यों को दुर्बल-चरित्र बनाने का साधन अवश्य बन जाता। यह सब समाज़ के हित में अत्यन्त अवांछनीय होता। कारण यह है कि उस स्थिति में उसका चारित्रिक अपकर्ष तो होता ही, साथ ही जन-धन की भी अपार हानि होती। जब कहीं अग्निकांड होता है, अथवा किसी वस्तु में

अग्नि लगती है तब केवल उसी स्थान अथवा वस्तु की ही हानि नहीं होती; प्रत्युत उसके समीपस्थ जितनी भी वस्तुएँ होती हैं, सभी क्षति-ग्रस्त हो जाती हैं।

अग्नि-बीमा की पालिसियाँ अधिकतर अनिर्धारित-मूल्य पालिसियाँ होती हैं, जिसके अनुसार हानि होने पर बीमित की वास्तविक क्षति की पूर्ति कर दी जाती है। किन्तु क्षति-पूर्ति की मात्रा पूर्व निर्धारित बीमित धन से अधिक नहीं हो सकती। इससे यह न समझना चाहिये कि बीमि तधन ही हानि-पूर्ति का माप होता है। कल्पना कर लीजिए कि किसी व्यक्ति ने पच्चीस हजार रूपये की एक अनिर्धारित-मूल्य-पालिसी ली है और उसकी बीमित सम्पत्ति का मूल्य चालीस हजार रुपया है। इस स्थिति में यदि उसकी पूर्ण क्षति हो जाती है तो उसे पच्चीस हजार रूपये ही क्षति-पूर्ति में प्राप्त होंगे—चालीस हजार नहीं; क्योंकि उसने बीमा पच्चीस हजार रूपये का ही कराया है। इसी प्रकार यदि उसे केवल पच्चीस हजार की ही हानि होती है तो भी उसे पूर्वधन उपलब्ध होगा। यह नियम निर्धारित-मूल्य-पालिसी में लागू नहीं होता।

वर्त्तमान समय में क्षति-पूर्ति के सिद्धान्त के क्षेत्र का विस्तार हो गया है। पहिले वह केवल स्पर्शनीय पदार्थों के विषय में ही लागू होता था अर्थात् अग्नि-बीमा केवल उन्हीं वस्तुओं का किया जा सकता था जो यथार्थ होती थी। हानि होने पर उन्ही के लिये हानि-पूर्ति दी जाती थी; किन्तु अब यह बात नही है। आजकल अवास्तविक वस्तुओं के सम्बन्ध में भी यह सिद्धान्त लागू होता है; जैसे, वास्तविक लाभ, वेतन, साख इत्यादि की हानि। जब किसी उद्योग-गृह में आग लगती है तब उसके उपकरणों की हानि तो होती ही है, साथ ही कुछ समय के लिये उत्पादन-कार्य भी बन्द कर देना पड़ता है। परिणाम स्वरूप उसके स्वामी को लाभ की क्षति होना स्वाभाविक है। ऐसी दशा में यदि अन्य विनष्ट वस्तुओं के साथ उसकी व्यापारिक हानि की भी पूर्ति न की जाय, तो उसके सम्मुख बड़ी विषम परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। अतः अग्नि-बीमा कम्पनियों ने इस जोखिम का भी बीमा करना आरम्भ कर दिया है। अग्नि की जोखिमों में ही उसे अन्तर्हित मान कर क्षति-पूर्ति के सिद्धान्तानुसार उसके प्रति व्यवहार किया जाता है।

बीमा-योग्य हित का सिद्धान्त (Principle of Insurable Interest) : अग्नि-बीमे में यह परमावश्यक है कि उसके विषय (Subject-matter) में बीमित का बीमा-योग्य हित हो। इससे रहित अग्नि-बीमा का कॉन्ट्रैक्ट अवैध समझा जाता है। कारण यह है कि वह क्षति-पूर्ति के सिद्धान्त पर आधारित होता है और यह सिद्धान्त बीमा-योग्य हित के सिद्धान्त पर निर्भर है। यदि इस शर्त को बिना पूरा किये ही बीमित की हानि-पूर्ति की जाय, तो वह क्षति-पूर्ति के सिद्धान्त के विरुद्ध होगी।

सामुद्रिक बीमे के समान ही बीमा-योग्य हित से विहीन अग्नि-बीमा भी जुए के कॉन्ट्रैक्ट से अधिक नहीं होता, जो कानून की दृष्टि में अनियमित होता है। नीचे हम अग्नि-बीमा में बीमा-योग्य हित के कुछ उदाहरण देते हैं :—

(१) स्वामी का उसकी सम्पत्ति में,

(२) महाजन का जमानत में ली हुई वस्तु में,

(३) ट्रस्टी का उसके पास सुरक्षार्थ रखी हुई वस्तुओं में,

(४) एजेन्ट का अपने मालिक के माल में, बीमा-योग्य हित होता है।

अग्नि-बीमे में बीमा-योग्य हित का होना केवल बीमा कराते समय ही आवश्यक नहीं होता, अपितु हानि होने के समय भी उसकी विद्यमानता परमावश्यक होती है। इन दोनों अवसरों पर उसकी उपस्थिति इसलिये अपेक्षित होती है कि अग्नि-बीमा करने वालों को नैतिक तथा भौतिक दोनों ही प्रकार की जोखिमें उठानी पड़ती हैं।

पूर्ण विश्वास का सिद्धान्त (Principle of Good Faith) : अग्नि-बीमे का कॉन्ट्रैक्ट एक पूर्ण विश्वास का कॉन्ट्रैक्ट होता है। इसलिये बीमित को प्रस्ताव-पत्र में मूलभूत तथ्यों का पूर्ण एवं विशद उल्लेख स्पष्ट शब्दों में करना चाहिये। जब उससे बीमा की जाने वाली सम्पत्ति के विषय में प्रश्न किये जायँ, उसे अपने उत्तरों में असत्यता का समावेश नहीं होने देना चाहिये। साथ ही किसी पहलू से सम्बन्धित आवश्यक बात को गुप्त भी रखना अवांछनीय है। सर्वोत्तम नीति यही है कि उसके विषय में जो कुछ भी उसे ज्ञात हो, यथार्थतः

बतला दे। किसी तथ्य को गूढ़ शब्दों में अथवा घुमा-फिराकर वर्णन करना भी वर्जनीय है। जो कुछ भी कहा जाय, वह स्पष्ट, सत्य और सारपूर्ण हो। कोई ऐसी बात परोक्ष में नहीं रखना चाहिये जिसके कारण भविष्य में सन्देह उत्पन्न होने की सम्भावना हो।

बहुधा बीमा-संस्थाएँ अपने परीक्षकों के द्वारा प्रस्तावित सम्पत्ति की जाँच कराती हैं और उन्ही की रिपोर्ट के आधार पर जोखिम स्वीकार करने अथवा न करने का निर्णय करती हैं। इस स्थिति में भी प्रस्तावक मूलभूत तथ्यों के पूर्ण प्रदर्शन तथा स्पष्टीकरण के अपने कर्त्तव्य से मुक्त नहीं होता। हाँ, इतना अवश्य होता है कि यदि वह किसी सत्य को बतलाना भूल जाय और परीक्षक ने उसे अपनी रिपोर्ट में निहित कर लिया हो, तो उसके लिये बीमा कम्पनी पालिसी रद नहीं कर सकती। 'किन्तु यह स्मरण रखना आवश्यक है कि परीक्षक की नियुक्ति कोई नियम नहीं है—उसे नियुक्त करना अथवा न करना सर्वथा कम्पनी की इच्छा पर निर्भर होता है।

यदि प्रस्तावक के पास बीमा कराई जाने वाली वस्तु के अतिरिक्त भी अन्य मूल्यवान पदार्थ हैं (प्राचीन चित्र, प्रतिमा, पुस्तकें, जवाहरात आदि) तो उसे उनकी सूचना कम्पनी को अवश्य देनी चाहिये, जिससे उन्हें कॉन्ट्रैक्ट-पत्र में पृथक् रूप से प्रगट किया जा सके। किन्तु केवल इस प्रकार सूचना देने मात्र से ही उनका उत्तरदायित्व कम्पनी पर नही चला जाता। इसके लिये यह भी आवश्यक है कि विशेषज्ञों द्वारा उनका प्रामाणिक मूल्य ज्ञात करके कम्पनी को बतलाया जाय। अग्नि-पालिसी में उस स्थान का उल्लेख रहता है जहाँ बीमित सम्पत्ति अवस्थित रहती है। जब कभी उसे वहाँ से स्थानान्तरित करने की आवश्यकता हो तब उसकी सूचना कम्पनी को पहले से देनी चाहिये। इसके अतिरिक्त उस स्थान की दशा, उसके पड़ोस, बीमित तथा उसके साथ रखी जाने वाली वस्तुओं की श्रणी और स्वभाव, अग्नि-शमनार्थ संगृहीत उपकरण इत्यादि बातों से भी बीमक को परिचित कराना चाहिये। इन्हीं सब बातों के आधार पर प्रीमियम की दर निश्चित की जाती है। ईट और चूने से निर्मित साधारण आवास के लिये,

जिसके निकट कोई उद्योग-गृह आदि नहीं होता, अग्नि-बीमे के प्रीमियम की दर बीमित धन का लगभग २) रू० प्रतिशत होती है। किन्तु जो निवास-गृह कारखानों के समीप होते हैं अथवा जिनमें आग लग जाने की आशंका अधिक होती है, उनके लिये वह अधिक होती है।

इस सम्बन्ध में यह कहना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि पूर्ण विश्वास के सिद्धान्त का प्रयोजन कॉन्ट्रैक्ट करते समय अपेक्षित तथ्यों को प्रगट कर देने मात्र से ही पूर्ण नही हो जाता। उसके पूर्ण पालन के लिये बीमक तथा बीमित के मध्य पारस्परिक सहानुभूति भी होनी चाहिये; अर्थात् आवश्यकता पड़ने पर बीमक को हानि से बचाने के लिये उचित कार्यवाही करना और जोखिम में किसी प्रकार का परिवर्तन होने पर उसकी सूचना उसे भेजना बीमित का कर्तव्य है। यदि वह ऐसा नहीं करता तो पूर्ण विश्वास के सिद्धान्त का उल्लंघन करता है।

अग्नि-बीमा कराने की विधि

प्रस्ताव : अन्य कॉन्ट्रैक्टों की भाँति अग्नि-बीमे का कॉन्ट्रैक्ट भी प्रस्ताव और उसकी स्वीकृति के द्वारा होता है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रस्ताव सदैव लिखित ही हो, वह मौखिक भी हो सकता है। किन्तु भविष्य में किसी प्रकार की दुर्भावना उत्पन्न न होने देने और पारस्परिक विश्वास को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये लिखित प्रस्ताव ही किये जाते हैं। प्रस्ताव-पत्र कम्पनी की ओर से निःशुल्क मिलते हैं। उनमें सम्पत्ति से सम्बन्धित अनेक प्रश्न होते हैं, जिनके उत्तर प्रस्तावक को लिखने पड़ते हैं। उसमें कितने और किस प्रकार के प्रश्न होंगे, यह पालिसी की किस्म, प्रस्तावित सम्पत्ति के स्वभाव आदि पर आश्रित होता है।

प्रस्ताव-पत्र बीमा कॉन्ट्रैक्ट का आधार होता है। अतः उसके रिक्त स्थानों की पूर्ति करने में बड़े मनोवेग और सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। उसमें वांछित यथार्थ सूचना ही देनी चाहिये और प्रत्येक मूलभूत तथ्य को अंकित कर देना चाहिये। यदि भूल अथवा अनभिज्ञता के कारण भी प्रस्तावक किसी मूलभूत तथ्य को प्रगट नहीं करता, तो भी बीमा कम्पनी पीछे से उसके वैसा प्रमाणित होने पर कॉन्ट्रैक्ट को रद कर सकती है। वह प्रत्येक तथ्य मूलभूत समझा जाता

है, जो बीमक को बीमा-प्रस्ताव स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के निर्णय में सहायता दे। इसी प्रकार यदि प्रस्तावक किसी बात को जान-बूझ कर गुप्त रखता है अथवा कुप्रतिनिधित्व करता है अर्थात् बात बतलाता है किन्तु असत्य, तो यह धोखा समझा जायगा। ऐसी अवस्था में बीमक को बीमा कॉन्ट्रैक्ट रद करने का अधिकार होता है। इन सब बातों के अतिरिक्त यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि जो कुछ प्रस्ताव-पत्र में लिखा जाय वह पूर्णतः स्पष्ट, सरल, और अपने साधारण अर्थ में ही हो, जिससे उसके दो अर्थ न निकल सकें। यदि प्रस्तावक ने कोई बात किसी एक अर्थ से लिखी है; किन्तु बीमा कम्पनी उसका कोई अन्य अर्थ निकालती है तो इस प्रकार का कॉन्ट्रैक्ट अस्पष्टता के कारण अवैध हो जायगा।

बीमित धन की संख्या लिखते समय यह स्मरण रखना चाहिये कि वास्तविक मूल्य से अधिक धन का बीमा कराने से कोई लाभ नही होता; क्योंकि हानि होने पर 'क्षति-पूर्ति' के सिद्धान्तानुसार सम्पत्ति के क्षति-ग्रस्त अथवा क्षत होने के समय के क्रय अथवा बाजार-मूल्य से अधिक धन हानि-पूर्ति के रूप में प्राप्त नहीं हो सकता। इस प्रकार आवश्यकता से अधिक रकम का बीमा पूर्णतः निरर्थक होता है—इससे किसी प्रकार का हित-साधन तो होता नहीं, हानि अवश्य होती है क्योंकि अधिक बीमित धन के लिये अधिक प्रीमियम देना पड़ता है।

प्रतिष्ठा का प्रमाण (Evidence of Respectability) : हम पहले ही कह चुके हैं कि अन्य बीमों की अपेक्षा अग्नि-बीमा में नैतिक जोखिम सर्वाधिक मात्रा में होती है; अर्थात् इसकी बहुत अधिक सम्भावना रहती है कि बीमित धन प्राप्त करने के उद्देश्य से बीमित स्वयं ही अथवा किसी अन्य प्रकार से अपनी सम्पत्ति नष्ट कर दे। इस प्रकार की जोखिम से बचने का प्रयत्न करना बीमा कम्पनी के लिये स्वाभाविक ही है। अतः जब बीमा कराने का इच्छुक व्यक्ति उसके पास अपना प्रस्ताव-पत्र भेजता है, तब वह उसकी ईमानदारी, सत्यता और सद्व्यवहार का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उससे प्रमाण माँगती है। यदि प्रस्तावक ईमानदार और प्रतिष्ठित व्यक्ति नहीं होता तो कम्पनी उसका बीमा-प्रस्ताव स्वीकार नहीं करती।

प्रस्तावित सम्पति की परीक्षा : प्रस्ताव पास करने के पश्चात् यदि आवश्यक होता है, तो कम्पनी अपने किसी परीक्षक को सम्पत्ति की जाँच करने के लिये भेजती है। प्रायः अल्प मूल्यवान वस्तुओं, निवास-गृहों आदि के बीमों के लिये उसकी आवश्यकता नहीं होती। प्रस्ताव-पत्र में विहित सूचनाओं पर ही विश्वास करके उनका बीमा कर लिया जाता है। किन्तु बड़ी रकमों के बीमों में, जिनमें कम्पनी को अधिक जोखिम उठानी पड़ती है, प्रस्तावित सम्पत्ति की परीक्षा अवश्यमेव कराई जाती है। परीक्षक की रिपोर्ट के आधार पर ही कम्पनी प्रस्ताव स्वीकार करने अथवा न करने का निश्चय करती है।

प्रस्ताव की स्वीकृति : यदि बीमा कम्पनी प्रस्ताव स्वीकार करने का निर्णय करती है तो इसकी सूचना प्रीमियम की दर सहित प्रस्तावक को यथा समय दे दी जाती है। जब प्रस्तावक प्रीमियम की प्रथम किस्त चुका देता है तब बीमा कॉन्ट्रैक्ट परिपूर्ण हो जाता है और कम्पनी पर जोखिम का भार आ जाता है। यदि प्रीमियम प्राप्त करने के पूर्व ही पालिसी बीमित को दे दी जाती है, तो पालिसी देने के समय ही कॉन्ट्रैक्ट पूर्ण समझ लिया जायगा। प्रीमियम न चुकाए जाने का उस पर कोई प्रभाव नही पड़ता।

अस्थायी पालिसी : जैसे ही प्रस्तावक कम्पनी को प्रीमियम की पहली किस्त देता है, वह एक अस्थाई बीमा-पत्र तैयार करके उसे भेज देती है। पालिसी के निर्माण तथा बीमित को उसके प्राप्त होने के अन्तर्काल में उसका वही उपयोग होता है जो वास्तविक पालिसी का।

पालिसी : कॉन्ट्रैक्ट हो जाने के पश्चात् कुछ समय में पालिसी प्रस्तुत हो जाती है और उसे बीमित के पास भेज दिया जाता है। उसमें कॉन्ट्रैक्ट से सम्बन्धित शर्तें अंकित रहती है। वैधानिक दृष्टिकोण से पालिसी की वैधता के लिये उसका किसी विशेष अथवा प्रकल्पित रूप में होना आवश्यक नहीं होता। तथापि इंगलैण्ड की अग्नि-बीमा संस्था-समिति (Fire Offices Committee) द्वारा निर्मित अग्नि-बीमा पालिसी के स्वरूप का अधिकांशतः अनुकरण किया जाता है।

जोखिम : अग्नि-बीमे की जोखिम उस समय से आरम्भ होती है जब बीमित को अस्थाई बीमा-पत्र या प्रीमियम-प्राप्ति की रसीद अथवा कुछ ऐसा ही अन्य दस्तावेज प्राप्त हो जाता है। उसका अन्त उस समय होता है जब पालिसी में अंकित अवधि समाप्त हो जाती है। साधारणतः अग्नि-बीमा पालिसियाँ एक वर्ष के लिये ली जाती हैं। इससे न्यूनाधिक समय के लिये भी ली जा सकती हैं। एक वर्ष से कम समय के लिये ली हुई 'अल्पकालीन' तथा अधिक समय के लिये ली हुई 'दीर्घकालीन' पालिसियाँ कहलाती हैं। दीर्घकालीन पालिसियों को प्रतिवर्ष चालू (Renew) कराना आवश्यक होता है। उसे पुनः चालू करना अथवा रखना बीमक और बीमित की इच्छा पर आश्रित होता है। जो हो, बीमा कॉन्ट्रैक्ट की समाप्ति पर कम्पनी बीमित को उसकी सूचना देती है और साथ ही पालिसी के पुनर्चलन (Renewal) के लिये पन्द्रह दिन की अवधि भी। किन्तु उसका यह कार्य कानूनन आवश्यक नही होता। इस पंद्रह दिन की अवधि में हानि होने पर भी वह उसकी पूर्ति करती है। परन्तु यदि उसे इस बात का प्रमाण मिल जाय कि बीमित पालिसी को पुनः चालू कराने का अभिलाषी नहीं था, तो वह उस हानि की पूर्ति नही करेगी।

वास्तव में अग्नि-पालिसी का पुनर्चलन एक नवीन, कॉन्ट्रैक्ट के समान होता है। अतः यदि जोखिम की मात्रा में कुछ परिवर्तन हो गया हो, तो उसकी सूचना कम्पनी को देना बीमित के लिये अनिवार्य होता है। पुनर्चलन के समय बीमा कम्पनी को यह पूरा अधिकार होता है कि वह पालिसी को चालू करे अथवा नहीं। वह उसके लिये पहले से अधिक प्रीमियम भी वसूल कर सकती है।

पालिसी की जब्ती (Forfieture of a Fire Policy) : कुछ स्थितियों में बीमा कम्पनी पालिसी को जब्त घोषित कर के रद कर देती है। उनमें से कतिपय निम्न लिखित हैं :—

(१) प्रीमियम की किस्त का यथा समय न चकाया जाना।

(२) जोखिम का असत्य वर्णन होना।

(३) उसे बिना सूचना दिये और अनुमति प्राप्त किये ही बीमित-सम्पत्ति का स्थानान्तरित अथवा बिक्री होना।

(४) बीमित सम्पत्ति में किसी नवीन जोखिम का संबद्ध किया जाना।

(५) उसे धोखा देने के उद्देश्य से अथवा स्वेच्छापूर्वक सम्पत्ति को हानि पहुँचाना।

(६)• प्रवंचनापूर्वक दावे का उपस्थित किया जाना।

(७) हानि होने पर उसका सन्तोषजनक प्रमाण उपस्थित न कर सकना, इत्यादि।

अग्नि-पालिसी का प्रदान (Assignment of Fire Policy) : जब बीमित व्यक्ति अपनी बीमित सम्पत्ति को किसी अन्य व्यक्ति के हाथ बेच देता है, तब उसमें उसके स्वामित्व का अन्त हो जाने के कारण अग्नि-बीमा के कॉन्ट्रैक्ट में उसका बीमा-योग्य हित भी समाप्त हो जाता है। यही बात बन्दरगाहों आदि के गोदामों में रहने वाले माल के विषय में भी, जिसका निरन्तर क्रय-विक्रय होता रहता है, सत्य है। इंगलैण्ड के बीमा-कानून के अनुसार उक्त अवस्थाओं में अग्नि द्वारा माल की हानि होने पर उसकी पूर्ति के लिये, बीमा-योग्य हित का अन्त हो जाने के कारण, बीमा कम्पनी तनिक भी उत्तरदायी नही होती। माल अथवा सम्पत्ति के क्रेता-विक्रेता में से कोई भी पहले ली हुई पालिसी के अनुसार क्षति-पूर्ति प्राप्त नहीं कर सकता। विक्रेता तो इसलिये उसे प्राप्त नही कर सकता कि बीमित वस्तु में उसके बीमा-योग्य हित का अन्त हो गया है और क्रेता इस कारण कि बीमा कम्पनी से उसका कोई कॉन्ट्रैक्ट नहीं है। अन्य शब्दों में कह सकते हैं कि अग्नि-बीमा पालिसी का प्रदान नहीं हो सकता। अतः जिस प्रकार एक समुद्री पालिसी का ही प्रदान हो सकता है, अग्नि-पालिसी का नहीं। यदि वह आवश्यक हो, तो इस विषय में बीमक की आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिये। किन्तु पालिसी की अवधि के भीतर ही बीमित सम्पत्ति को वसीयत नामा अथवा किसी प्रचलित विधान के अन्तर्गत हस्तान्तरित करने पर उपर्युक्त नियम लागू नहीं होता, क्योंकि यह अवस्था प्रदान से पूर्णतः भिन्न है। अतएव कह सकते हैं कि अग्नि-बीमे का कॉन्ट्रैक्ट एक विशेष प्रकार का कॉन्ट्रैक्ट होता है जिसमें व्यक्तिगत सुरक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

अध्याय २४ का परिशिष्ट

(प्रस्ताव-पत्र का एक नमूना)

Agency————————— P/Note No.————————

PROPOSAL FORM FOR FIRE INSURANCE

Policy No. ————————

General Insurance Co. Ltd.

Head Office :—..BOMBAY

ʼull Name of Proposer

ʼesidential Address

ʼusiness or Profession

ʼeriod of Insurance ; From -19 to -19

Please insure as follows :

	Sum Insured	Rate As a	Premium
On the Building (s) known as (A) ______ Rs.			
(B) ______ Rs.			
(C) ______ Rs.			
On Household Furniture and Personal effects ______ Rs.			
On Business Furniture, Fixtures, Fittings & Utensils ______ Rs.			
On Merchandise and Stock-in-trade consisting of ______ Rs.			
______ Rs.			
(State whether in Shop or Godown) ______			
On Machinery ______ Rs.			
On ______ Rs.			
Total Rs.			

The above property is situated at :

Street / Municipal No. ______ Name of Street ______ Town ______ District ______

Note :—It is most desirable that the property should be insured for its FULL VALUE, as only a proportionate amount of any loss would be recoverable in case of under-insurance.

A sketch plan should be drawn on the back of this form the lay-out of the premises

and the distance between each buildings, in the event of the premises comprising two or more buildings separated form each other by a perfect party wall, a separate sum insured, may please be declared on each.

The said Building is ground floor and ______ upper storeys in height.

The walls are built of ______ Partitions (if any) of ______

The floors of ______ and the roof of ______

is lighted by ______ and heated by ______

The said Building belongs to ______ of ______

The following questions are to be answered by the proposer :—

By whom are the Premises occupied?	
Are any Hazardous goods as per list over-leaf stored in the Building?	
(Please give full particulars of how each portion of the premises is occupied and, if any goods are stored therein, please state their nature.)	
If any trade or process of manufacture carried on, give full particulars.	
Please give details of adjoining and adjacent **Property**. Is the Building detached, or does it adjoin other Buildings?	

If Other Buildings adjoin or are situated **Within** 50 feet, state construction and how occupied.

	CONSTRUCTION		How Occupied
	Of Walls	Of Roof	
(*a*) Building to the North?	(*a*)		
(*b*) Building to the South?	(*b*)		
(*c*) Building to the East?	(*c*)		
(*d*) Building to the West?	(*d*)		

If the proposed Insurance applies to business premises, state how long you have carried on business in the present premises, and if in other premises, where?

Also state:

(*a*) How frequently Stock is taken?

(*b*) Is a proper set of Account Books kept?

(*c*) Are the Account Books locked up in a fire-proof Safe, or removed to another Building at all times when the premises are not open for business purposes?

Name of Company	Amount Insured	Premium	Period of Insurance

[illegible] previously insured or are there any existing Insurances with this or any other Company on the same property? If so, state :	(a) (b) (c)
Has any other Company : (a) declined to insure this or any other property belonging to you? (b) cancelled your policy? (c) or refused to renew your policy? If so, state name of Company and full particulars.	(a) (b) (c)
Have you ever suffered a loss by Fire? If so, state full particulars.	

This Proposal is Subject to Section 41 of the Indian Insurance Act, 1938, which reads as follows :

"(1) No person shall allow or offer to allow, either directly or indirectly, as an inducement to any person to take out or renew or continue an insurance in respect of any kind of risk relating to lives or property in India any rebate of the whole or part of the commission payable or any rebate of the premium shown on the policy, nor shall any person taking out or renewing or continuing a policy accept any rebate, except such rebate as may be allowed in accordance with the published prospectuses or tables of the insurer.

(2) Any person making default in complying with the provisions of this section shall be punishable with fine which may extend to one hundred rupees, unless the default is made by a person taking out or renewing or continuing a policy, in which case he shall be punishable with fine which may extend to fifty rupees only".

I/We ——————— being desirous of effecting an insurance with THE ——— GENERAL INSURANCE COMPANY, LIMITED, as above do hereby declare that the above statements are true and complete; that I/We have not concealed anything material to be known to the Company, and that the sums proposed for insurance represent the fair value of the property to be insured.

I/We undertake to pay the premium when called upon to do so.

Date ——————— 19 ——— *Signature of Proposer* ———————

List of Goods deemed Hazardous.

Acetylene (liquid)
Acid of all kinds (except Acetic, Citric and Tartaric)
Bamboo Mats
Benzoline
Bicaromate of Potash
Bi-Sulphide of Carbon
Bitumen
Blacks, viz. Bone Black. Lamp Black and Vegetable Black
Calcium Carbide
Calcium Cyanamid (except when packed in hermetically sealed drums and each consignment accompanied by the manufacturer's certificate that the tins contain not more than 1-3 per cent, of carbide)
Camphone
Camphor
Candles
Caustic potash
Celluloid and Xylonite, and orher similar substances
Charcoal, vegetable (powdered)
Chlorates of all kinds
Cinematograph Films
Codilla
Coir Yarn, Coir Matting and Coir Rope
Copra, Copra Cake and Copra Meal
Cotton (whether in fully pressed bales or otherwise)
Explosives of all kinds (including percussion Caps)
Fireworks of all kinds
Fish Guano and Fish Manure
Ghee (other than vegetable Ghee in tins aud/or in bottles)
Glycerine
Grass Mats (other than in fully pressed bales)
Grasses of all kinds and Straw
Gunnies (other than in fully pressed bales)
Hessians (other than in fully pressed bales)
Jute (in fully pressed bales or otherwise)
Lime
Lubricants containing mineral oil or other mineral products
Motches of all kinds
Metallic potassium
Mungo
Naphtha
Naphthaline
Nitrates of all kinds
Nitrate of potash
Oils of all kinds (other than vegetable oils in tins not exceeding 10 lbs in weight and/or in bottles)
Oilseed cake (including cotton seed cake)
Oilseed Meal
Paints (liquid)
Perchlorate of potash
Permanganate ot potash
Peroxide of potash (potassium peroxide)
Petroleum and its liquid products
Phosphorus
Pitch
Rags
Resin of all kinds
Sawdust and Aluminium powder (either mixed or separate)
Shoddy
Spirits of all kinds (other than in bottles)
Stearine
Sulphides, metallic, of all kinds
Sulphide of potash
Sulphur
Sulphur Dyes or colours (excluding those packed in airtight metal vassels labelled with a certificate by the manufacturers that the Dyes (or colours) contain at least 10 per cent. of inert inorganic salts)
Tallow (manufactured or unmanufactured)
Tar and/or its liquid products (other than in bottles)
Turpentine
Vegetable Fibres of all kinds
Waste of all kinds (excluding silk and tea waste)
Wax of all kinds

अध्याय २५

बीमा पालिसी के प्रकार

अग्नि की जोखिमें विभिन्न प्रकार, श्रेणी और स्वभाव की हुआ करती हैं। अतः बीमा कराने के इच्छुक व्यक्तियों की आवश्यकता-पूर्ति के लिये बीमा कम्पनियाँ विविध प्रकार की पालिसियों का आयोजन करती हैं। उनमें से कुछ प्रमख प्रकार की पालिसियों का संक्षिप्त विवरण हम निम्नांकित पंक्तियों में दे रहे हैं :—

निर्धारित-मूल्य पालिसी (Valued Policy) इसमें बीमा होने वाली सम्पत्ति का मूल्य बीमा कराने के समय ही निश्चित करके पालिसी में अंकित कर दिया जाता है। पीछे से अग्नि द्वारा उसकी पूर्ण हानि होने पर वही पूर्व निर्धारित मूल्य बीमित व्यक्ति को क्षति-पूर्ति में दिया जाता है। इस सम्बन्ध में क्षति-पूर्ति का यही माप होता है। हानि के समय उस वस्तु का क्रय अथवा बाजारी मूल्य पूर्व निश्चित मूल्य से अधिक होता है तो बीमित को कुछ हानि उठानी पड़ती है। इसका कारण यह है कि उसे हानि-पूर्ति में अपनी विनष्ट सम्पत्ति का बाजारी मूल्य नहीं मिल सकता—केवल पहले से निश्चित मूल्य ही प्राप्त होगा। इसकी विपरीत अवस्था में बीमित को क्षति-पूर्ति में निर्धारित-मूल्य मिलने के कारण लाभ भी हो सकता है।

इस प्रकार हम यह स्पष्ट देखते हैं कि निर्धारित-मूल्य पालिसियों में निश्चयता का भाव रहता है। साथ ही दावे के भुगतान में बीमित को बाजार-मूल्य से अधिक धन हस्तगत हो सकने के कारण क्षति-पूर्ति के सिद्धान्त पर भी कुठा-

राघात होता है। अतएव प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार की पालिसियाँ कहाँ तक कानूनन मान्य हैं। अंग्रेजी न्यायालयों के निर्णयों के अनुसार निर्धारित-मूल्य पालिसी में क्षति-पूर्ति के सिद्धान्त का उल्लंघन होता तो अवश्य है; किन्तु जब उसके दोनों पक्ष बीमा कॉन्ट्रैक्ट की शर्तों के अनुसार क्षति-पूर्ति में एक निश्चित रकम देने और पाने के लिये प्रस्तुत हो जाते हैं तब वास्तविक क्षति का—वह कितनी है, निर्धारित मूल्य से अधिक अथवा कम—कॉन्ट्रैक्ट से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। अतः वह कॉन्ट्रैक्ट की वैधता को प्रभावित नहीं कर सकती।

कुछ परिस्थितियों में उक्त पालिसियाँ अन्यन्त उपयोगी और हितपूर्ण प्रमाणित होती हैं, विशेष कर उन वस्तुओं के सम्बन्ध में जिनका प्रत्येक समय बाजारी मूल्य ज्ञात करना सरल नहीं होता। कभी-कभी विशेषज्ञों को ऐसी सम्पत्तियों के मूल्य का अनुमान लगाने के निमित्त नियुक्त किया जाता है। क्षति-पूर्ति के सिद्धांत का यथाशक्ति पालन करने के लिये समय-समय पर उनका मूल्यांकन और तदनुसार, बीमित-धन को ठीक करने की भी व्यवस्था पालिसियों में रहती है।

औसत पालिसी (Average Policy) : औसत पालिसी में 'औसत वाक्यांश' (Average Clause) सन्निहित रहता है। इसके अनुसार आवश्यकता से कम धन का बीमा (Under Insurance) कराने वालों को हानि का एक भाग स्वयं सहन करना पड़ता है। अग्नि पालिसियों में प्रायः यह वाक्यांश लिखा रहता है। अतः, यह कहा जा सकता है कि वे बहुधा 'औसत पालिसियाँ' ही होती हैं। किन्तु वर्त्तमान समय में 'औसत वाक्यांश' का प्रयोग क्रमशः घटता जा रहा है। औसत पालिसियों का योरूप और अमेरिका के देश में विशेष प्रचार है। इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिये कि जब बीमित-धन सम्पत्ति के मूल्य के तुल्य अथवा उससे अधिक होता है तब औसत वाक्यांश भावहीन हो जाता है। यदि हानि के समय सम्पत्ति का बाजार-मूल्य (Market Value) बीमित-धन से अधिक है तो बीमित को क्षति-पूर्ति में सम्पूर्ण बीमित धन प्राप्त नहीं होगा। सम्पत्ति के मूल्य और बीमित धन

के अनुपात में ही बीमा कम्पनी उसे क्षति-पूर्ति देगी। हानि होने पर क्षति-पूर्ति का परिमाण निम्नांकित गुर से ज्ञात किया जाता है—

$$\frac{\text{बीमित धन} \times \text{हानि}}{\text{हानि के समय बीमित सम्पत्ति का क्रय अथवा बाजारी मूल्य}} = \text{क्षति-पूर्ति का परिमाण}$$

उदाहरण के लिये किसी सम्पत्ति का ९,०००) का बीमा कराया गया था। अग्नि के कारण उसे ६,०००) की हानि होती है और क्षति के समय उसका मूल्य २७,०००) था। इस दशा में उक्त गुर के अनुसार बीमित को केवल २,०००) ही क्षति-पूर्ति में प्राप्त हो सकेंगे।

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि यदि किसी एक ही सम्पत्ति की कई अग्नि-पालिसियाँ ली जायँ और उनमें से एक में औसत का वाक्यांश निहित हो, तो वह सभी पालिसियों में लागू होता है। कभी-कभी इस वाक्यांश की कठोरता को कम करने के लिये पालिसी में ४० %, ५० %, ७५ %, ८० %, आदि शर्तें जोड़ दी जाती हैं। ५० % की शर्त अंकित रहने का आशय यह होगा कि यदि बीमित धन सम्पत्ति के मूल्य से ५० % से कम है तो उन दोनों के अन्तर के लिये बीमित स्वयं ही बीमक समझा जायगा और उनके अनुपात में उसे हानि भी सहन करनी पड़ेगी।

खुली पालिसी (Open or Floating Policy): अनेक बड़े-बड़े व्यापारियों का माल उनके गोदामों के अतिरिक्त बन्दरगाहों, स्टेशनों आदि के गोदामों में भी, उसे सुविधा पूर्वक स्थानान्तरित करने के उद्देश्य से पड़ा रहता है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानों पर अवस्थित माल का पृथक्-पृथक् बीमा कराना उनके लिये दुष्कर होता है। अतः उनके हित के दृष्टिकोण से बीमा कम्पनियाँ खुली पालिसियाँ निकालती हैं। एक खुली पालिसी के अन्तर्गत एक बड़ी रकम का बीमा करा लिया जाता है। उसमें अंकित धन की सीमा तक किसी भी स्थान अथवा स्थानों के माल का अग्नि द्वारा विनाश अथवा क्षति होने पर बीमक से उसकी पूर्ति कराई जा सकती है। ऐसी पालिसियों में 'औसत' की शर्त का वाक्यांश

तो सदा रहता ही है, 'सामुद्रिक' शर्त भी साधारणतः सबद्ध कर दी जाती है। 'सामुद्रिक' शर्त का आशय यह है कि जिस समय अग्नि-बीमा कराया जाता है, उस समय यदि कोई जोखिम बीमित वस्तु पर पहले से ली गई सामुद्रिक पालिसी में निहित है अथवा यदि अग्नि-पालिसी न ली जाती तो सामुद्रिक पालिसी में निहित होती,तो प्रस्तुत अग्नि-पालिसी में उक्त जोखिम को स्थान नहीं मिलेगा, अर्थात् अग्नि-बीमक उससे उत्पन्न हानि की पूर्ति नहीं करेगा। इस सम्बन्ध में प्रीमियम की दर निकालने के लिये पहले उस प्रत्येक स्थान के लिये, जहाँ माल पड़ा हुआ है उसकी जोखिम के अनुसार पृथक् दरें निश्चित कर ली जाती हैं। इन दरों का औसत ही प्राप्तव्य प्रीमियम की दर होती है।

विशिष्ट पालिसी (Specific Policy) : इसमें 'औसत' की शर्त लागू नहीं होती। फलतः, आवश्यकता से न्यून धन का बीमा कराने पर बीमित को किसी प्रकार की हानि नहीं उठानी पड़ती। विशिष्ट पालिसी किसी निश्चित रकम के लिये ली जाती है। अधिक से अधिक उतना ही धन क्षति-पूर्ति में प्राप्त हो सकता है। मान लीजिए कि किसी घर पर चार हजार रूपये की अग्नि-पालिसी ली जाती है। उस पर उतने ही धन की हानि भी होती है। इस अवस्था में बीमा कम्पनी से सम्पूर्ण बीमित धन अर्थात् चार हजार रूपये क्षति-पूर्ति में प्राप्त हो सकते हैं। चार हजार से अधिक रूपयों की हानि होने पर भी बीमित-धन ही बीमित को प्राप्त होगा। किन्तु उक्त रकम से कम हानि होने पर क्षति-पूर्ति में उतना ही धन दिया जायगा जितने की क्षति हुई है क्योंकि 'क्षति-पूर्ति' के सिद्धान्तानुसार क्षति-पूर्ति का परिमाण वास्तविक क्षति से अधिक नहीं होना चाहिये। सारांश यह है कि इस सम्बन्ध में सम्पत्ति के क्षति-ग्रस्त होने के समय बीमित वस्तु का बाजारी मूल्य क्या था, इसका कोई महत्त्व नहीं होता।

अतिरिक्त पालिसी (Excess Policy) : यह उन व्यापारियों के लिये बहुत उपयोगी होती है जिनके माल का स्टाक प्रायः न्यूनाधिक हुआ करता है। यदि उसके लिये किसी निश्चित रकम की पालिसी ली जाय तो उस समय जब कि वह उस निश्चित धन से अधिक मूल्य का होगा, हानि होने

पर बीमित का उद्देश्य सफल न हो सकेगा, क्योंकि उस अवस्था में वह हानि से सुरक्षित नहीं रह सकता। इस कठिनाई से बचाने के लिये बीमा-कम्पनी 'अतिरिक्त पालिसी' देती है। इसके अनुसार अधिकतम मूल्य का स्टाक हो जाने की सम्भावना के विरुद्ध पालिसी नहीं लेनी पड़ती; अपितु जितने मूल्य का स्टाक साधारणतः व्यापारी के पास रहता है उसी के आधार पर एक साधारण पालिसी लेनी होती है। उसके साथ-साथ स्टाक के अधिक होने की सम्भावना के लिये एक अतिरिक्त पालिसी और ली जाती है। प्रत्येक मास के अन्त में स्टाक के घटने-बढ़ने की सूचना कम्पनी को दी जाती है। इस सूचना के आधार पर आश्रित-औसत के अनुसार प्रीमियम वसूल किया जाता है। उदाहरण के लिये यदि किसी व्यापारी के स्टाक में सामान्यतः बीस हज़ार रूपये का माल रहता है जो कभी-कभी बढ़कर पच्चीस-हजार तक पहुँच जाता है तो उसे बीस हजार रूपये की एक साधारण पालिसी और पाँच हज़ार की अतिरिक्त पालिसी लेनी होगी।

घोषित-मूल्य पालिसी (Declaration Policy) : प्रायः अग्नि-पालिसियों में औसत की शर्त रहती है। अतिरिक्त पालिसी भी उससे मुक्त नहीं होती। उसमें औसत की विद्यमानता बीमित के लिये विपत्ति उपस्थित कर सकती है। इस परिस्थिति से मुक्ति-प्राप्ति का साधन 'घोषित-मूल्य पालिसी' है। इसके लिये बीमित को यह घोषणा करनी पड़ती है कि उसका स्टाक किसी भी समय अधिकाधिक कितने मूल्य का हो सकता है। उसी अधिकतम घोषित मूल्य की सीमा तक बीमा कम्पनी क्षति-पूर्ति करने का उत्तरदायित्व लेती है। उक्त मूल्य के ¾ धन पर अस्थाई रूप में बीमित को प्रीमियम आरम्भ में चुकाना पड़ता है। वास्तविक प्रीमियम प्रति मास स्टाक के घोषित-मूल्य के अनुसार वसूल किया जाता है; अर्थात् वह उनके औसत पर आधारित होता है। अधिकतम मूल्य का उससे कोई सम्बन्ध नहीं होता।

व्यवस्थापन-पालिसी (Adjustment Policy): बीमित अपनी इच्छानुसार किसी भी रकम के लिये घोषित-मूल्य पालिसी ले सकता है। उसे प्रीमियम

भी बीमित धन के अनुसार नहीं देना पड़ता। समय-समय पर स्टाक के घोषित मूल्यों के औसत पर ही देता है। इस प्रकार अधिकतर स्टाक में रहने वाले माल के मूल्य से कहीं अधिक का बीमा वह सरलता-पूर्वक करा सकता है। साथ ही बीमित-धन के ७५ % के लिये ही उसे प्रीमियम अग्रिम चुकाना पड़ता है और आवश्यकता से अधिक होने पर उसकी अतिरिक्त रकम उसे वापिस मिल जाती है। इन परिस्थितियों में यदि बीमित बेईमानी करना चाहे अथवा कम्पनी को ठगने का प्रयत्न करे तो स्पष्टतः अत्यन्त सरलता से सफल हो सकता है।

इन विषमताओं से सुरक्षित रहने के निमित्त बीमा कम्पनियों ने व्यवस्थापन-पालिसियों का प्रारम्भ किया है। इस प्रकार की पालिसी के अनुसार बीमा कराते समय अवस्थित स्टाक के मूल्य के लिये पालिसी दी जाती है और उसी के आधार पर प्रीमियम लिया जाता है। तदुपरान्त जब-जब उसमें अधिकता अथवा न्यूनता घोषित की जाती है, तब-तब प्रीमियम की दर में भी आवश्यक परिवर्तन कर दिया जाता है। घोषित-मूल्य और व्यवस्थापन-पालिसियों का अन्तर प्रदर्शित करने के लिये एक उदाहरण अधिक लाभदायक होगा। मान-लीजिए कि दस हजार रूपये की एक घोषित-मूल्य पालिसी ली जाती है। कुछ समय पश्चात् पाँच हजार रूपये के स्टाक की घोषणा होती है। तदनन्तर किसी कारणवश अग्नि लग जाने के कारण बीमित-सम्पत्ति क्षति-ग्रस्त हो जाती है और वह हानि दस हजार रूपये की निरूपित होती है। ऐसी दशा में कम्पनी को दस हजार रूपये क्षति-पूर्ति में देने होंगे। किन्तु यदि बीमा व्यवस्थापन-पालिसी के अन्तर्गत होता तो केवल पाँच हजार रूपये ही प्राप्त होते।

बट्टा सहित अधिकतम मूल्य-पालिसी (Maximum Value with Discount Policy) : इसके अनुसार बीमा कराने वाला अपने स्टाक के अधिकतम मूल्य पर पालिसी ले लेता है और उसीके आधार पर प्रीमियम भी चुकाता है। पालिसी की अवधि समाप्त होने पर बीमा-कम्पनी प्रीमियम का $\frac{1}{3}$ भाग बीमित को बट्टे के रूप में लौटा देती है। वास्तव में यह घोषित-मूल्य पालिसी का ही एक सरल रूप है; किन्तु उसके समान बार

बार स्टाक के मूल्य की घोषणा और प्रीमियम दर में परिवर्तन की झंझटें नहीं होतीं।

पुनर्स्थापन-पालिसी (Replacement or Reinstatement Policy) : इसके अनुसार क्षति-पूर्ति में बीमा कम्पनी को विनष्ट सम्पत्ति के पुर्निर्माण की लागत देनी पड़ती है, चाहे वह उसके वास्तविक मूल्य से अधिक हो अथवा कम। इस भाँति इसमें क्षति-पूर्ति का सिद्धान्त लागू नहीं होता। उदाहरण के लिये किसी सम्पत्ति के अग्नि द्वारा नष्ट हो जाने के कारण तत्कालीन बाजारी मूल्य के अनुसार तीन हजार रूपये की हानि होती है, और उसके पुर्निर्माण की लागत ६ हजार रूपया है, तो बीमा कम्पनी को ६ हजार रूपये ही देने होंगे।

बहुग्राही पालिसी (Comprehensive or 'All-in-all' Policy) : गृहों को केवल अग्नि द्वारा हानि ही की आशंका नहीं रहती, वरन् चोरी, सेंध आँधी इत्यादि अनेक सम्भावनाओं का भय भी लगा रहता है। अतः कुछ प्रगतिशील देशों में अग्नि बीमा कम्पनियों ने गृहस्थों की सुविधा के लिये एक विशेष प्रकार की पालिसी की व्यवस्था की है, जिसके अनुसार केवल अग्नि के विरुद्ध ही नहीं, अपितु उक्त सभी प्रकार की जोखिमों के विरुद्ध वे सुरक्षा प्रदान करती है। इसे बहुग्राही पालिसी (Comprehensive Policy)) कहा जाता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि इस प्रकार की पालिसियाँ यद्यपि गृह-स्वामियों को अग्नि के अतिरिक्त अनेक अन्य जोखिमों से भी सुरक्षित रखती है; तथापि इसका यह तात्पर्य नहीं है कि गृह-सम्बन्धी सभी जोखिमें उनके अन्तर्गत आ जाती हैं।

अध्याय २६

पालिसी और उसकी शर्तें

पालिसी के वर्तमान रूप का उदय : अग्नि बीमा से सम्बन्धित कोई लिखित कानून नहीं है। उसकी पालिसी की शर्तें अलिखित कानून (Common Law), व्यापारिक प्रथाओं एवं रीतियों पर ही आश्रित रहती हैं। उनके आकार-प्रकार और रूप में कालान्तर में अनेकानेक परिवर्तन हुए हैं। प्रारम्भ में तो उसकी संख्या अल्प थी; किन्तु क्रमश: उनमें वृद्धि हुई और वे इतनी जटिल और उलझनमय हो गईं कि एक साधारण व्यक्ति के लिये उन्हें हृदयंगम करना सम्भव न रहा। उस समय एक कठिनाई यह भी थी कि भिन्न-भिन्न कम्पनियों की पालिसियों की शर्त्तों में असमानता का बाहुल्य रहता था। जो हो, तदनन्तर उनकी संख्या घटाने की प्रवृत्ति का उदय हुआ और कुछ कम्पनियों ने 'शर्तहीन' (Conditionless) पालिसी निकालना आरम्भ कर दिया। उसे शर्तहीन कहने का कारण यह था कि उसमें शर्तों की मात्रा अत्यन्त अल्प होती थी और जो शर्त होती भी थीं वे अत्यन्त स्पष्ट और सरल। उसका तात्पर्य यह नहीं था कि कोई शर्त ही उसमें नहीं रहती थी। किन्तु जनता ने इस प्रकार की पालिसी का भी विशेष सम्मान नहीं किया। अत: पालिसी के एक ऐसे रूप की खोज निरन्तर चालू रही जिससे अधिकांश व्यक्ति सन्तुष्ट हो सकते। कुछ समय के पश्चात् इंगलैण्ड में 'अग्नि-बीमक-समिति' की स्थापना हुई। उसने पालिसी के एक नवीन आदर्श की रचना की। वही अग्नि-बीमा की प्रामाणिक पालिसी कहलाती है। वर्तमान समय में लगभग सभी बीमा कम्पनियाँ उसका प्रयोग करती हैं। उसकी पीठ पर अंकित शर्तें निम्न प्रकार होती हैं:—

शर्तें

पूर्ण विश्वास : इसके अनुसार किसी मूलभूत तथ्य के कुप्रतिनिधित्व, असत्य वर्णन, अथवा उसको गुप्त रखने पर बीमा कम्पनी बीमा कॉन्ट्रैक्ट को रद कर देने का अधिकार सुरक्षित रखती है। व्यवहार में बीमा कम्पनी इस वाक्यांश का अक्षरशः पालन-बीमित से नहीं कराती अर्थात् साधारण बातों के लिये पालिसी रद कर देने के अधिकार का प्रयोग नही करती और हानि होने पर दावे का भुगतान कर देती है। केवल गम्भीर विषयों में ही अपनी रक्षा के लिये वह इसका आश्रय लेती है।

परिवर्तन (Alteration) : यह वाक्यांश बीमित को बीमक की अनुमति के बिना बीमित-सम्पत्ति के सम्बन्ध में किसी प्रकार परिवर्तन करने से रोकता है। इसके अनुसार निम्नलिखित परिस्थितियों में पालिसी रद हो सकती है:—

(१) जब बीमित सम्पत्ति का स्थानान्तर कर दिया जाता है।

(२) जब उस पर जोखिम का भार अधिक हो जाता है।

(३) जब पालिसी किसी अन्य व्यक्ति के नाम में प्रदान कर दी जाती है; अर्थात् जब सम्पत्ति में बीमित का बीमा-योग्य-हित समाप्त हो जाता है। इस प्रकार बिना कम्पनी की आज्ञा के कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हो सकता। जहाँ तक सम्भव होता है बीमा कम्पनियाँ बीमित को अधिकाधिक सुविधाएँ देने का प्रयत्न करती हैं और लगभग उनके प्रत्येक आवेदन को स्वीकार कर लेती हैं, यदि वह बीमित सम्पत्ति के प्रति उनके उत्तरदायित्व में अभिवृद्धि नहीं करता।

अपवाद (Exclusion) : जिन अग्नि सम्बन्धी जोखिमों का उत्तरदायित्व बीमा कम्पनी साधारणतः अपने ऊपर नहीं लेती, वे अपवाद के वाक्यांश में स्पष्टतः अंकित रहती हैं। यह वाक्यांश निम्न प्रकार लिखा रहता है:—

(अ) विस्फोट (चाहे वह अग्नि द्वारा हो अथवा किसी अन्य कारण से) द्वारा विनाश अथवा क्षति। } पालिसी में लिखित होने के अतिरिक्त,

(ब) निक्षेप में अथवा आदेशानुसार रक्खी हुई वस्तुएँ, द्रव्य, सिक्यूरिटी, टिकटें, दस्तावेज, पाण्डुलिपियाँ, व्यवसायिक पुस्तकें, नमूने, आकृतियाँ, साँचे, योजनाएँ, विस्फोटक पदार्थ। } जब तक इस पालिसी में विशेष रूप से बीमा किये जाने की चर्चा न हो।

उपर्युक्त जोखिमों को उन जोखिमों के साथ पढ़ना चाहिये जो पालिसी में निहित समझी जाती हैं और जो ये हैं:—

(१) अग्नि (चाहे किसी विस्फोटक के कारण लगे अथवा किसी अन्य कारण से) की जोखिम यदि—

(अ) वस्तु के स्वतः उत्तेजित अथवा उत्तप्त होने अथवा किसी ऐसी क्रिया में रहने से जिसमें उष्णता की आवश्यकता पड़ती हो

(ब) भूकम्प, भूम्यन्तर्गत अग्नि, उपद्रव, नागरिक उत्तेजना, विदेशी शत्रु, सैन्य अथवा अपहरण शक्ति, राजद्रोह अथवा क्रान्ति; का परिणाम न हो।

(२) विद्युत् की जोखिम।

(३) गृह-कार्यों में उपयोग होने वाले बायलर के विस्फोट की जोखिम।

(४) भवन में (यदि वह किसी गैस फैक्टरी का भाग न हो) घरेलू कार्य क लिए प्रकाश अथवा उष्णता के लिये उपयोग होने वाले गैस के विस्फोट की जोखिम।

सारांश यह है कि अग्नि-बीमा में जो हानि दैवात् अग्नि से होती है उसी का भार बीमा कम्पनी पर होता है। निकटतम कारण का सिद्धान्त (Principle of Proximate Cause) इसमें लागू नहीं होता; केवल प्रत्यक्ष कारण पर ही ध्यान दिया जाता है।

पुनर्निर्माण (Reinstatement) : साधारणतः जब दावा उपस्थित होता है तो क्षति-पूर्ति नक़द ही चुका दी जाती है। किन्तु जब कभी विनष्ट सम्पत्ति के मूल्य के विषय में बीमा कम्पनी और बीमित में मतभेद उत्पन्न हो जाता है अथवा [illegible] किसी अन्य परिस्थिति का [illegible] हो जाता है, तब बीमा कम्पनी उस

सम्पत्ति के पुनर्निर्माण का निर्णय इस वाक्यांश की शर्तों के अनुसार कर सकती है। एक बार ऐसा निश्चय कर लेने के पश्चात् वह उससे विमुख नहीं हो सकती। ऐसी अवस्था में बीमित को अपने व्यय पर ही आवश्यक नकशे, योजनाओं आदि से कम्पनी की सहायता करनी पड़ती है। वह विनष्ट सम्पत्ति के सदृश ठीक उसी आकार-प्रकार के पुनर्निर्माण के लिये बाध्य नहीं होती। उसका सामान्यतः उसके अनुरूप होना ही पर्याप्त है। साथ ही उसके लिये बीमित-धन से अधिक द्रव्य कम्पनी व्यय नही कर सकती। दोहरे बीमे के सम्बन्ध में इस वाक्यांश का बड़ा महत्व होता है क्योंकि उस अवस्था में यह सभी पक्षों को अनावश्यक कठिनाइयों तथा व्ययों से बचा लेता है।

धोखा : यह सर्वविदित ही है कि धोखे के आधार पर निर्दोष पक्ष कॉन्ट्रैक्ट को रद कर सकता है। बीमा कम्पनी भी उसके अनुसार अग्नि-बीमा के कॉन्ट्रैक्ट को निम्नलिखित अवस्थाओं में रद कर सकती है:—

(१) दावे में किसी प्रकार का छल-कपट लक्षित होने पर,

(२) दावा उपस्थित करने के लिये किसी प्रवचनायुक्त साधन के प्रयुक्त होने पर,

(३) बीमित वस्तु को जानबूझ कर नष्ट अथवा क्षति-ग्रस्त करने अथवा कराने पर।

उपर्युक्त परिस्थितियों में यदि बीमित क्षतिपूर्ति का दावा करता है तो बीमा कम्पनी उसे स्वीकार नहीं कर सकती। इस प्रकार छल, प्रपंच की शरण लेने पर वह अपने बीमे से किंचित भी लाभ नहीं उठा पाता।

हानि तथा दावा (Claims) : इसमें उन कार्यों का उल्लेख रहता है जो हानि होने पर बीमित द्वारा सम्पादित किये जाने चाहिये। जब बीमित-सम्पत्ति अथवा वस्तुओं अथवा उनके भागों का बीमित जोखिम द्वारा विनाश अथवा क्षति हो जाती है तो सर्वप्रथम उसकी सूचना बीमा—कम्पनी को यथाशीघ्र भेजनी चाहिये। उसके उपरान्त दुर्घटना घटित होने के ३० दिन के भीतर विस्तृत विव-

रण सहित लिखित दावा भेजना चाहिये। इस कार्य के लिये यदि ३० दिन की अवधि से अधिक समय अपेक्षित हो तो उसके लिये कम्पनी से लिखित अनुमति प्राप्त कर लेना आवश्यक होगा। दावे से सम्बन्धित अन्य आवश्यक प्रमाण, समाचार आदि भी भेजने चाहिये। कम्पनी यदि चाहे तो दावे की वास्तविकता तथा सत्यता के सम्बन्ध में एक कानूनी घोषणा-पत्र भी बीमित से माँग सकती है। इन शर्तों का पालन अति आवश्यक है; अन्यथा वह दावे का भुगतान करने से इन्कार कर सकती है।

हानि के पश्चात् बीमक के अधिकार : हानि होजाने के अनन्तर कम्पनी को विनष्ट अथवा क्षति-ग्रस्त सम्पत्ति में प्रवेश करने, उसे अधिकृत कर लेने आदि का अधिकार होता है। इसी प्रकार वह बीमित वस्तुओं को बीमित से ले सकती है। उनका उचित प्रकार से समीचीन प्रयोग करना भी उसके अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत आ जाता है। किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि उक्त कार्यों के लिये उस पर कोई दायित्व नहीं आता। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि सम्पत्ति के कम्पनी द्वारा अधिकृत होने से बीमित के स्वामित्व में कोई अन्तर नहीं पड़ता और वह उसके पक्ष में उसे परित्याग नहीं कर सकता। वास्तविकता यह है कि बीमित को अपनी सम्पत्ति के परित्याग (Abandonment) का अधिकार किसी भी स्थिति में प्राप्त नहीं होता। यदि बीमित अथवा उसका प्रतिनिधि कम्पनी के इन अधिकारों को अस्वीकार करता है अथवा उनके प्रयोग में विघ्न डालता है तो इस वाक्यांश के अनुसार उसके सब अधिकार समाप्त हो जाते हैं।

बीमित की स्थिति-प्राप्ति : इस वाक्यांश के अनुसार बीमा कम्पनी को बीमित की क्षति-पूर्ति कर देने के पश्चात् हानि से सम्बन्धित किसी अन्य पक्ष के विरुद्ध उसके सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाते हैं; अर्थात् सम्पत्ति के समस्त भावी लाभों की अधिकारिणी हो जाती है। उक्त अधिकारों के प्रयोग में कम्पनी की भरसक सहायता करना बीमित का कर्त्तव्य होता है, यद्यपि इसके लिये वह व्यय उठाने के लिये बाध्य नहीं होता। अब इसका एक उदाहरण लीजिए। मान लीजिए कि 'अ' की वस्त्रों की दूकान है जिसका उसने बीमा करा लिया है। 'ब' इसका पड़ोसी

दूकानदार है और उसकी भी वस्त्रों की दूकान है। 'अ' के सद्व्यवहार, ईमानदारी आदि के कारण उसकी बिक्री अधिक होती है। किन्तु 'ब' के विपरीत स्वभाव के कारण ग्राहक उसके पास नहीं जाते। 'ब' ईर्ष्यावश 'अ' की दूकान में आग लगा देता है। इस स्थिति में 'अ' को 'ब' से अपनी क्षति-पूर्ति कराने का अधिकार है। किन्तु उसकी दुकान का अग्नि-बीमा भी है। यदि वह बीमा कम्पनी से अपनी क्षति-पूर्ति कर लेता है तो कम्पनी को उसका 'ब' से क्षति-पूर्ति प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हो जायगा। संक्षेप में यही 'बीमित की स्थिति-प्राप्ति' है, जिसके विषय में विगत पृष्ठों में अनेक बार कहा जा चुका है।

साधारण शर्तें (Warranties) : इस वाक्यांश में वे सब शर्तें लिखी रहती हैं जिसके निर्वाह का दायित्व बीमित पर होता है। साधारण शर्तों का 'पूर्ण पालन' बीमित द्वारा होना ही चाहिये, चाहे उससे जोखिम घटे अथवा नहीं। 'पूर्ण पालन' पर ध्यान देना चाहिये क्योंकि 'अधिकांशतः पालन' 'पालन न करने' के समान ही समझा जाता है। कम्पनी प्रथम के अतिरिक्त शेष दोनों दशाओं में कॉन्ट्रैक्ट रद कर सकती है। पालिसी में वे प्रायः एक सूची के रूप में विद्यमान रहती हैं। दोनों पक्षों के समझौते के अनुसार उनकी संख्या न्यूनाधिक भी हो सकती है। व्यवहार में देखा जाता है कि जब बीमक कुछ साधारण शर्तों के पालन के भार से बीमित को मुक्त करता है तब अपने प्रीमियम की दर अधिक कर देता है। इसी प्रकार जब कतिपय साधारण शर्तें और जोड़ दी जाती हैं तब प्रीमियम की दर भी कम कर दी जाती है। इस वाक्यांश की शर्तें पुनः चालू हुई पालिसियों में लागू नहीं होतीं अर्थात् किसी पिछली शर्त के निर्वाह न होने का उसकी वैधता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

पंचायत (Arbitration) : इसके अनुसार बीमा कम्पनी और बीमित अथवा किसी अन्य दावेदार के मध्य हानि के विषय में परस्पर कोई मतभेद हो जाने पर उसका निर्णय दोनों पक्षों की सहमति से नियुक्त पंच अथवा पंचों द्वारा होता है। यह निर्णय दोनों पक्षों को मान्य होता है। इसमें हुए व्यय किसी एक

अथवा दोनों पक्षों को, जैसा भी पंचों का निर्णय हो, झेलने पड़ते हैं। इस प्रकार के मतान्तर अथवा विवाद का निपटारा एक वर्ष के अन्दर ही पंचों द्वारा करा लेना आवश्यक होता है, क्योंकि तदुपरान्त बीमा कम्पनी बीमा कॉन्ट्रैक्ट के प्रति अपने दायित्व से स्वतन्त्र हो जाती है।

औसत और सहायता (Contribution and Average) : कभी-कभी व्यापारी अपनी सम्पत्ति की अधिक सुरक्षा के दृष्टिकोण से 'दोहरा बीमा' करा लेते हैं। ऐसी अवस्था में उसके विनाश अथवा क्षति-ग्रस्त होने पर बीमित अपनी इच्छानुसार किसी भी बीमक से अपनी क्षति-पूर्ति प्राप्त कर सकता है। उसके पश्चात् सहवर्ती बीमक उस क्षति को अपने-अपने दायित्व के अनुपात में परस्पर विभक्त कर लेते हैं; अर्थात् उसे वे 'दर-योग्य अनुपात' (Rateable Proportion) में वहन करते हैं—किसी एक को उसका सम्पूर्ण भार नहीं उठाना पड़ता। 'दर-योग्य अनुपात' (Rateable Proportion) वह अनुपात होता है जो—किसी सम्पत्ति पर एक व्यक्ति द्वारा ली हुई पालिसी के बीमित धन का उसी सम्पत्ति पर उसी व्यक्ति द्वारा ली हुई सभी पालिसियों के बीमित धनों के योग से होता है। इसे प्रत्येक सहवर्ती बीमक के लिये निम्न गुर से ज्ञात किया जा सकता है।

$$\text{दर-योग्य-अनुपात} = \frac{\text{किसी एक कम्पनी की पालिसी में अंकित बीमित धन।}}{\text{सभी बीमा कम्पनियों की पालिसियों में अंकित बीमित धनों का योग।}}$$

मान लीजिए कि किसी व्यक्ति ने अपने घर का अग्नि-बीमा 'क' 'ख' 'ग' तीन कम्पनियों से क्रमश: २०,०००), १५,०००) और १०,०००) का कराया है। हानि होने पर उन्हें निम्नलिखित अनुपात में क्षतिपूर्ति करनी होगी।

$$\text{क} \quad \frac{२०,०००}{४५,०००};$$

ख $\frac{१५,०००}{४५,०००}$;

ग $\frac{१०,०००}{४५०००}$;

किसी सहवर्ती बीमक को हानि-पूर्ति में कितना धन देना होगा, यह उसके दर-योग्य अनुपात से हानि के गुणन द्वारा मालूम हो सकता है। उपर्युक्त उदाहरण में यदि बीमित को १८,०००) की हानि होती है तो क्षति-पूर्ति में क, ख और ग तीनों बीमा कम्पनियों से निम्नलिखित रकमें उसे प्राप्त होंगी—

क $\frac{२०,०००}{४५,०००} \times$ १८,००० = ८,०००)

ख $\frac{१५,०००}{४५,०००} \times$ १८,००० = ६,०००)

ग $\frac{१०,०००}{४५,०००} \times$ १८,००० = ४,०००)

कुल क्षति-पूर्ति १८,०००)

औसत की शर्त के विषय में 'औसत-पालिसी' के अन्तर्गत यथेष्ट कहा जा चुका है। उसका लाभ उठाने के लिये उसका पालिसी में सम्मिलित होना आवश्यक होता है। यदि किसी सम्पत्ति पर ली गई अनेक पालिसियों में से किसी एक में भी वह विद्यमान है तो अन्यों में उसकी आवश्यकता नहीं होती और सभी में निहित समझ ली जाती है। औसत-विहीन पालिसियों में बीमक सम्पूर्ण हानि पूरी करने के निमित्त (बीमित धन की सीमा तक) दायी होते हैं। किन्तु औसत-पालिसी में

ऐसा नहीं होता। एक ही सम्पत्ति पर ली गई दो अथवा अधिक औसत-पालिसियों के मध्य क्षति-पूर्ति के धन का विभाजन उनके पृथक्-पृथक् दायित्वों के अनुसार किया जाता है। इस विभाजन की आवश्यकता तभी पड़ती है जब कि उन दायित्वों के योग से हानि न्यून होती है।

अध्याय २७

विविध

प्रीमियम : हम आरम्भ में कह चुके हैं कि अग्नि-बीमा के प्रीमियम की दरें उतनी विश्वसनीय, सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक नहीं होतीं, जितनी जीवन बीमे की। उनमें निश्चय की मात्रा अल्प होती है। इसके कारण लगभग वही हैं जिनका वर्णन सामुद्रिक-बीमा-प्रीमियम की समीक्षा करते समय किया जा चुका है; अर्थात् जीवन-बीमे के समान निर्भरयोग्य आँकड़ों का अभाव और जोखिमों की बहुलता, परिवर्तनशीलता तथा विषमता। अतः वे अंकशास्त्र, गणित शास्त्र आदि पर पूर्णतः आश्रित नहीं की जा सकतीं। तथापि उनका किंचित उपयोग अवश्य होता है। यही कारण है कि वे सामुद्रिक-बीमा-प्रीमियम की दरों की अपेक्षा अधिक निश्चित होती हैं—केवल कल्पना और अनुमान पर ही निर्भर नहीं होतीं।

आरम्भ में वे अवश्य ही केवल अनुमान पर ही आधारित रहती थी; क्योंकि उस समय अग्नि-बीमा सम्बन्धी किसी भी प्रकार के आँकड़ों का अभाव था। समय व्यतीत होने के साथ-साथ जैसे-जैसे उसके अनुभवों में वृद्धि होती गयी, आवश्यक आँकड़ों के संकलन के फलस्वरूप प्रीमियम की दरों में भी स्थिरता का आभास दीख पड़ने लगा। उदाहरण के लिये कोई कम्पनी दस वर्षों में दावों का औसत निकाल कर यह अनुमान लगा सकती थी कि भविष्य में कितना धन दावों के भुगतान में देना होगा। इसीके आधार पर प्रीमियम की दर भी कुछ अंशों में निर्धारित हो सकती थी। व्यवस्था-व्यय, कमीशन, लाभ, आदि के लिये कुछ प्रतिशत उसमें और जोड़ दिया जाता था।

जोखिमों का वर्गीकरण (Classification of Risks): क्रमशः अनुभव ने बतलाया कि इस प्रकार प्रीमियम की दर निर्धारित करने से न तो कठिनाइयों का अन्त होता है और न जनता को ही लाभ पहुँचता है, यद्यपि पक्षपात अवश्य होता है; क्योंकि एक ही प्रकार की सम्पत्तियों पर, उनके विभिन्न स्थितियों में होने पर भी, समान प्रीमियम लिया जाता था। फलतः, जोखिमों के विभाजन और वर्गीकरण की आवश्यकता प्रतीत हुई। उसके व्यवहार में आने पर प्रीमियम की दरों के निर्धारण में केवल सम्पत्ति का नहीं वरन् उसके स्वभाव, स्थिति तथा जोखिम उत्पन्न हो सकने की सम्भावना पर भी ध्यान दिया जाने लगा। प्रारम्भिक वर्गीकरण अत्यन्त ही साधारण था। उसमें समस्त अग्नि सम्बन्धी जोखिमें तीन श्रेणियों में विभक्त कर दी गई थीं—

(१) सामान्य जोखिमें (Ordinary Risks)

(२) विपत्तिजनक जोखिमें (Hazardous Risks)

(३) विशेष विपत्तिजनक जोखिमें (Doubly Hazardous Risks)

कुछ समय तक यही वर्गीकरण सन्तोषजनक रूप में प्रयुक्त होता रहा; किन्तु कालान्तर में वाणिज्य व्यवसाय की उन्नति के कारण अनेक विभिन्न प्रकार की जोखिमों का प्रादुर्भाव हो गया। परिणामतः उक्त वर्गीकरण अपर्याप्त एवं निरर्थक-सा प्रतीत होने लगा। साथ ही उससे अधिक विस्तृत वर्गीकरण की आवश्यकता भी तीव्रता से अनुभव होने लगी। सन् १८५८ में इंगलैण्ड में 'अग्नि-बीमक-समिति' की स्थापना इस कार्य के सम्पादनार्थ हुई। उसने अपने अथक परिश्रम के द्वारा जोखिमों का विशद एवं विस्तृत वर्गीकरण किया था। वही वर्त्तमान समय तक उपयुक्त होता आ रहा है। किन्तु अब उसे भी समय से प्रतिकूल समझा जाने लगा है।

प्रीमियम की दर ज्ञात करना : पूर्वकाल में किसी सम्पत्ति का प्रीमियम ज्ञात करने के लिये सर्वप्रथम उसके स्वभाव के अनुसार उसके वर्ग का निश्चय किया जाता था। उसका निश्चय होते ही दर ज्ञात हो जाती थी क्योंकि वह पूर्वनिश्चित ही रहती थी।

आजकल 'साधारण+अतिरिक्त अथवा वृद्धशील' नियम (Normal+Extra or Accumulating) के आधार पर प्रीमियम वसूल किया जाता है। यदि पूर्वानुभव के अनुसार किसी वर्ग की जोखिम पर पाँच प्रतिशत की दर से प्रीमियम लेना चाहिये तो पहले उसे साधारण और अतिरिक्त दो भागों में विभाजित कर लेंगे। अब यदि तीन प्रतिशत साधारण जोखिम के लिये निश्चित होती है तो शेष दो प्रतिशत अतिरिक्त जोखिम के लिये वसूल की जायगी। वास्तविक अतिरिक्त प्रीमियम जोखिम उत्पन्न होने की न्यूनाधिक सम्भावना के अनुपात में दो प्रतिशत से कम अथवा अधिक होता रहता है; किन्तु औसत पर वह दो प्रतिशत अवश्य रहेगा।

संयुक्त जोखिमों का प्रीमियम : कभी-कभी एक ही पालिसी एक से अधिक वर्गों की जोखिमों के लिये ली जाती है। ऐसी दशा में प्रीमियम की दर का निर्धारण सरल नहीं होता। मान लीजिए कि एक विशाल भवन है, जिसका ऊपरी भाग निवास-गृह के लिये उपयोग होता है और नीचे के भाग में कपड़े की दूकान है। सम्पूर्ण भवन का अर्थात् निवास-गृह और दूकान दोनों का, एक साथ अग्नि-बीमा कराना है। यदि बीमा कम्पनी निवास-गृहों के लिये १० % और कपड़े की दुकानों के लिये ८ % प्रीमियम लेती है, तो उक्त विषय मेंउसकी दर क्या होगी ? इस सम्बन्ध में कुछ कम्पनियाँ इस नियम पर चल कर कि ऊँची दर में निम्न दर सम्मिलित रहती है, १० % के आधार पर प्रीमियम वसूल करेंगी और कुछ दोनों के योग के आधार पर।

पुनर्बीमा : जीवन तथा सामुद्रिक-बीमों का वर्णन करते समय पुनर्बीमा के सम्बन्ध में सविस्तार वर्णन किया जा चुका है। अग्नि-बीमे में उसका प्रचलन कहीं अधिक मात्रा में है। वास्तव में यह एक नवीन बीमा कॉन्ट्रैक्ट से किसी प्रकार न्यून नहीं होता; क्योंकि इसकी वैधता के लिये भी उन सभी शर्तों की पूर्ति आवश्यक होती है जिनकी पूर्ति मूल-बीमा-कॉन्ट्रैक्ट के लिये अपेक्षित समझी जाती हैं। उसी

के समान उनका पालन न होने पर पुनर्बीमक पुनर्बीमा कॉन्ट्रैक्ट को रद कर सकता है।

पुनर्बीमा से लाभ : इससे सर्वप्रथम लाभ तो यह होता है कि मूल बीमकों की जोखिम का वह भाग हस्तान्तरित हो जाता है, जो उनकी सहन शक्ति के परे होता है। इस प्रकार किसी बीमक को एकाकी ही सम्पूर्ण जोखिम वहन करने की आवश्यकता नहीं होती--सहयोगी कम्पनियां उसका विभाजन करके उसे चिन्ता मुक्त कर सकती हैं। दूसरा लाभ यह होता है कि अविभाजित-जोखिम के आधार पर बीमक अपनी आय का अनुमान भी कर सकता है क्योंकि वह निश्चितप्राय हो जाती है। तीसरे पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता तथा प्रतियोगिता के नियन्त्रित होने के साथ-साथ बीमा कम्पनियों में पारस्परिक सौहार्द्र तथा सहानुभूति का प्रादुर्भाव होता है और प्रीमियम की दरें निश्चित करने के सम्मिलित आधार की स्थापना भी हो जाती है क्योंकि मूल बीमक तथा पुनर्बीमक दोनों ही निश्चित नियमों का पालन करते हैं। और यह स्पष्ट ही है कि बिना नियमों के बन्धन के पुनर्बीमा का सम्बन्ध उपादेय नहीं हो सकता। चौथे पारस्परिक प्रतिद्विन्द्वता के नियन्त्रण से कम्पनियों के लाभ के परिमाण में तीव्र उतार-चढ़ाव की सम्भावना बहुत अल्प हो जाती है जिसके फलस्वरूप उनकी स्थिति में दृढ़ता आती है। और अन्तिम लाभ यह होता है कि पुनर्बीमा के माध्यम के द्वारा कार्य-क्षेत्र का विस्तार हो जाने के कारण अधिक विश्वसनीय अनुभव प्राप्त किये जा सकते हैं।

प्रकार : अनुसरित प्रणालियों के आधार पर पुनर्बीमा दो श्रेणियों में से किसी एक के अन्तर्गत आता है। या तो वह पारस्परिक (Facultative) होता है अथवा विशिष्ट (Treaty)।

पारस्परिक पुनर्बीमा : इसमें एक कम्पनी किसी दूसरी कम्पनी से अपनी जोखिम के किसी भाग का बीमा कराती है। पुनर्बीमा करने वाली कम्पनी उसे स्वीकार करने के पूर्व जोखिम की भली भाँति समीक्षा कर लेती है। यद्यपि इसके कारण उसका व्यय अधिक हो जाता है; किन्तु अन्त में हानि की सम्भावना अधिक न होने के कारण सरलता से पूरा हो जाता है।

विशिष्ट पुनर्बीमा : 'विशिष्ट पुनर्बीमा' पुनर्बीमा करने वाली कम्पनियाँ ही कर सकती हैं। वे जन-साधारण के अग्नि-बीमे स्वीकार नहीं कर सकतीं। बिना किसी जाँच पड़ताल के ही वे जोखिम स्वीकार कर लेती हैं। अतः हानि की सम्भावना अधिक रहती है। किन्तु निरीक्षण, व्यवस्था आदि में अधिक व्यय न होने के कारण उस हानि की पूर्ति में कोई व्यवधान उपस्थित नहीं होता और उन्हें यथेष्ट लाभ भी होता है। विशिष्ट प्रणाली द्वारा पुनर्बीमे का सबसे बड़ा दोष यह है कि वह अवांछनीय बीमा-प्रस्तावों की स्वीकृति के साथ-साथ प्रीमियम की दर घटा कर अधिकाधिक कार्य प्राप्त करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देता है।

ग्राह्य जोखिम : अग्नि-बीमे में किसी कम्पनी को कितनी जोखिम अपने ऊपर रखनी चाहिए और कितने का पुनर्बीमा करा लेना चाहिये, इसका निर्णय एक गम्भीर और जटिल-प्रश्न होता है। जीवन-बीमे में इसका निरूपण अत्यन्त सरल होता है क्योंकि उसमें जोखिम का वैषम्य प्रायः नहीं होता; और यदि कुछ होता भी है तो अत्यन्त सामान्य, जिसे प्रीमियम की दर में परिवर्तन द्वारा व्यवस्थित कर लिया जा सकता है। अतः उसमें ग्राह्य तथा पुनर्बीमा सम्बन्धी सीमा निर्धारण कुछ कठिन नहीं होता। अग्नि बीमे में उक्त सीमा-निर्धारण यदि असम्भव नहीं, तो दुःसाध्य अवश्य होता है। मान लीजिए कि किसी कम्पनी ने एक साधारण ईंट-चूने और एक पत्थर से निर्मित मकान का क्रमशः ३,०००) और ५,०००) का बीमा किया है। अब उसके समक्ष समस्या यह है कि वह उनमें से किसका पुनर्बीमा कराये और किसकी जोखिम स्वयं अपने ऊपर रहने दे। ऐसी स्थिति में उसे यह देखना होगा कि किस मकान पर जोखिम अधिक है अर्थात् किसके सम्बन्ध में दावा उत्पन्न होने की सम्भावना अधिक है, केवल बीमित धन को ही दृष्टिकोण में रखने से काम नहीं चलेगा। हो सकता है कि पत्थर का मकान सुरक्षित स्थान में स्थित हो और उसमें कोई ऐसा काम न होता हो जिससे आग लगे। इसके विपरीत ईंट-चूने वाला मकान किसी गैस-फैक्टरी के पार्श्व में हो अथवा उसमें विस्फोटक पदार्थों का संग्रह हो। इस अवस्था में बीमक के लिये ३,०००)

की पालिसी का पुनर्बीमा करा लेना अधिक लाभप्रद होगा, यद्यपि उसका बीमित धन कम है।

सारांश यह है कि पुनर्बीमा कराने की अभिलाषी कम्पनी को बीमित धन और जोखिम दोनों को ही ध्यान में रख कर प्रस्तुत विषय में निर्णय करना चाहिये।

पंचम भाग

कुछ अन्य प्रकार के बीमे

अध्याय २८

सामूहिक जीवन-बीमा, मोटर-बीमा तथा उधार का बीमा

विज्ञान की उन्नति ने विविध प्रकार के आविष्कारों एवं अनुसन्धानों के द्वारा जहाँ एक ओर हमारा जीवन अधिकाधिक सुखमय तथा आनन्दपूर्ण बनाया है, दूसरी ओर उसके लिये संकटों और भयों की संख्या में भी वृद्धि की है। इसी प्रकार उसके अविलम्ब वाणिज्य-व्यवसाय के विकास तथा उत्कर्ष के साथ-साथ सम्पत्ति के प्रति जोखिमों का भी विस्तार हुआ है। उदाहरण के लिये विद्युत्, मोटर, वाष्प-इंजिन, वायुयान आदि में से किसी को ले लीजिए और उसके उपयोग के परिणामों का अनुशीलन कीजिए। फलतः, वर्तमान समय में केवल जीवन, सामुद्रिक तथा अग्नि-बीमे आवश्यक सुरक्षा के निमित्त अपर्याप्त हो गये हैं और अनेक प्रकार के ऐसे बीमों का प्रादुर्भाव हो गया है जो आकस्मिक दुर्घटनावश उदित क्षति से जीवन अथवा सम्पत्ति का संरक्षण करते हैं; यथा, सामूहिक जीवन-बीमा, मोटर-बीमा, निरुद्यम-बीमा, राष्ट्रीय स्वास्थ्य-बीमा, मूल्यवान वस्तुओं का बीमा इत्यादि, इत्यादि। वास्तविकता यह है कि आजकल बीमा-सिद्धान्त का प्रयोग किसी भी अप्रिय भावी दुर्घटना के परिणामों से सुरक्षार्थ किया जा सकता है।

दुर्घटना बीमों के विषय में कोई यह नही कह सकता कि वे द्यूत-कॉन्ट्रैक्टों से अधिक कुछ भी नहीं होते; क्योंकि उनके विषय में बीमित का बीमा-योग्य हित सदैव रहता है। साथ ही उन्हें कराने के लिये उन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति भी अनिवार्य होती है जो किसी भी अन्य बीमा-कॉन्ट्रैक्ट के लिये अपेक्षित होती हैं। उनके प्रीमियम की दरें भी यथार्थ अनुभव के आधार पर संगृहीत आँकड़ों पर आश्रित हैं। समस्त दुर्घटना बीमे स्वभावतः क्षतिपूरक होते हैं। 'क्षति-पूर्ति' के

सिद्धान्त के विषय में विगत पृष्ठों में यथेष्ट कहा जा चुका है। अब हम कतिपय दुर्घटना बीमों का संक्षिप्त परिचय देते हैं :—

(१)

सामूहिक जीवन-बीमा

(Group-Life Insurance)

जैसा कि नाम से ही प्रगट है, इसके अन्तर्गत व्यक्तियों के समूहों का बीमा होता है। जिस समूह का बीमा हो जाता है, बीमा कम्पनी उसके सदस्यों के जीवन में उपस्थित होने वाली आकस्मिक दुर्घटनाओं के परिणामस्वरूप क्षति की पूर्ति के लिये उत्तरदायी होती है। बीमित समूह का कोई सदस्य यदि दुर्घटनावश मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो उसके उत्तराधिकारियों को उसे प्राप्य क्षति-पूर्ति मिल जाती है।

प्राय: उद्योग-गृहों के स्वामी उनमें अथवा उनके विभागों में काम करने वाले व्यक्तियों का सामूहिक बीमा कराते हैं। इसके लिये केवल अधिक वय प्राप्त कर्मचारियों की ही स्वास्थ्य-परीक्षा होती है। बीमा कराये जाने वाले प्रत्येक समूह में कम से कम ५० व्यक्ति होने चाहिये। उस समय कारखाने में कार्य-रत व्यक्ति ही उसमें सम्मिलित किये जा सकते हैं। पीछे से प्रवेश करने वाले कर्मचारी भी एक निश्चित अवधि (प्राय: ३ मास) तक कार्य करने के पश्चात् समूह में सम्मिलित हो जाते हैं। बीमे का प्रीमियम चुकाने का उत्तरदायित्व उद्योग-गृह के स्वामी पर होता है।

सामूहिक जीवन-बीमा अधिकतर वार्षिक हुआ करता है। अत: कर्मचारियों की आयु-वृद्धि के साथ-साथ प्रीमियम की दर में वृद्धि होनी चाहिये; किन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता। कारण यह है कि वृद्ध श्रमिकों के क्रमश: कार्य-त्याग तथा युवकों के प्रवेश के फलस्वरूप समूह की औसत आयु लगभग पूर्ववत् ही रहती है और प्रीमियम-दर में भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता। निर्धारित समय के पूर्व ही जो सदस्य कारखाने से पृथक् हो जाते हैं, अपनी इच्छानुसार बिना डाक्टरी परीक्षा के ही वे अपने बीमे को भी समूह से पृथक् करा सकते हैं। उस अवस्था में उन्हें

अपनी तात्कालिक आयु के अनुसार भावी प्रीमियम की किस्तें चुकानी पड़ती हैं।

(२)

स्वामी के दायित्व का बीमा
(Employer's Liability Insurance)

स्वामी अपने कर्मचारियों के प्रति अनेक प्रकार से दायी रहा करते हैं; जैसे उसके लिये यह आवश्यक होता है कि उनकी सुरक्षा के प्रति सावधान रहे। अतः विगत ७० वर्षों से इंगलैंड में इसके लिये आवश्यक कानूनों का निर्माण हो चुका है। इसके पूर्व यदि कोई कर्मचारी औद्योगिक दुर्घटनाओं के फलस्वरूप क्षति-ग्रस्त हो जाता था, तो उस कर्मचारी ही को उस क्षति का परिणाम भोगना पड़ता था—स्वामी का इस दिशा में कोई दायित्व नहीं होता था। इसी प्रकार दुर्घटनावश उसकी मृत्यु हो जाने की स्थिति में भी स्वामी को मृतक के परिवार पर ध्यान की आवश्यकता नहीं थी, चाहे वह कैसे ही विषम आर्थिक संकट में क्यों न हो। अब वह स्थिति नहीं है। आवश्यक कानूनों का निर्माण करके सरकार ने मालिकों को कार्यरत कर्मचारी के क्षति-ग्रस्त होने के सम्बन्ध में उत्तरदायी बना दिया है।

भारत में इस प्रकार का कानून सर्वप्रथम १९२४ में निर्मित हुआ था। समय समय पर सरकार ने उसमें आवश्यक संशोधन भी किया है। यह कानून 'कर्मचारियों की क्षति-पूर्ति का विधान' (Workmen Compensation Act) कहलाता है। इसके अनुसार यदि कोई कर्मचारी घायल हो जाता है या मर जाता है अथवा वृत्ति सम्बन्धी रोगों से आक्रान्त हो जाता है तो उसका स्वामी उसकी क्षति-पूर्ति के लिये वाध्य हो जाता है। इस क्षति-पूर्ति की रकम का निर्धारण कर्मचारी के वेतन तथा दुर्घटना के प्रभाव के आधार पर होता है। उदाहरणार्थ, कार्य सम्बन्धी दुर्घटना द्वारा कर्मचारी अंशतः अथवा पूर्णतः अशक्य हो सकता है। इस प्रकार की अशक्यता स्थायी अथवा अस्थायी हो सकती है।

स्थायी रूप से अशक्य हो जाने का तात्पर्य यह है कि कर्मचारी सदैव के लिये उन कार्यों को कर सकने में पूर्णतः असमर्थ हो गया है जिन्हें वह दुर्घटना के पूर्व कर

सकने के योग्य था। यह भी असम्भव नहीं है कि अनेक दुर्घटनाओं से उत्पन्न आंशिक अशक्यताएँ उसे स्थायी रूप से कार्यायोग्य कर दें। इसे भी स्थायी अशक्यता कहेंगे।। यदि पचास रुपये मासिक वेतन पाने वाला कर्मचारी स्थायी रूप से अशक्य हो जाता है तो उसे अपने स्वामी से १८००) हरजाने में प्राप्त होते हैं। स्थायी-आंशिक अशक्यता हाथ, पैर, अंगुली, अंगूठा आदि के भंग हो जाने अथवा आँख फूट जाने आदि से हो सकती है। इन स्थितियों में भी कर्मचारी दुर्घटना विशेष के अनुसार हरजाना प्राप्त करने का अधिकारी होता है। इस बात पर ध्यान देना पड़ता है कि दुर्घटना ग्रस्त व्यक्ति की उपार्जन शक्ति में दुर्घटना के फलस्वरूप कितने प्रतिशत ह्रास हुआ है; जैसे, किसी व्यक्ति की कोहनी से दाहिना हाथ कट जाने पर उपार्जन-शक्ति में ७० प्रतिशत का ह्रास माना जाता है। यदि दुर्घटना के समय उसकी मासिक आय ३५) हो तो स्वामी उसको १०२९) हरजाना में देने के लिये दायी होगा।

अस्थायी अशक्यता की दशा में भी स्वामी पर विभिन्न दरों पर हरजाना देने का दायित्व रहता है। अशक्य होने की तिथि से ७ दिन तक का समय 'प्रतीक्षा-काल' (Waiting Period) कहलाता है। इस समय के लिये कोई हरजाना नहीं मिलता।

दुर्घटनावश मृत्यु हो जाने पर २००) मासिक प्राप्त करने वाले कर्मचारी को उसका स्वामी ४०००) हरजाना देने के लिये बाध्य होता है, बशर्ते कि मृतक व्यक्ति वयस्क (Adult) हो। किन्तु अवयस्कों (Minors) को इस दशा में केवल २००) ही हरजाने में मिल सकते हैं। मृत्यु के समय उनका क्या वेतन था इसका हरजाने की रकम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

वृत्ति-सम्बन्धी रोगों (Occupational Diseases) के होने पर हरजाने की रकम का निर्धारण कमिश्नर अथवा न्यायालय द्वारा होता है। इस अवस्था में हरजाने का दावा करने वाले कर्मचारी को यह प्रमाणित करना पड़ता है कि वह अपने स्वामी के यहाँ छः मास से अधिक समय तक कार्य कर चुका है।

स्वामी के दायित्व के बीमा की आवश्यकता एवं उपयोगिता उपर्युक्त विवरण के आधार पर तनिक विचार करने से स्पष्ट हो जाती है। उद्योग-गृहों में जहाँ सहस्त्रों व्यक्ति काम करते हैं, जहाँ विभिन्न प्रकार की जोखिमें हर समय उपस्थित रहती हैं और जहाँ कोई भी दुर्घटना किसी भी समय घटित हो सकती है, उनके स्वामियों पर कितना महान उत्तरदायित्व रहता होगा इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। किन्तु अपने दायित्व का बीमा कराने की सुविधा उन्हें प्राप्त है। इस प्रकार का बीमा करा लेने से स्वामी का दायित्व हल्का हो जाता है, क्योंकि बीमा-कम्पनी उसे अपने ऊपर धारण कर लेती है। स्वामी को केवल निश्चित प्रीमियम देना पड़ता है। जब किसी दुर्घटना के फलस्वरूप स्वामी पर किसी कर्मचारी के प्रति दायित्व का उदय होता है तब कम्पनी उस दायित्व का स्वयं भुगतान कर देती है।

जिस प्रकार अन्य प्रकार के बीमों में सर्वप्रथम बीमा-कम्पनी का प्रस्ताव-पत्र भरा जाता है, स्वामी-दायित्व-बीमा कराने में भी वह आवश्यक होता है। इस प्रस्ताव-पत्र में प्रस्तावक को मुख्यत: निम्नलिखित विवरण देने पड़ते हैं :—

(१) नाम और पता।

(२) व्यवसाय सम्बन्धी सूचनाएँ।

(३) कर्मचारियों की संस्था, उनका नकद वेतन, मंहगाई, भत्ता, बोनस तथा कुल वार्षिक आय।

(४) बीमा कराये जाने वाले दायित्वों की संख्या(. . .)क्योंकि स्वामी का दायित्व केवल कर्मचारियों की क्षति-पूर्ति के विधान के अनुसार ही नहीं होता, वरन् घातक-दुर्घटना-विधान (Fatal Accident Act) तथा प्रचलित कानून (Common Law) के अन्तर्गत भी होता है।

(५) कारखाने से सम्बन्धित आवश्यक विवरण; जैसे तेजाब, गैस, रसायनिक तथा विस्फोटक पदार्थों का कहाँ तक उपयोग होता है, बायलर

का रजिस्ट्रेशन हुआ है अथवा नहीं, मशीन आदि घेर कर रक्खी गई हैं या नहीं और वे अच्छी अवस्था में हैं या नहीं।

(६) प्रस्तुत प्रस्ताव के पूर्व किसी अन्य कम्पनी ने बीमा करना अस्वीकृत तो नहीं किया है।

इन्हीं सूचनाओं के आधार पर बीमा-कम्पनी जोखिम की समीक्षा और प्रीमियम की दर का निर्धारण करती है।

बीमक का दायित्व प्रीमियम प्राप्त कर लेने के समय से आरम्भ हो जाता है और बीमा-पत्र में अंकित अवधि तक चालू रहता है। इस प्रकार के बीमा में भी नवकरण (Renewal) की व्यवस्था रहती है। स्वामी-दायित्व-बीमा-पत्र की कतिपय प्रमुख शर्तों का विवरण हम निम्नलिखित पंक्तियों में दे रहे हैं:—

(१) किसी सूचना या पत्र को कम्पनी के प्रधान कार्यालय अथवा शाखा में लिख कर भेजना बीमित के लिये आवश्यक होगा।

(२) किसी दुर्घटना, अशक्यता अथवा बीमारी के सम्बन्ध में इस प्रकार ज्ञान प्राप्त करने के ४८ घंटे के भीतर बीमित कम्पनी को सूचित करेगा और दुर्घटना, रोग आदि सम्बन्धी प्रत्येक लिखित अथवा मौखिक दावों की सूचनाएं बीमक के पास भेजेगा।

(३) बीमा कम्पनी से लिखित अधिकार प्राप्त किये बिना बीमित ऐसी दुर्घटना के प्रति, जिसके लिये कम्पनी का उत्तरदायित्व हो, कोई व्यय, मुकदमा आदि नहीं करेगा; न किसी दायित्व को स्वीकार करेगा और न निपटारा अथवा भुगतान करेगा। बीमा-पत्र के अन्तर्गत आने वाली प्रत्येक बात के सम्बन्ध में कम्पनी को बीमित के नाम तथा अपने लाभ में कानूनी कार्यवाही, प्रतिवाद, निपटारा आदि करने का पूर्णाधिकार होगा। ऐसी दशा में बीमित वे समस्त आवश्यक सूचनाएँ और दस्तावेज कम्पनी के पास भेजेगा जो उक्त कार्यों में कम्पनी के लिये सहायक हों। बीमित बीमा-पत्र में उल्लिखित दायित्व को चुकाने का कोई कॉन्ट्रैक्ट कम्पनी को जानकारी तथा लिखित स्वीकृति के बिना नही करेगा।

(४) दुर्घटनाओं का निराकरण करने के लिये बीमित उचित कार्य करेगा और कानून का पालन करेगा।

(५) प्रीमियम अथवा नवकरण प्रीमियम (Renewal Premium) प्राप्त करने के पूर्व किसी दुर्घटना अथवा रोग के प्रति कम्पनी का दायित्व नहीं रहेगा।

(६) कम्पनी किसी नवकरण प्रीमियम के स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं की जा सकती। कम्पनी नवकरण के लिये प्रीमियम चुकाने की तिथि की सूचना देने के लिये भी नहीं बाध्य की जा सकती।

(७) कर्मचारियों के वेतन, मजदूरी, भत्ता आदि का लेखन एक "पारिश्रमिक-पुस्तक" (Wages Book) में किया जायगा और कम्पनी को किसी भी समय इस पुस्तक के निरीक्षण का अधिकार होगा। साथ ही, बीमा की अवधि समाप्त होने के एक मास के भीतर बीमित कम्पनी के पास कर्मचारियों को दिये हुये समस्त वेतन, पुरस्कार आदि का विवरण भेजेगा। यदि इस प्रकार की दी हुई रकम पालिसी में उल्लिखित रकम, जिस पर प्रीमियम निर्धारित किया गया था, अधिक है, तो कम्पनी बीमित से अतिरिक्त प्रीमियम प्राप्त करेगी। इससे विपरीत अवस्था में कम्पनी उसके अनुपातानुसार प्रीमियम लौटा देगी।

ऐसी ही अन्य शर्तें भी परिस्थिति एवं आवश्यकता के अनुसार बीमा-पत्र में सम्मिलित की जा सकती हैं।

(३)

मोटर-बीमा

(Motor Insurance)

यातायात के प्रमुख साधनों में रेलगाड़ियों के पश्चात् मोटरों का ही स्थान है। कई दिशाओं में तो उनका महत्त्व रेलगाड़ियों से भी अधिक है; जैसे, अविकसित क्षेत्रों के विकास में। 'मोटर बीमा' उनके व्यवहार के परिणामस्वरूप दुर्घटनाओं

से उत्पन्न हानिओं के विरुद्ध सुरक्षा-प्राप्ति का माध्यम है। इसके अन्तर्गत लारी, टैक्सी, कार, माल ढोने वाली गाड़ियों, मोटर साइकिल आदि का बीमा होता है।

अन्य बीमों के समान मोटर का बीमा कराने के लिये भी प्रस्ताव-पत्र भरा जाता है। निजी और व्यवसायी मोटरों के लिये पृथक्-पृथक् प्रस्ताव-पत्र होते हैं। उनमें उनके परिचय-चिह्न चालकों के अनुभव, उनकी शारीरिक योग्यता तथा आयु, बाहन के मूल्य आदि से सम्बन्धित प्रश्न रहते हैं। बीमा कम्पनी निम्नांकित जोखिमें इस विषय में अपने ऊपर लेती है:—

(१) दुर्घटना के फलस्वरूप मोटर के स्वामी की व्यक्तिगत हानि।

(२) उसकी चोरी आदि का भय।

(३) अग्नि, विद्युत, विस्फोट और आवागमन के द्वारा उसके क्षति-ग्रस्त हो जाने की आशंका।

(४) किसी व्यक्ति द्वारा उसे द्वेषवश हानि पहुँचाने की सम्भावना।

(५) उसके उपयोग द्वारा सर्वसाधारण को हानि।

(६) क्षति-ग्रस्त हो जाने पर उसे मरम्मत के लिये भेजने और मरम्मत के व्यय।

(७) भिड़न्त अथवा किसी अन्य दुर्घटनावश हानि।

किन्तु उसके टायरों के सामान्य स्फोट अथवा उनमें पंचर हो जाने, स्वाभाविक मूल्य-ह्रास (Depreciation), यन्त्रों के कार्यायोग्य हो जाने, इंजिन की स्व-उत्पादित शक्ति से क्षति, उपयोग से हानि, उपद्रव, युद्ध, भूकम्प आदि की जोखिमों का उत्तरदायित्व कम्पनी अपने ऊपर कभी नही लेती। इसी प्रकार अनधिकृत चालक द्वारा मोटर के संचालन, गति-परीक्षा, और दौड़-प्रतियोगिता में भाग लेने से उत्पन्न हानि भी पालिसी के अन्तर्गत नहीं आती। यदि कोई व्यक्ति इनमें से किसी के विरुद्ध रक्षा प्राप्त करने का आकांक्षी होता है तो उसे कुछ अतिरिक्त प्रीमियम देना पड़ता है।

आरम्भ में मोटर-पालिसी में केवल उसकी क्षति तथा अन्य पक्षों के दावों की जोखिमें ही निहित की जाती थीं और प्रत्येक बीमे के लिये प्रीमियम-दर समान

रहती थी। कारण यह कि तब सभी मोटरें प्रायः समान श्रेणी की ही हुआ करती थीं। किन्तु मोटर निर्माण-व्यवसाय की प्रगति के साथ-साथ आजकल विभिन्न आकार-प्रकार, श्रेणी और गति-शक्ति की गाड़ियाँ बनने लगी हैं। फलतः समान-प्रीमियम-प्रणाली का प्रयोग त्याग दिया गया है और अब प्रत्येक प्रस्ताव के गुण-दोषों के आधार पर ही प्रीमियम निर्धारित किया जाता है। इस विषय में मोटर के निर्माता देश, चलित दूरी, रखने की व्यवस्था, परिचालन में सावधानी, गति-शक्ति, आकृति, मूल्य, क्रय का समय, कैसी सड़कों पर चलती है, किस क्षेत्र में चलती है आदि अनेकानेक बातों पर ध्यान दिया जाता है। निजी मोटरों के विषय में मूल्य तथा गति-शक्ति और व्यावसायिक मोटरों के विषय में पूर्वकथित दो तत्वों के अतिरिक्त कार्य-क्षेत्र, ढोए जाने वाले माल के प्रकार और व्यवहृत-मार्गों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। नगरों में चलने वाली बसों के सम्बन्ध में उनसे प्राप्त भाड़े का परिमाण भी दृष्टिकोण मे रक्खा जाता है। कहीं-कहीं वाहक-शक्ति (Carrying Capacity) के अनुसार भी व्यावसायिक मोटरों के प्रीमियम की दर निश्चित की जाने लगी है।

मोटरों के व्यापारियों को दी जाने वाली पालिसियाँ 'व्यापारिक पालिसी' (Trade Policies) कहलाती हैं। वे अधिकांशतः व्यावसायिक-मोटर पालिसियों के अनुरूप ही होती हैं; अन्तर केवल यही होता है कि बीमा कम्पनी केवल उसी क्षति के लिये उत्तरदायी होती है, जो मार्ग में 'टकराने (Collision) के फलस्वरूप होती है।

मोटर-बीमा में प्रायः निम्नलिखित प्रकार की पालिसियाँ ली जाती हैं :—

जन-दायित्व-पालिसी (Public Liability Insurance)

जब कोई व्यक्ति मोटर से टकरा कर घायल हो जाता है अथवा मर जाता है तब मोटर के स्वामी को कानून के अनुसार उसे अथवा उसके परिवार को हरजाना देना पड़ता है। यह एक बड़ी जोखिम है; क्योंकि उक्त प्रकार की दुर्घटना आकस्मिक होती है। 'जनदायित्व-बीमा-पालिसी' लेकर ऐसी जोखिमों से सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है। किसी मोटर-दुर्घटना के फलस्वरूप जब कभी अन्य

व्यक्तियों के प्रति मोटर-मालिक के दायित्व का प्रश्न उठता है तब बीमा कम्पनी जन-दायित्व-बीमा-पालिसी की शर्तों के अनुसार उसकी क्षति-पूर्ति करती है। किसी अन्य व्यक्ति के आहत हो जाने पर डाक्टरी व्यय करने, उसे हरजाना देने, बीमित पर किये गये दावों की जाँच-पड़ताल और उनका निपटारा करने तथा तत्सम्बन्धी मुकदमों की पैरवी आदि करने का भार कम्पनी पर रहता है।

जन-दायित्व-बीमा-पत्र में सामान्यतः ऐसी स्थितियों का भी उल्लेख रहता है जिनमें बीमा कम्पनी क्षति-पूर्ति के लिये बाध्य नहीं होती; जैसे, बीमा कम्पनी बीमित-मोटर (Insured Motor) को चलाने वाले व्यक्ति अथवा उसके स्वामी के कर्मचारियों अथवा उसके परिवार के किसी व्यक्ति के आहत हो जाने पर हरजाना के लिये बाध्य नहीं होती।

सम्पत्ति-क्षति-पालिसी (Property Damage Insurance) : मोटर-दुर्घटना से केवल वैयक्तिक ही नहीं, साम्पत्तिक क्षति भी हो सकती है; यथा, किसी दूकान, मकान अथवा उसके किसी भाग का नष्ट हो जाना। इस स्थिति में भी मोटर-मालिक क्षति-ग्रस्त सम्पत्ति की मरम्मत का व्यय अथवा हरजाना देने के लिये उत्तरदायी होता है। बीमा कम्पनी के 'सम्पत्ति-क्षति-बीमा-पत्र' के द्वारा मोटर का स्वामी ऐसी जोखिम से सुरक्षित हो सकता है। किन्तु जन-दायित्व-बीमा-पालिसी के समान इस बीमा-पत्र के अन्तर्गत भी कम्पनी मोटर दुर्घटना द्वारा बीमित अथवा उसके कर्मचारियों आदि की सम्पत्ति के प्रति कोई उत्तरदायित्व नहीं ग्रहण करती। इसी प्रकार यदि मोटर-दुर्घटना के परिणाम स्वरूप आग लग जाने के कारण यदि किसी व्यक्ति की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है तो भी कम्पनी पर कोई दायित्व नहीं आता। इसमें भी कम्पनी को मुकदमों का प्रतिवाद करने, दावों के सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल करने तथा उनका निपटारा करने का अधिकार प्राप्त रहता है। ऐसे बीमा-पत्रों में प्रायः एक अधिकतम रकम अंकित रहती है। इसी अधिकतम रकम की सीमा तक कम्पनी से क्षति-पूर्ति प्राप्त की जा सकती है।

चोरी का बीमा (Automobile Theft Insurance) : मोटर की चोरी एक साधारण बात है। उसकी चोरी की जोखिम भी बीमा द्वारा दूर की जा सकती है। इसके अनुसार मोटर की चोरी होने पर पालिसी में अंकित रकम की सीमा तक बीमा-कम्पनी क्षति-पूर्ति करने का दायित्व स्वीकार करती है। क्षति-पूर्ति या तो हानि की रकम देकर अथवा पुनर्स्थापन द्वारा की जा सकती है। पुनर्स्थापन उसी दशा में हो सकता है जब उससे सम्बन्धित कोई शर्त पालिसी में उल्लिखित हो। इस प्रकार का बीमा करने में सस्ते मोटरों पर मूल्यवान मोटरों की अपेक्षा बीमा कम्पनी को अधिक जोखिम उठानी पड़ती है, क्योंकि सस्ते मोटरों को चुरा कर बेच देना प्रायः सरल होता है। यही कारण है कि मूल्यवान मोटरों की अपेक्षा सस्ते मोटरों पर प्रीमियम की दर कुछ अधिक होती है। विभिन्न प्रकार की मोटरों का अनेक बातों को दृष्टि में रखते हुए बीमा-कम्पनी प्रीमियम निर्धारण के उद्देश्य से वर्गीकरण करती है। मोटर का उपयोग न करने पर प्रीमियम में १०-१५ प्रतिशत की छूट दी जाती है।

मोटर-अग्नि-बीमा (Automobile Fire Insurance) : 'मोटर-अग्नि-बीमा-पत्र' के अन्तर्गत बीमा कम्पनी मोटर के ढाँचे, मशीनरी अथवा अन्य सामग्रियों की अग्नि द्वारा क्षति होने पर हानि-पूर्ति का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेती है। इसकी शर्तों में मोटर को वज्रपात द्वारा तथा उसे किसी वाहक (Carrier) द्वारा स्थानान्तर करने में होने वाली हानि भी सम्मिलित रहती है। साधारणतः जो जोखिमें अग्नि-बीमा-पत्र के अन्तर्गत नहीं आतीं ,उन्हें मोटर अग्नि-बीमा-पत्र में भी स्थान नहीं दिया जाता।

मोटर-भिड़न्त-बीमा-पलिसी (Automobile Collision) : इस बीमा-पत्र की शर्तों के अनुसार बीमा कम्पनी मोटर की मुठभेड़ के कारण हानि अथवा क्षति होने पर उसकी पूर्ति करने का उत्तरदायित्व लेती है। इसमें हानि के आगणन के लिये मरम्मत का पूर्ण व्यय अथवा बाजार-मूल्य का आधार लिया जाता है। अधिकांशतः

मोटर के मूल्य के किसी अंश के लिये ही यह बीमा कराया जाता है, क्योंकि उसकी पूरी कीमत का बीमा कराने में प्रीमियम बहुत अधिक देना पड़ता है। आजकल ऐसे बीमा-पत्र अधिक प्रचलित हैं जिनकी शर्तों के अनुसार हानि की एक सीमा निश्चित रहती है। इस सीमा तक हानि होने पर मोटर-मालिक स्वयं ही उसे उठाता है—कम्पनी उसकी क्षति-पूर्ति के लिये किंचित् भी उत्तरदायी नहीं होती, जैसे प्रथम पचास रुपये की हानि बीमित स्वयं उठावे। इससे अधिक हानि का उत्तरदायित्व बीमक पर होगा।

गैरेज-कीपर का बीमा (Garage Keeper's Insurance) : गैरेज के मालिक, मोटर बेचने वाले या सर्विस-स्टेशन आदि से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों के लिये उपर्युक्त बीमा-पत्र उपयोगी नहीं होते, क्योंकि वे उन मोटरों के प्रति उत्तरदायी होते हैं, जो उनके पास रखने या मरम्मत करने के लिये आती हैं। इनके लिये 'गैरेज-कीपर-पालिसी' विशेष रूप से उपयुक्त होती है। इसके अन्तर्गत कम्पनी प्रायः तीन योजनाओं पर उत्तरदायित्व ग्रहण करती है : (१) विशिष्ट-मोटर-योजना-पालिसी (Specified Car Plan) में प्रत्येक मोटर का बीमा-पत्र में उल्लेख रहता है और बीमा कम्पनी केवल उल्लिखित मोटरों के प्रति ही दायी होती है; (२) 'नामांकित-चालक-योजना-पालिसी' (Named Driver Plan) में बीमा कम्पनी केवल ऐसी क्षतियों के प्रति दायी होती है जो बीमा-पत्र में उल्लिखित चालक द्वारा मोटर चलाने पर होती है तथा (३) 'वेतन-योजना-पालिसी (Pay Roll Plan) में गैरेज के कुल वेतन के आधार पर प्रीमियम निर्धारित किया जाता है और इसकी शर्तों के अनुसार कम्पनी सभी प्रकार के जोखिमों को संवृत्त करती है।

(४)

उधार का बीमा

(Credit Insurance)

उधार-बीमा-पालिसी के द्वारा बीमित अपने पावने की हानि से सुरक्षित हो जाता है। यह दो प्रकार की हो सकती है : सीमित अथवा असीमित।

सीमित पालिसी में बीमित धन अंकित रहता है, अर्थात् बीमक और बीमित के मध्य यह पहिले से ही निश्चित हो जाता है कि बीमक किस सीमा तक हानि-पूर्ति करेगा। असीमित पालिसी में बीमक के दायित्व का निर्धारण बीमा होने के समय नहीं किया जाता और न बीमित धन ही उसमें अंकित रहता है।

इस प्रकार के बीमों में बीमक पर जोखिम की मात्रा आवश्यकता से कहीं अधिक होती है क्योंकि बीमित के लिये विश्वासघात, प्रपंच, बेईमानी आदि करने के अवसर सुलभता से उपलब्ध हो सकते हैं। अतः बीमा कम्पनी अपनी सुरक्षार्थ अनेक शर्तें पालिसी में सम्बद्ध कर देती है, यथा, साधारण हानि स्वयं बीमित को ही सहन करनी होगी, ऋणी के दिवालिया होने के कारण अप्राप्य पावने की क्षति पूर्ति ही बीमा कम्पनी करेगी, बीमित की प्रमाणित आर्थिक स्थिति के अनुसार ही साधारणतः बट्टेखाते के रूप में होने वाली हानि से अधिक की पूर्ति की जायगी, इत्यादि।

उधार-बीमा का आरम्भ अभी निकटपूर्व ही में हुआ है। अतः अन्य दुर्घटना बीमों के सदृश उसके प्रीमियम की दरें अतीतानुभव पर आधारित नहीं के समान ही होती हैं। यह एक विचित्र बात है कि जैसे-जैसे उसके अनुभव का परिमाण बढ़ता जाता है, प्रीमियम की दरें भी अधिक होती जा रही हैं। इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर देना असंगत न होगा कि बीमा कम्पनी केवल अकस्मात ऋण डूबने की क्षति के निमित्त ही उत्तरदायी होती है। साथ ही उस क्षति को असाधारण भी होना चाहिये।

बड़े-बड़े व्यापारियों, व्यवसायियों और उद्योगपतियों के लिये यह बीमा अत्यन्त लाभप्रद होता है; क्योंकि वे अपने सन्देहपूर्ण तथा डूबे हुए ऋणों (Doubtful and Bad Debts) की असाधारण हानियों से प्रभावित नहीं हो पाते।

उधार -बीमा पालिसियों को मुख्यतः दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत वे पालिसियाँ आती हैं जिनके अनुसार बीमा कम्पनी ऋण की वसूली का भार अपने ऊपर नहीं लेती, केवल यह उत्तरदायित्व

लेती है कि वह ऋणी के उधार चुकाने में असमर्थ होने पर बीमित की क्षति-पूर्ति कर देगी। इसमें बीमित को यह प्रमाणित करना पड़ता है कि उसे वास्तव में क्षति हुई है। दूसरी श्रेणी में हम उन पालिसियों को रखते हैं जिनकी शर्तों के अनुसार कम्पनी ऋण वसूली का भार भी अपने ऊपर ले लेती है।

दूसरी श्रेणी की पालिसियाँ दो प्रकार की होती हैं। (१) इसमें ऋण की वसूली कम्पनी द्वारा कराना बीमित की इच्छा पर निर्भर रहता है। ऐसी पालिसियों को 'वैकल्पिक-वसूली-पालिसी' (Optional Collection Policy) कहा जाता है और इसमें एक निश्चित अवधि रहती है, जिसके भीतर यदि बीमित चाहे तो कम्पनी के पास ऐसे ऋणियों के सम्बन्ध में विवरण भेज सकता है जिन्होंने अपना ऋण समय के भीतर नहीं चुकाया है—चाहे वे ऋण चुकाने में समर्थ हों अथवा नहीं। यदि वह ऐसा विवरण कम्पनी के पास नहीं भेजता है तो कम्पनी उसी समय वहन करती है जब ऋणी बीमा-पत्र में दी हुई परिभाषा के अनुसार दिवालिया हो जाता है। (२) इसमें ऋण की वसूली करने का अधिकार बीमा-कम्पनी को ही रहता है। यह 'अनिवार्य-वसूली-पालिसी' (Compulsory Collection Policy) कही जाती है। इस प्रकार की पालिसियों के अन्तर्गत बीमित के लिये यह आवश्यक होता है कि भुगतान की अवधि पूर्ण हो जाने के पश्चात्, पालिसी में उल्लिखित समय के भीतर, वह ऐसे खातों का विवरण कम्पनी के पास भेज दे जो भुगतान की अवधि के भीतर चुकता नहीं हुये हैं। यदि बीमित ऐसा नहीं करता है तो उक्त ऋणों के डूब जाने पर कम्पनी या तो कोई क्षति-पूर्ति नहीं करेगी अथवा कुल हानि का केवल एक अंश ही, पालिसी की शर्तों के अनुसार, वहन करेगी।

अध्याय २६

जामिनी-बीमा, विश्वसनीयता का बीमा, बायलर-बीमा तथा शीशे की चद्दरों का बीमा

५

जामिनी बीमा (Suretyship Policies)

वर्त्तमान समय में समाज का गम्भीर नैतिक पतन हो जाने के कारण प्रत्येक व्यक्ति इसी प्रयत्न में रहता है कि किस प्रकार वह दूसरों को धोखा देकर अपना मनोरथ सिद्ध कर ले। ऐसी परिस्थिति में किसी पर सहसा विश्वास कर लेना स्वयं ही संकट को आमंत्रित करना है। अत: जब किसी व्यक्ति को किसी उत्तरदायित्वपूर्ण उच्च पद पर प्रतिष्ठित होने का अवसर मिलता है, उसे ज़मानतरूपी चक्रव्यूह का भेद भी करना पड़ता है। इस सम्बन्ध में सम्पन्न व्यक्तियों के लिये तो कोई कठिनाई उपस्थित नही होती; किन्तु निर्धनों के सम्मुख जीवन-मरण का प्रश्न अवश्य उत्पन्न हो जाता है। यदि कोई धनवान व्यक्ति उनकी सहायता करने के लिये प्रस्तुत हो जाता है तब तो समस्या का समाधान हो ही जाता है; किन्तु उसके अभाव में हताश हो जाने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय निर्धन मनुष्य के निकट नहीं रह जाता।

इन परिस्थितियों के कारण ही 'जामिनी-बीमा' का जन्म हुआ है। जामिनी-बीमा-पालिसी प्राप्त कर लेने से किसी सम्पत्तिशाली व्यक्ति को कष्ट देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बीमा कम्पनी ही पालिसी में अंकित रक़म की सीमा

तक बीमित की ईमानदारी, सत्यवादिता, सद्व्यवहार आदि के निमित्त जामिनी बन जाती है। इसी 'जामिनी-पालिसी' को 'विश्वसनीयता की दस्तावेज़' (Suretyship or Fidelity Bond)) कहते हैं।

इस प्रकार की पालिसियाँ कोषाध्यक्षों, विक्रेताओं, ऋण-संग्रहको, ऋण-समितियों के परिचालको के लिये अत्यन्त उपयोगी होती हैं। बीमा कम्पनी जामिनी-बीमे के अनुसार जालसाज़ी, धोखा, हस्तगत धन के दुरुपयोग आदि की जोखिमें अपने ऊपर लेती हैं।

कभी-कभी कम्पनी बीमित की विश्वसनीयता के साथ-साथ उसकी योग्यता का उत्तरदायित्व भी ले लेती है। उस दशा में पालिसी को 'विश्वसनीयता और योग्यता की दस्तावेज़' (Fidelity and Ability Bond)) कहते हैं।

६

विश्वसनीयता का बीमा
(Fidelity Insurance)

इस प्रकार के बीमे का प्रचलन हमारे देश में भी क्रमशः प्रचलित होता जा रहा है। किन्तु भारतीय बीमा कम्पनियों की अभिरुचि इस ओर अभी नहीं हुई है। उसका जो कुछ भी व्यवसाय होता है वह केवल विदेशी कम्पनियों के द्वारा ही होता है।

यह बीमा मिल-मालिकों, उद्योगपतियों, तथा बड़े-बड़े व्यापारियों के लिये विशेष रूप से लाभप्रद होता है। प्रायः अपने प्रपंची, असत्यवादी और कपटी कर्मचारियों के कारण उन्हें गहरी हानि उठानी पड़ती है। उनके अवांछनीय कार्यों की सम्भावना के विरुद्ध बीमा करा लेने से बीमित उनसे उत्पन्न हो सकने वाली हानि से सुरक्षित हो जाता है। कोई भी व्यापारी अपने समस्त अथवा किसी एक कर्मचारी के लिये ऐसा बीमा करा सकता है। भविष्य में बीमित अवधि के भीतर यदि उस व्यक्ति के विश्वासघात, स्तेय, प्रवंचना, धन के दुरुपयोग आदि के कारण बीमित को हानि होती है तो बीमा कम्पनी उसकी पूर्ति करने के निमित्त उत्तरदायी होगी।

इस बीमे की पालिसियाँ तीन प्रकार की होती हैं:—

(१) व्यक्तिगत पालिसी—इसके अन्तर्गत कम्पनी केवल एक ही कर्मचारी के अवांछनीय कार्यों का उत्तरदायित्व लेती है।

(२) सामूहिक पालिसी—इसके द्वारा बीमित अपने समस्त कर्मचारियों, सेवकों आदि के छल-कपट की ओर से निश्चिन्त हो जाता है। समूह के प्रत्येक सदस्य के पदानुरूप रकम पालिसी मे अंकित रहती है। किसी कर्मचारी के पद-त्याग कर जाने पर उसके रिक्त-स्थान की पूर्ति करने वाला नवागंतुक स्वतः ही उस समूह मे स्थान प्राप्त कर लेता है। उसके लिये बीमित को पृथक् प्रीमियम नही देना पड़ता। किन्तु, यदि किसी कर्मचारी के अपराध के कारण कम्पनी क्षति-पूर्ति कर चुकी है तो अपराधी के रिक्त स्थान पर कोई अन्य व्यक्ति प्रतिस्थापित नहीं हो सकता। उसे पृथक् प्रीमियम देने पर ही समूह में सम्मिलित कराया जा सकता है।

(३) खुली पालिसी—इसमें भी समस्त कर्मचारियों का ही बीमा कराया जाता है, किन्तु वह एक समन्वित निश्चित धन के लिये होता है। ज्यों-ज्यों उनके अपराधों के कारण उत्पन्न क्षति की पूर्ति कम्पनी द्वारा होती जाती है, बीमित धन का परिमाण भी क्रमशः घटता जाता है। प्रत्येक अपराधी द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति करने वाले व्यक्ति के लिये पृथक् प्रीमियम चुकाते रहने से बीमित धन यथा पूर्व भी रह सकता है।

७

बायलर-बीमा

(Boiler Insurance)

जिस प्रकार मशीनों का बीमा होता है उसी प्रकार बायलर का भी हो सकता है। उससे सम्बन्धित सर्वप्रधान जोखिम विस्फोट की है। उसके विरुद्ध 'बायलर-बीमा' द्वारा व्यवस्था की जा सकती है। उक्त विस्फोट से सम्बन्धित निम्नांकित हानियों के लिये कम्पनी दायी होती है :—

(अ) श्रमिक-क्षति-पूर्ति-विधान (Workmen's Compensation Act) के अन्तर्गत दायित्यों के अतिरिक्त, जो आहत श्रमिकों की क्षति-पूर्ति चुकाने से होती है।

(ब) जो स्वयं बायलर अथवा बीमित की अन्य सम्पत्तियों की होती है।

(स) अन्य व्यक्तियों की सम्पत्तियाँ क्षति-ग्रस्त हो जाने पर, जो उनकी क्षति-पूर्ति के रूप में उठानी पड़ती है।

८

शीशे की चद्दरों का बीमा
(Plate Glass Insurance)

निवास-गृहों, दूकानों आदि में शीशे का उपयोग कोई नवीन वस्तु नहीं है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही वह जन साधारण से लेकर शासकों, राजाओं और समृद्धिशाली व्यक्तियों का प्रियपात्र रहा है। आजकल प्राच्य देशों में उसका विशेष प्रचलन है।

शीशे की सुकुमारता तो जगत-प्रसिद्ध है। घनिष्ठ सम्बंधों को कभी-कभी उससे उपमा दी है। वास्तव में सदैव ही उसके टूट जाने का भय लगा रहता है, जिसके चरितार्थ होने पर उसके उपयोग-कर्त्ताओं को पर्याप्त आर्थिक क्षति होती है। यही उसके बीमे के जन्म का कारण है।

बीमा कम्पनी उसकी चद्दरों के टूटने-फूटने की ही हानि-पूर्ति का दायित्व अपने उपर लेती है बशर्ते कि वह उपद्रव, युद्ध, विस्फोट आदि का परिणाम न हो। साथ ही व्यापारिक-स्थलों में लगे हुए शीशों के भग्न होने के फलस्वरूप किसी वस्तु; किसी व्यक्ति अथवा व्यापारिक लाभ (Business Profit) को पहुँचने वाली क्षति के लिये बीमित क्षति-पूर्ति का अधिकारी नहीं हो सकता। इसी प्रकार वासस्थानों में द्वार, झरोखे, खिड़कियों आदि में अवस्थित शीशों की हानि की जोखिम ही कम्पनी धारण करती है; अन्य भागों अथवा वस्तुओं में जड़ित

शीशों की भग्नता की जोखिम अतिरिक्त प्रीमियम देने से बीमक के कन्धों पर डाली जा सकती है।

व्यापारिक स्थानों के विषय में, इस प्रकार के बीमे का प्रीमियम बीमित वस्तु के मूल्य, स्थिति, आकार आदि के आधार पर निर्धारित किया जाता है। वास-स्थानों के सम्बन्ध में उसका निरूपण कमरों की संख्यानुसार होता है। अन्य प्रकार के बीमों के विपरीत इसमें बीमा कम्पनियाँ क्षति-पूर्ति प्रायः नकद नहीं करती; विनष्ट अथवा क्षति-ग्रस्त वस्तु को पुनःस्थापित कर देती हैं।

षष्ठ भाग

भारतीय बीमा-विधान का संक्षिप्त परिचय

अध्याय ३०

भारतीय बीमा-विधान का संक्षिप्त परिचय

भारत में बीमा-विधान का वास्तविक श्रीगणेश अभी निकटपूर्व ही में हुआ है। हम कह सकते हैं कि इसका प्रारम्भ सन् १९१२ मे होता है। तथापि इस सम्बन्ध में कतिपय प्राचीन विधानों का उल्लेख किया जा सकता है; यथा, सन् १८६६ का १०वाँ विधान, अग्नि और सामुद्रिक बीमा पालिसियों के प्रदान (Assignment) का विधान। ऐसे ही दो अन्य विधान सन् १८९३ में निर्मित हुये थे। सन् १८८०—८५ के मध्य जिन बीमा कम्पनियों ने अपना व्यवसाय आरम्भ किया था उनका निर्माण या तो सन् १८६६ के १० वें विधान के अन्तर्गत हुआ था, अथवा वे सन् १८८२ के भारतीय कम्पनी विधान द्वारा नियन्त्रित होती थीं।

वर्त्तमान शताब्दी के प्रथम दस वर्षों में भारत में प्रबल स्वदेशी आन्दोलन के आरम्भ हो जाने के परिणामस्वरूप अनेक बीमा कम्पनियों और प्रावीडेन्ट समितियों का उदय हुआ। परन्तु एक तो अपर्याप्त पूंजी और दूसरे तत्कालीन भारतीय कम्पनी विधान के नियमों द्वारा प्रयुक्त नियन्त्रण की अपूर्णता के कारण उनमें अनेक प्रकार की दुष्प्रवृत्तियाँ लक्षित होने लगीं। यह देख कर सरकार ने केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा ((Legislative Assembly) के द्वारा समुचित विधान निर्मित करा कर बीमा कम्पनियों पर समीचीन नियन्त्रण करने का निश्चय किया। फलतः सन् १९११ में दो बिल केन्द्रीय एसेम्बली में उपस्थित किये गये, जो पास हो जाने पर क्रमशः सन् १९१२ का ५वाँ विधान—प्रावीडेन्ट इन्श्योरेन्स

सोसाइटीज़ ऐक्ट तथा सन् १९१२ का ६ठा विधान—इण्डियन लाइफ इन्श्यो-रेन्स कम्पनीज़ एक्ट कहलाये।

इनमें से प्रथम का निर्माण इंग्लैण्ड की फ्रेन्डली सोसायटीज़ (Friendly Societies of England) के आधार पर हुआ था और ऐसी बीमा संस्थाओं से सम्बन्धित था, जो विवाह, रोग अथवा इसी प्रकार की अन्य बातों का बीमा करती थीं तथा कतिपय प्रतिबन्धों के अन्तर्गत जीवन-बीमा का व्यवसाय भी करती थीं। उसकी व्यवस्था का कार्य प्रान्तीय सरकारों को सौंप दिया गया था। द्वितीय विधान—भारतीय जीवन-बीमा-कम्पनी-विधान—का सम्बन्ध केवल जीवन-बीमा से ही था जैसा कि उसके नाम से ही स्पष्ट है। इस विधान की व्यवस्था का भार केन्द्रीय सरकार ने स्वयं अपने हाथों में रक्खा था। इसका आधार सन् १९०९ का इंग्लैण्ड का बीमा-विधान था। भारतीय और इंग्लिश बीमा विधानों में अन्तर केवल इतना ही था कि भारतीय विधान केवल जीवन-बीमा के क्षेत्र ही में सीमित था। अन्य श्रेणियों के बीमों—अग्नि, सामुद्रिक, दुर्घ-टना आदि—की उसमें चर्चा तक भी नहीं की गई थी। इस उपेक्षा के सम्बन्ध में सरकार द्वारा दिये गये कारणों में से मुख्य ये थे : जीवन-बीमा के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का बीमा करने वाली भारतीय कम्पनियों की संख्या यहाँ नगण्य है; भारत में बीमा व्यवसाय की अवस्था को ध्यान में रखते हुए उनके लिये कानून बनाना अनावश्यक है आदि। इस दिशा में किसी भी कानून की अनुपस्थिति का परिणाम विदेशी बीमा कम्पनियों को, जिनका एक प्रकार से बीमा व्यवसाय के क्षेत्र में एकाधिकार था, अपना कार्य करने के लिये पूर्णतः स्वतन्त्र रखना था।

केवल इतना ही नहीं, जीवन-बीमा के व्यवसाय के लिये भी सन् १९१२ का भारतीय बीमा-कम्पनी-विधान उतना लाभदायक नहीं था, जितनी उससे आशा की गई थी। इस सम्बन्ध में निम्नांकित आक्षेप उस पर लागू होते थे:—

(१) विदेशी बीमा कम्पनियों के सम्बन्ध में धरोहर के नियम का अभाव था।

(२) बीमा कम्पनियों की संख्या में विवेकहीन रूप से प्रसार (mush-

room growth) को रोकने के लिये भारी धरोहर के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया था।

(३) विनियोग पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं था।

(४) भारत में किये गये व्यवसाय से सम्बन्धित विवरण देने की आवश्यकता से विदेशी कम्पनियाँ मुक्त थीं।

(५) विधान की व्यवस्था के लिये पृथक् विभाग की योजना नहीं की गई थी।

(६) किसी कम्पनी के निर्बल विदित होने पर भी सरकारी बीमा-गणितज्ञ को जांच करने का अधिकार प्राप्त नहीं था।

(७) सपरिषद गवर्नर-जनरल (Governor General in Council) को यह अधिकार था कि वह किसी भी कम्पनी को विधान के नियम पालन से मुक्त कर दे।

उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त अनेक दोष उस समय स्पष्ट रूप से लक्षित होने लगे जब विधान को व्यवहारिक रूप दिया गया। उनमें से कुछ एक को १९१६ और १९१९ के विधानों के द्वारा निवारण किया गया था। किन्तु जनता को इन सब वातों से सन्तोष नहीं हुआ और सार्वजनिक संस्थाएँ विदेशी बीमा-कम्पनियों से उनके अग्नि, सामुद्रिक एवं अन्यान्य प्रकार के बीमा व्यवसायों के सम्बन्ध में विवरणों को प्राप्त करने एवं प्रकाशित करने के लिए विधान निर्माण करने की आग्रहपूर्ण माँग करती रहीं। सरकार ने उनकी माँग को स्वीकार करके बीमा-विधान में पुनः संशोधन करने का निश्चय किया और तदनुसार १९२५ में एक ऐसा बीमा-विधान बनाने के विचार से जो ब्रिटिश भारत में कार्यरत समस्त बीमा-कम्पनियों पर लागू हो सके, व्यवस्थापिका सभा (Legislative Assembly) में एक बिल उपस्थित किया। साथ ही उसे जनमत प्राप्त करने के दृष्टिकोण से प्रकाशित भी कर दिया गया। उस पर प्रान्तीय सरकारों, सार्वजनिक संस्थाओं, बीमा-विशेषज्ञों आदि हर प्रकार के व्यक्तियों ने अपने-अपने मत प्रकट किये और सरकार ने भी उससे संबद्ध यथेष्ट सामग्री एकत्रित कर ली जिससे बिल शीघ्रातिशीघ्र विधान का रूप धारण कर ले।

इसी समय इंगलैण्ड के बीमा-विधान की समीक्षा करके रिपोर्ट करने और उसे समयानुकूल बनाने के लिये आवश्यक संशोधनों के सुझाव देने के लिये श्री ए० सी० क्लासन (A. C. Clauson) की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति की गई। अतः भारत-सरकार ने क्लासन कमेटी की खोजों और सुझावों का लाभ उठाने के उद्देश्य से विल को स्थगित कर दिया।

क्लासन कमेटी की रिपोर्ट सन् १९२७ में प्रकाशित हुई और भारत सरकार ने १९२८ का २० वाँ विधान पास किया। इसे पास करने का उद्देश्य भारतीय और अभारतीय बीमा-कम्पनियों के जीवन तथा अन्य बीमा-व्यवसाय के आँकड़े एकत्रित करने के लिये अधिकार प्राप्त करना था।

ग्रेट ब्रिटेन की सरकार ने क्लासन कमेटी की रिपोर्ट के सुझाव को स्वीकार नहीं किया। अतः भारत-सरकार भी उसकी ओर से उदासीन हो गई। किन्तु एक विशद बीमा-विधान के लिए भारतीय जनता की प्रति दिन वृद्धिशील माँग को दृष्टि में रखकर उसने एक विशेष अधिकारी (Special Officer) की नियुक्ति की। उस विशेष अधिकारी का कार्य भारतीय बीमा-व्यवसाय के क्षेत्र का निरीक्षण करके उसकी रिपोर्ट देना और यह सिफारिश करना था कि किस प्रकार का कानून उसके लिये उपयुक्त होगा। उसने सन् १९३५ के अन्त की ओर अपनी रिपोर्ट उपस्थित की। तब सरकार ने एक परामर्शदात्री-समिति (Consultaive Committee) की नियुक्ति की जिसके सदस्य विभिन्न हितों के प्रतिनिधि थे। इस समिति की स्थापना का प्रयोजन विशेष अधिकारी की सिफारिशों पर उनकी सम्मति प्राप्त करना था। इसके अनन्तर बिल की रचना हुई और जनमत ज्ञात करने के लिये उसे प्रकाशित कर दिया गया। सन् १९३७ में उसे व्यवस्थापिका-सभा में पेश किया गया और एक वर्ष के पश्चात् सन् १९३८ में उसने कानून का रूप धारण कर लिया। किन्तु व्यवहार में वह सन् १९३९ की पहली जुलाई से आया। उस समय से यही बीमा-विधान बीमा-व्यवसाय का नियन्त्रण कर रहा है। समय-समय पर इसकी धाराओं में उचित

संशोधन भी हुये हैं।† इस समय विद्यमान बीमा-विधान में बड़े सुधारों की आवश्यकता अनुभव की जा रही है और भारत-सरकार भी इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर रही है।

सन् १९३८ के बीमा-विधान की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि उसकी कोटि का विशद बीमा-विधान उसके पूर्व भारत में कभी नहीं बना था। वह केवल जीवन-बीमा पर ही लागू नही होता, वरन् इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के बीमे भी उसके अन्तर्गत ही हैं। बीमा-कम्पनियों पर सरकार का कठोर नियन्त्रण एवं निरीक्षण रखने के लिये उसमें यथेष्ठ नियम समाविष्ट हैं। बीमा-अधीक्षक (Superintendent of Insurance) के द्वारा सरकार उक्त नियन्त्रण एवं निरीक्षण का प्रयोग करती है। बीमा-विधान में उल्लिखित विभिन्न नियम गम्भीर वाद-विवाद के विषय रहे हैं। उसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि भारत में निर्मित समस्त विधानों से वह सर्वाधिक विवाद-ग्रस्त है।

विधान में उल्लिखित नियम निम्नांकित विषयों से सम्वन्धित हैं:—

(१) बीमा कम्पनियों से,

(२) उनके विनियोग कार्य, ऋण तथा व्यवस्था से,

(३) सम्मिलन (Amalgamation) और बीमा-व्यवसाय के हस्तान्तर से,

(४) एजेन्टों का लाइसेन्स देने और उनके कमीशन आदि से,

(५) विशेष नियमों के निर्माण से,

(६) प्रावीडेन्ट सोसाइटियों से,

(७) पारस्परिक (Mutual) और सहकारी (Co-operative) जीवन-बीमा सोसाइटियों से,

---

†संशोधनार्थ सन् १९३९ में एक इन्श्योरेन्स (अमेण्डमेन्ट) ऐक्ट पास हुआ था। तत्पश्चात् १९४४ में दो बार और सन् १९४६ में एक बार ऐसे अमेण्डमेन्ट पास किये गये हैं।

(८) विविध नियम।

उक्त नियमों के अतिरिक्त बीमा-विधान में अनेक अनुसूचियाँ (Schedules) निहित हैं, जिनमें विवरण (Returns)) के सम्बन्ध में आवश्यक नियम तथा फार्म इत्यादि दिये गये हैं और बीमक को अपनी आर्थिक स्थिति दिखाने के लिये इन्हीं फार्मों में विवरण तैयार करना पड़ता है। इन नियमों के अनुसार ही चिट्ठा (Balance Sheet), लाभ-हानि खाता (Profit & Loss Account), आगम खाता (Revenue Account), बीमा-गणितज्ञ की रिपोर्ट आदि प्रस्तुत की जाती हैं। इस प्रकार वर्त्तमान विधान अनेक विधियों से बीमा-व्यवसाय पर नियन्त्रण रखता है। इससे सम्बन्धित पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के निमित्त बीमा-विधान का आद्योपान्त अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है। अब हम यहाँ विधान में निहित प्रमुख बातों का संक्षेप में उल्लेख करेंगे।

बीमा-कम्पनी का रजिस्ट्रेशन : बीमा-व्यवसाय करने की इच्छुक संस्था को अपना व्यवसाय प्रारम्भ करने के पूर्व बीमा-अधीक्षक से रजिस्ट्रेशन का प्रमाण-पत्र प्राप्त करना आवश्यक होता है। उक्त प्रमाण-पत्र प्राप्त किये बिना यदि कोई संस्था बीमा-कार्य करती है, तो धारा १०२ के अनुसार २०००) तक के जुरमाने का दण्ड दिया जा सकता है। साथ ही रजिस्ट्रेशन-हीन-संस्था से जान-बूझ कर बीमा कराने वाला व्यक्ति भी १००) तक के आर्थिक दण्ड का भागी हो सकता है।

रजिस्ट्रेशन कराने के लिये निम्नांकित नियमों का पालन आवश्यक होता है :—

(१) संस्था का नाम न तो किसी वर्त्तमान कार्यशील बीमा-संस्था के नाम के अनुरूप हो और न ऐसा हो कि जनता को किसी चालू संस्था का भ्रम हो जाय।

(२) वह एक निश्चित रकम धरोहर (Deposit) के रूप में और जीवन-बीमा का व्यवसाय करने के लिये एक न्यूनतम रकम कार्यवाहक पूंजी (Working Capital) के रूप में रक्खे।

"धरोहर की शर्तें : लायड्स-संस्थाओं के अतिरिक्त अन्य सभी बीमा-संस्थाओं को रिजर्व बैंक के पास अपने व्यवसाय के लिये निम्नांकित रकमें धरोहर के रूप में जमा करनी पड़ती हैं † :—

	रूपये
(अ) केवल जीवन-बीमा व्यवसाय के लिये	२,००,०००
(ब) केवल अग्नि-बीमा व्यवसाय के लिये.........	१,५०,०००
(स) केवल सामुद्रिक बीमा व्यवसाय के लिये	१,५०,०००
(द) कर्मचारी-क्षति-पूर्ति और मोटरकार बीमों सहित दुर्घटना-बीमा व्यवसाय के लिये	१,५०,०००
(य) जीवन तथा (ब), (स) अथवा (द) में से किसी एक के लिये	३,००,०००
(र) जीवन तथा (ब), (स) अथवा (द) में से किन्हीं दो के लिये	४,००,०००
(ल) जीवन तथा (ब), (स) और (द) के लिये ...	४,५०,०००
(व) जीवन-बीमा-व्यवसाय रहित (ब) (स) अथवा (द) में से किन्हीं दो के लिये	२,५०,०००
(श) जीवन-बीमा रहित (ब) (स) और (द) के लिये	३,५०,०००
(ष) कन्ट्रीक्रैफ्ट के सामुद्रिक बीमों के लिये	१०,०००

पारस्परिक-बीमा-कम्पनियों तथा सहकारी जीवन-बीमा समितियों को भी जीवन-बीमा व्यवसाय आरम्भ करने के लिये २,००,०००) धरोहर के रूप में जमा करने पड़ते हैं। किन्तु प्रावीडेन्ट संस्थाएँ आरम्भ में ५०००) से भी अपना काम चला सकती हैं। तत्पश्चात् उन्हें अपनी वार्षिक आय का $\frac{1}{4}$ भाग तब तक धरोहर में जमा करते रहना पड़ता है, जब तक कुल रकम ५०,०००) न हो

† दे० धारा ७ (१)

जाय. ।† लायड्स संस्थाओं के सम्बन्ध में प्रत्येक बीमा व्यवसाय के लिये उपर्युक्त रकमों की डेढ़गुनी रकम धरोहर में रखने का नियम है।

उपर्युक्त धरोहर बीमा-संस्था की सम्पत्ति (Assets) है। विधानानुसार बीमितों के अतिरिक्त अन्य कोई भी पावनेदार (Creditor) उसमें से कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता। इस प्रकार कानून बीमितों के हितों की रक्षा करता है।

धरोहर की रकमों को भारतीय बीमा-कम्पनियाँ चाहे तो एक-मुश्त अथवा बीमा-विधान की धारा ७ (५) के अनुसार किस्तों में चुका सकती हैं। धारा ७ (५) के अनुसार भारतीय बीमा कम्पनियाँ निम्न किस्तों में अपनी धरोहर की रकम जमा कर सकती हैं :—

रजिस्ट्रेशन के लिये आवेदन पत्र

भेजने के पूर्व..................धरोहर की रकम का ¼,
व्यवसाय प्रारम्भ होने के एक वर्ष व्यतीत
होने के पूर्व...........................शेष का ⅓,
व्यवसाय प्रारम्भ होने के दो वर्ष व्यतीत
होने के पूर्व ....शेष का ½,
व्यवसाय प्रारम्भ होने के तीन वर्ष व्यतीत
होने के पूर्व.............................शेष

उक्त सुविधा विदेशी बीमा कम्पनियों को प्राप्त नहीं हैं। उन्हें धरोहर की रकम एकमुश्त चुकानी होती है। धरोहर की रकम नकद, प्रतिभूतियों (Securities) में अथवा दोनों ही में जमा की जा सकती हैं। यदि उसे नकद जमा किया जाता है तो वह रिजर्व बैंक द्वारा उस बीमा-संस्था के नाम में जमा कर ली जाती है। रिजर्व बैंक इस पर कोई ब्याज नहीं देता। बीमा संस्था

---

†दे० , द्वारा ७३ (१)

अपनी इच्छा से इस नकद रकम को पूर्णतः अथवा अंशतः रिजर्व बैंक से प्रतिभूतियों में परिवर्तित करा सकती है। धरोहर प्रतिभूतियों में जमा करने पर उसके बाजारी मूल्य के निर्धारण का सर्वाधिकार रिजर्व बैंक को ही होता है। ऐसी दशा में इन प्रतिभूतियों पर जो ब्याज प्राप्त होगा, उसे रिजर्व बैंक अपना कमीशन काट कर बीमा-संस्था को लौटा देगा।

बीमा-संस्था के जीवन-पर्यन्त धरोहर की यह रकम रिजर्व बैंक के पास ही रहती है। व्यवसाय सम्बन्धी दायित्व का जब तक अन्त नहीं होता, रिजर्व बैंक उसे वापस नहीं करता। कुछ स्थितियों में बीमा-संस्था द्वारा आवेदन-पत्र देने पर न्यायालय इस रकम को लौटाने का आदेश रिजर्व बैंक को दे सकती है (धारा ९)।

कार्यवाहक पूंजी की शर्तें : जीवन-बीमे का व्यवसाय करने वाली कम्पनी को उपर्युक्त धरोहर के अतिरिक्त ५०,०००) की रकम कार्यवाहक-पूंजी के रूप में भी रखनी पड़ती है। पारस्परिक और सहकारी बीमा-समितियों के लिये इस सम्बन्ध में १५,०००) तथा प्रावीडेन्ट-समितियों के लिये ५,०००) की रकम रखने का नियम है। कार्यवाहक-पूंजी का नियम केवल जीवन-बीमा के लिये ही अनिवार्य है। अन्य प्रकार के बीमा-व्यवसायों के लिये वह ऐच्छिक है।

रजिस्ट्रेशन की विधि : विधानानुसार उपर्युक्त शर्तों का पालन करने के पश्चात् ही बीमा-संस्था बीमा-अधीक्षक के पास रजिस्ट्रेशन के लिये आवेदन-पत्र भेज सकती है। आवेदन-पत्र के साथ निम्नांकित प्रलेख भी भेजने पड़ते हैं :—

(१) कम्पनी को अपने स्मरण-पत्र (Memorandum of Association) तथा नियमावली (Articles of Association) विदेशी-संस्था को अपना अधिकार-पत्र और साझेदारी फर्म को अपने भागिता-संलेख (Partnership Deed) की प्रमाणित प्रतिलिपियाँ।

(२) संचालकों (Directors) का नाम, व्यवसाय और पता तथा भारतीय व्यवसाय के प्रधान कार्यालय का पता।

(३) किये जाने वाले विभिन्न बीमा-व्यवसायों का पूर्ण विवरण तथा इस आशय का वक्तव्य कि उनके निमित्त आवश्यक धरोहर जमा की जा चुकी है, और इसके प्रमाण-स्वरूप रिजर्व बैंक से प्राप्त किया हुआ प्रमाण-पत्र।

(४) यदि संस्था जीवन-बीमे का व्यवसाय करना चाहती है, तो यह घोषणा कि कार्यवाहक पूंजी सम्बन्धी आवश्यक नियमों का पालन किया जा चुका है।

(५) यदि संस्था विदेशी है, तो उसके प्रधान अधिकारी का शपथ-सहित वक्तव्य (Affidavit) जिसमें यह लिखा हो कि जिस देश की वह संस्था है उसमें भारतीय बीमा-संस्थाओं के ऊपर ऐसे कौन-कौन से नियम लागू हैं, जो उस देश की संस्थाओं पर नहीं लागू होते।

(६) संस्था के प्रकाशित विवरण-पत्र (Prospectus) की प्रमाणित प्रतिलिपि तथा बीमा-पत्रों के फार्मों और दरों, सुविधाओं, शर्तों तथा तत्सम्बन्धी अन्य बातों के सम्बन्ध में आवश्यक वक्तव्य। इनके अतिरिक्त जीवन-बीमा-व्यवसाय के आवेदकों को बीमा-गणितज्ञ से इस आशय का प्रमाण-पत्र प्राप्त कर के भेजना होगा कि वक्तव्य में उल्लिखित दरें आदि कार्य-योग्य तथा सुरक्षित हैं।

(७) रजिस्ट्रेशन के लिये रिजर्व बैंक में आवश्यक शुल्क जमा करके तत्सम्बन्धी रसीद। यह शुल्क प्रत्येक प्रकार के बीमा-व्यवसाय के लिये १००) होता है।

बीमा-अधीक्षक आवेदन-पत्र तथा प्रलेखों पर विचार करता है। संतुष्ट हो जाने पर आवेदक को रजिस्ट्री करके रजिस्ट्रेशन का प्रमाण-पत्र दे देता है। रजिस्ट्रेशन का प्रमाण-पत्र पाने के पश्चात् बीमा-संस्था अपना व्यवसाय प्रारम्भ कर सकती है। प्रमाण-पत्र केवल वर्ष भर ही कार्यशील रहता है। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रतिवर्ष इसका नवकरण (Renewal) कराना पड़ता है—धारा ३ ब। नवकरण कराने के लिये आवेदन-पत्र चालू वर्ष के ३१ दिसम्बर के पूर्व ही बीमा-अधीक्षक के पास भेज देना चाहिये। आवेदन-पत्र भेजते समय रिजर्व बैंक से आवश्यक शुल्क जमा किये जाने की रसीद भी भेजनी

चाहिये। इस शुल्क की रकम प्रत्येक बीमा के लिये १०००) से अधिक नहीं हो सकती।

रजिस्ट्रेशन के प्रमाण-पत्र का रद होना : निम्नलिखित अवस्था में बीमा-अधीक्षक रजिस्ट्रेशन के प्रमाण-पत्र को रद (Cancel) कर सकता है :—धारा ३ (४)।

(१) यदि बीमक धरोहर की रकम जमा करने के नियम का उल्लंघन करता है, अथवा

(२) यदि बीमक दिवालिया घोषित हो जाय अथवा उसके व्यवसाय का समापन (Liquidation) हो जाय, अथवा

(३) यदि उसका व्यवसाय पूर्णत: अथवा अंशत: किसी अन्य व्यक्ति के हाथ में चला जाय अथवा किसी दूसरी संस्था में मिल जाय, अथवा

(४) यदि निश्चित अवधि के भीतर ही प्रमाण-पत्र का नवकरण न कराया जाय, अथवा

(५) यदि वैधानिक निर्णयानुसार किसी बीमा-पालिसी के सम्बन्ध में किये जाने वाले दावे का भुगतान ३ महीनों के भीतर न किया जाय, अथवा

(६) यदि धारा ३ ब के अनुसार बीमक एक निश्चित समय के भीतर बीमितों की सुविधाओं, शर्तों आदि में उचित परिवर्तन न कर सके, अथवा

(७) यदि बीमा-अधीक्षक को यह पता लगे कि विदेशी-कम्पनियों के देशों में भारतीय-संस्थाओं को बीमा-व्यवसाय नहीं करने दिया जाता तो वह ऐसी विदेशी कम्पनियों के रजिस्ट्रेशन का प्रमाण-पत्र रद कर सकता है।

रजिस्ट्रेशन के पश्चात् बीमक के उत्तरदायित्व : प्रत्येक रजिस्टर्ड बीमा-कम्पनी के लिये आवश्यक रजिस्टरों का रखना, उचित समय पर उनकी जांच अथवा आय-व्यय की समीक्षा कराना और नियमित रूप से बीमा-अधीक्षक के पास विभिन्न विवरणों (Returns) को भेजना आवश्यक होता है। जीवन-बीमा कम्पनी के लिये बीमा-विधान में निहित रीति से ही अपने जीवन-कोष (Life Fund) का विनियोग करना पड़ता है।

रजिस्टर : बीमा-विधान की १४, ४३ और ७९वीं धाराओं के अनुसार प्रत्येक बीमा कम्पनी को अनेक रजिस्टर रखने पड़ते हैं। उनमें से निम्नांकित प्रमुख हैं :—

(१) पालिसी रजिस्टर : इसमें प्रत्येक बीमित का नाम, पता, बीमा कराये जाने की तिथि, हस्तान्तर, प्रदान, नाम-लेखन आदि का उल्लेख रहता है।

(२) दावों का रजिस्टर : इसमें प्रत्येक दावे का प्रकार (Nature), उसके उपस्थित किये जाने की तिथि, दावेदार का नाम, पता, दावे के भुगतान की तिथि, उसके अस्वीकृत होने की तिथि तथा अस्वीकृति का कारण आदि का लेखा रहता है।

एजेन्टों का रजिस्टर : इसमें प्रत्येक एजेन्ट का नाम, पता, नियुक्ति की तिथि बरखास्त होने की तिथि आदि का विवरण रक्खा जाता है।

प्रावीडेन्ट समितियाँ एक सदस्य का रजिस्टर भी रखती हैं, जिसमें प्रत्येक सदस्य का नाम, पता, व्यवसाय इत्यादि बातों का उल्लेख रहता है।

खाते : बीमा-कम्पनियाँ नियमित रूप से खाते सम्बन्धी विवरण बनाती हैं। इस सम्बन्ध में बीमा-विधान का मन्तव्य उनमें एकरूपता का समावेश करना है। खाते सम्बन्धी कुछ नियम तो विधान के मूल में ही समाविष्ट हैं; और कुछ नियम तथा फार्म विधान की पहली, दूसरी तथा तीसरी अनुसूचियों (Schedules) में दिये गये हैं। इन नियमों के अनुसार अनुसूचियों में उल्लिखित फार्मों के रूप ही में आगम-खाता, लाभ-हानि खाता तथा चिट्ठा तैयार होता है। विदेशी-कम्पनियाँ केवल भारतवर्ष में किये गये व्यवसाय के सम्बन्ध में ही इस ओर ध्यान देती हैं। विधान की १०वीं धारा के अनुसार यदि कोई बीमा-संस्था कई प्रकार के बीमों का व्यवसाय करती है तो प्रत्येक व्यवसाय के लिये पृथक् खातों की व्यवस्था करनी पड़ती है।

विवरण (Returns) : इनसे सम्बन्धित नियम बीमा-विधान की धारा १५, १६, १८, १९, २३, २४ तथा २८ में दिये हुये हैं। इन नियमों के

अनुसार बीमा-संस्थाओं को आवश्यक विवरण बीमा-अधीक्षक के पास उल्लिखित समय के भीतर भेजने पड़ते हैं। ये नियम इस प्रकार हैं :—

(१) ११वीं धारा के अनुसार बनाये गये खातों, जैसे लाभ-हानि-खाता, आगम-खाता, चिट्ठा आदि की चार-चार मुद्रित प्रतियाँ बीमा-अधीक्षक के पास उनके प्रस्तुत होने की तारीख से ६ महीने के भीतर भेजनी चाहियें

(२) भारतीय बीमा-संस्थाओं को प्रत्येक साधारण बैठक (Ordinary Meeting) की कार्यवाही का विवरण बैठक होने की तारीख से ३० दिन के भीतर बीमा-अधीक्षक के पास भेजना चाहिये

(३) जीवन-बीमा कम्पनियों को प्रत्येक वर्ष ३१ जनवरी के भीतर ही बीमा-अधीक्षक के पास इस आशय का एक विवरण भेजना चाहियें, कि विगत वर्ष के ३१ दिसम्बर को २७ वी धारा के अनुसार विनियोजित सम्पत्तियाँ क्या थी। इस विवरण में वे ब्यौरे सम्मिलित किये जाने चाहिये जो यह प्रदर्शित करें कि विधान के नियमों का पालन किया गया है। इस विवरण का संस्था के प्रधान अधिकारी के द्वारा प्रमाणित होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त मार्च, जून, तथा सितम्बर की अन्तिम तिथियों पर धारा २७ के अनुसार विनियोजित सम्पत्तियों को ब्यौरे सहित विवरणों को क्रमशः अप्रैल, जुलाई, तथा अक्टूबर की १५ वी तारीख के पूर्व बीमा-अधीक्षक के पास उपर्युक्त विधि से भेजना आवश्यक होता है। विदेशी-संस्थाओं को इस कार्य के लिये इनका दूना समय दिया जाता है।

(४) यदि संस्था की व्यवसायिक स्थिति की जाँच सदस्यों अथवा बीमितों द्वारा माँग किये जाने पर कराई गई हो, तो ऐसी जाँच की रिपोर्ट की एक प्रमाणित प्रति, सदस्यों या बीमितों के सम्मुख उपस्थित किये जाने के पश्चात्, अविलम्ब बीमा-अधीक्षक के पास भेजनी चाहिये।

(५) जीवन-बीमा संस्थाओं को धारा १३ के अनुसार बीमा-गणितज्ञ द्वारा नियमानुसार तैयार कराये हुये मूल्य-निर्धारण सम्बन्धी आँकड़े (Abstracts) तथा रिपोर्टों की चार-चार मुद्रित प्रतियाँ उनके

प्रस्तुत होने की तारीख से ९ मास के अन्तर्गत बीमा-अधीक्षक के पास भेजनी चाहिये।

उपर्युक्त दोनों कार्यों के लिये विदेशी-कम्पनियों को तीन महीने का समय और दिया जाता है। केन्द्रीय सरकार इसके अतिरिक्त तीन महीने का और समय दे सकती है। इन चार प्रतियों में से एक प्रति पर चेयरमैन, दो संचालकों तथा एक प्रमुख अधिकारी के हस्ताक्षर होने चाहिये। यदि कोई प्रबन्ध-संचालक (Managing Director) हो, तो उसका हस्ताक्षर होना चाहिये।

इन सभी विवरणों को अत्यन्त सावधानी एवं शुद्धिपूर्वक तैयार करना आवश्यक है। विवरणों में जान-बूझ कर असत्य सूचना देना अपराध है और इसके लिये तीन वर्ष का कारावास का दण्ड अथवा एक सहस्र रूपये का आर्थिक दण्ड अथवा दोनों ही दिये जा सकते हैं।

मूल्य-निर्धारण तथा विनियोग : जीवन-बीमा का व्यवसाय करने वाली संस्थाओं के लिये यह आवश्यक है कि वे कम से कम प्रति पाँच वर्षों में अपने व्यवसाय के दायित्वों का निरीक्षण किसी योग्य बीमा-गणितज्ञ से विधान में निहित चतुर्थ अनुसूची के नियमों और फार्म के अनुसार करावें—धारा १३। इस प्रकार जो दायित्व की रकम निर्धारित हो, उसके समान मूल्य का जीवन-कोष उन्हें अपने पास पराई धरोहर के रूप में रखना पड़ता है। उसका उपयोग किसी अन्य प्रयोजनार्थ नहीं कर सकतीं—धारा १० (३) और धारा ४९। निःसन्देह इस कोष का विनियोग अवश्य हो सकता है। इस दिशा में विधान की २७ वीं धारा में विहित नियम अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। वे निम्न प्रकार हैं :—

(१) प्रत्येक ऐसी बीमा-संस्था, जो भारतवर्ष अथवा इंगलैण्ड की है, बीमितों के प्रति अपने दायित्वों की रकम में से धरोहर तथा पालिसी पर दिये हुये ऋण की रकमों को घटा कर शेष का २५ प्रतिशत सरकारी प्रतिभूतियों (Govt. Securities) में तथा ३० प्रतिशत सरकारी प्रतिभूतियों में अथवा स्वीकृत प्रतिभूतियों (Approved Securities) में विनियोजित कर सकती हैं।

(२) प्रत्येक ऐसी बीमा-संस्था जो इंगलैण्ड के अतिरिक्त किसी अन्य देश की है, भारतीय-बीमितों के प्रति अपने दायित्वों की रकम में से उपर्युक्त प्रकार की रकमों —धरोहर तथा पालिसी पर दिये हुये ऋण की रकमों— को घटा कर शेष रकम का १/३ अर्थात् ३३१/३ प्रतिशत सरकारी प्रतिभूतियों में तथा शेष २/३ अर्थात् ६६२/३ प्रतिशत सरकारी अथवा स्वीकृत प्रतिभूतियों में विनियोजित कर सकती है।

धारा ८५ में प्रावीडेन्ट समितियों के लिये भी इस सम्बन्ध में आवश्यक नियम दिये हुये हैं। इनके अनुसार प्रावीडेन्ट समितियों के लिये अपने दायित्व का ५० प्रतिशत सरकारी प्रतिभूतियों में लगाना आवश्यक है।

एजेन्टों की नियुक्ति, कमीशन आदि से सम्बन्धित नियम

लाइसेन्स : प्रत्येक बीमा एजेन्ट को बीमा-अधीक्षक से लाइसेन्स लेना आवश्यक है। बिना लाइसेन्स लिये कार्य करने वाला बीमा एजेन्ट को धारा ४३ के अनुसार ५०) के जुरमाने से दण्डित किया जा सकता है। इसी प्रकार ऐसे एजेन्ट से व्यवसाय करने वाले बीमक पर भी १००) तक जुर्माना हो सकता है।

लाइसेन्स प्राप्त करने के लिये बीमा-अधीक्षक के पास आवश्यक शुल्क सहित एक निश्चित फार्म पर आवेदन-पत्र भेजना पड़ता है। लाइसेन्स प्राप्त करने का शुल्क अधिक से अधिक ३) हो सकता है। यदि आवेदक में विधान में दिये हुये दोष न पाये गये, तो साधारणतः उसे लाइसेन्स दे दिया जाता है। विधान में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि निम्नलिखित व्यक्तियों को बीमा-अधीक्षक बीमा-एजेन्ट का लाइसेन्स नहीं दे सकता :—

(१) नाबालिग (Minor) को,

(२) ऐसे व्यक्ति को जिसे न्यायालय ने विकृत-मस्तिष्क (Unsound Mind) घोषित कर दिया है,

(३) ऐसे व्यक्ति को जिसे किसी न्यायालय ने ग़बन करने या धोखा आदि अपराधों का दोषी अथवा उनमें सहायक होने का अपराधी पाया है,

ऐसा व्यक्ति अपना दण्ड समाप्त करने की पाँच वर्ष की अवधि के पश्चात् अपनी अयोग्यता से मुक्त हो जाता है।

(४) ऐसे व्यक्ति को जिसे किसी पालिसी के सम्बन्ध में हुई न्यायिक कार्यवाहियों (Judicial Proceedings) में बीमा-कम्पनी के भंग होते समय, अथवा बीमक की स्थिति के निरीक्षण के समय किसी बीमित या स्वयं बीमक के प्रति धोखा, या मिथ्या प्रदर्शन करने का दोषी पाया गया हो।

लाइसेन्स केवल एक वर्ष के लिये ही दिया जाता है। आवश्यक आवेदन-पत्र और शुल्क भेज कर प्रतिवर्ष नवकरण कराना उसे चालू रखने के लिये अपेक्षित होता है। नवकरण-शुल्क ३) होता है। निश्चित अवधि के भीतर लाइसेन्स का नवकरण कराने के लिये आवेदन-पत्र न भेजने पर १) का अतिरिक्त शुल्क और भेजना पड़ता है। यदि बीमा-अधीक्षक को यह ज्ञात हो जाय कि बीमा एजेन्ट के साथ उपर्युक्त अयोग्यताएँ हो गई हैं अथवा उसने जान-बूझ कर बीमा-विधान के किसी नियम का उल्लंघन किया है, तो बीमा-अधीक्षक लाइसेन्स को उसकी चालू अवस्था में भी रद कर सकता है।

कमीशन सम्बन्धी नियम : बीमा-विधान की ४०वीं धारा के अनुसार बीमक अपने एजेन्टों को उनके कार्य के निमित्त केवल निम्नांकित दरों से ही कमीशन दे सकता है :—

जीवन-बीमा में : ४० प्रतिशत प्रथम वर्ष के प्रीमियम पर, तथा
५ प्रतिशत अन्य वर्षों में वार्षिक प्रीमियम पर।

यदि कोई जीवन-बीमा कम्पनी नवीन है, तो वह अपने व्यवसाय के प्रथम १० वर्षों में अपने एजेन्टों को इस प्रकार कमीशन देगी :—

५५ प्रतिशत प्रथम वर्ष के प्रीमियम पर, तथा
५ प्रतिशत अन्य वर्षों के वार्षिक प्रीमियम पर।

अन्य प्रकार के बीमों में : अन्य सभी प्रकार के बीमों के लिये. प्रीमियम का १५ प्रतिशत तक कमीशन दिया जा सकता है।

कमीशन में छूट : विधान की ४१वीं धारा के अनुसार कोई भी एजेन्ट प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी भी व्यक्ति को बीमा कराने के लिये अपने कमीशन में से किसी प्रकार की छूट नही दे सकता। इसी प्रकार बीमा कराने वाले व्यक्ति को भी हिदायत की गई है कि वह एजेन्ट से किसी प्रकार की छूट की इच्छा न करे और न किसी दी हुई छट को स्वीकार ही करे। यह नियम उन छूटों पर लागू नहीं है, जो बीमा-संस्था की मुद्रित विवरण-पत्रिका अथवा प्रीमियम-तालिका के नियमों के अनुसार बीमित को दी जा सकती है। इसी प्रकार यदि कोई एजेन्ट अपने जीवन का बीमा कराने के फलस्वरूप तत्सम्बन्धी कमीशन का अधिकारी हो जाय, तो वह कमीशन भी छूट के अन्तर्गत नहीं आयेगा।

बीमा-अधीक्षक के विशेषाधिकार : सन् १९३८ से बीमा-अधीक्षक के निरीक्षण में बीमा-विधान के अन्तर्गत एक नवीन विभाग कार्यशील है। इस विभाग का कर्त्तव्य यह देखना है कि बीमा-संस्थाएँ विधान में निहित नियमों का पालन करती हैं अथवा नहीं, और अपने विवरणों का सारांश प्रति वर्ष प्रकाशित करती हैं अथवा नहीं। इस सम्बन्ध में बीमा-अधीक्षक को अत्यन्त विस्तृत अधिकार प्राप्त हैं।

यदि किसी बीमा संस्था से प्राप्त विवरणों के सम्बन्ध में उसे ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें उल्लिखित ब्यौरे असत्य हैं अथवा उनमें किसी अन्य प्रकार का दोष है, तो वह उस संस्था को उन विवरणों की विस्तृति सूचना सहित अन्य प्रतियाँ भेजने और उसकी खाता-बहियों, रजिस्टरों आदि की समीक्षा कराने का आदेश दे सकता है। साथ ही उसके किसी भी पदाधिकारी की जाँच भी कर सकता है। कठोरतम कार्यवाही के रूप में वह बीमा-संस्था द्वारा भेजे हुए किसी भी विवरण को अस्वीकार कर सकता है, यदि वह विवरण में सन्निहित सूचना को ग़लत समझे। ऐसी दशा में यह कल्पना कर ली जायगी कि संस्था ने खाता जमा करने की वैधानिक आवश्यकता का पालन नहीं किया।

यदि बीमा-अधीक्षक को ऐसा प्रतिभासित होता है कि बीमक का मूल्यांकन अथवा जाँच त्रुटिपूर्ण आधार पर आधारित होने के कारण उसकी यथार्थ स्थिति को स्पष्ट नहीं करता, तो वह उसके व्यय पर अपनी ओर से मूल्यांकन अथवा जाँच करा सकता है। जाँच कराने के उक्त अधिकार में निकटपूर्व में कुछ

विस्तार कर दिया गया है और अब वह बीमक के सभी मूल्यांकनों पर लागू होता है।†

बीमा-अधीक्षक को उक्त अधिकार देने के साथ-साथ विधान ने कुछ अधिकार बीमा-संस्थाओं को भी प्रदान किये हैं। जिससे अन्याय होने पर वे उसमें प्रतिकार कर सकें। बीमा-संस्था न्यायालय से बीमा-अधीक्षक के आदेशों को रद करने और उसे संस्था द्वारा भेजे गये विवरणों को स्वीकार करने की आज्ञा देने के लिये प्रार्थना कर सकती है। किन्तु इसके लिये यह आवश्यक है कि ऐसा प्रार्थना-पत्र बीमा-अधीक्षक की आज्ञा के दिन से तीन मास के भीतर ही उपस्थित किया जाय।§

निम्नांकित अवस्थाओं में बीमा-अधीक्षक बीमा-संस्था की समीक्षा करा सकता है, यदि उसे यह विश्वास हो जाय कि :—

(१) बीमा संस्था अपने दायित्व पूर्ण करने में असमर्थ है,

(२) उसने विधानों के नियमों का पालन नहीं किया है,

(३) उसने अथवा उसके किसी पदाधिकारी ने कोई अपराध किया है अथवा उसके किये जाने की सम्भावना है,

(४) यदि उसकी पूंजी के १/१० भाग के हिस्सेदार, जो समस्त हिस्सेदारों की संख्या का १/१० हों, उसके पास हस्ताक्षरयुक्त माँग (Requisition) भेजते हैं,

---

†दे धारा 22 of the Insurance Act, 1938 as amended by the 1941 Act.

§See Sec. 21 of the Insurance Act, 1938, as amended by Act. the 1941

(५) यदि कुल ५०,०००) की ऐसी पालिसियों के ५० पालिसी होल्डर, जो कम से कम ३ वर्ष तक चालू रह चुकी हों, हस्ताक्षरयुक्त माँग भेजते हैं।

कतिपय अन्य नियम : बीमकों के सम्बन्ध में विधान में अन्य अनेक नियमों का भी समावेश है, जिन पर हम स्थानाभाव के कारण प्रकाश नहीं डाल सकते, और इनकी जानकारी के लिये विधान को आद्योपान्त पढ़ना उचित होगा। तथापि हम कतिपय अन्य नियमों का उल्लेख नीचे करते हैं :—

धारा ४ के अनुसार कोई जीवन-बीमा-कम्पनी १,०००) से कम रकम की पालिसी नही दे सकती ।

धारा ३२ में उल्लिखित नियमानुसार व्यवसाय-संचालन के लिये कोई बीमा-संस्था मैनेजिंग एजेन्टो को नही नियुक्त कर सकती ।

इसी प्रकार धारा २९ के नियमानुसार कोई बीमा-संस्था संचालक, मैनेजर, बीमा-गणितज्ञ, आडीटर या कम्पनी के किसी अन्य अफसर को ऋण नहीं दे सकती ।

परिशिष्ट 'अ'

सहायक पुस्तकों की सूची

(1) Maclean : Life Insurance.

(2) Leigh : A Guide to Life Assurance.

(3) Ray R. M. : Life Assurance in India,

(4) Nathan Willel : Principles and Practice of Life Assurance.

(5) Magee : Life Assurance.

(6) Huebner : Life Assurance.

(7) Dawson : Elements of Insurance.

(8) Riegel and Loman : Insurance Principles and Practice.

(9) Gephart : Principles of Insurance.

(10) Young : Insurance.

(11) Zartman : Yale Readings in Insurance.

(12) Templeman & Greenacre : Marine Insurance, Principles and Practice.

(13) Dover : A Hand-Book of Marine Insurance.

(14) Keate : Guide to Marine Insurance.

(15) William Gow : Marine Insurance.

(16) Mitra : Marine, Fire and Accident Insurance.

(17) Winter : Marine Insurance.

(18) E. Brook : Fire Insurance.

(19) Cole: Law of Fire Insurance.
(20) Cornell: The Principles and Practice of Fire Insurance.
(21) Godwin: Principles and Practice of Fire Insurance.
(22) Welford and Otter-Berry: Law of Fire Insurance.
(23) Willcot: Economic Theory of Risk and Insurance.
(24) Kitchen: The Principles and Practice of Fire Insurance.
(25) Huebner: Property Insurance.
(26) National Planning Committee Report on Insurance (1948).
(27) Mowbray A. H.: Insurance, Its Theory and Practice in United States.

परिशिष्ट 'ब'

पारिभाषिक शब्दावली

Abandonment	—परित्याग, स्वाधिकार त्याग
Absolute good faith	—पूर्ण विश्वास
Absolute acceptance	—सम्पूर्ण स्वीकृति
Absolute assignment	—सम्पूर्ण अधिकार प्रदान करना
Acceptance	—स्वीकृति
Acceptance letter	—स्वीकृति-पत्र
Acceptance of the proposal	—प्रस्ताव की स्वीकृति
Accident insurance	—दुर्घटना बीमा
Account	—हिसाब-किताब
Accurate	—परिशुद्ध
Accrue	—जमा होना, बढ़ना
Accredit	—अधिकार देना
Accumulate	—संचय, संग्रह
Acknowledgement	—स्वीकृति
Act of God	—ईश्वर की करणी

Actual expense ratio —वास्तविक व्यय-अनुपात
Actual total loss —वास्तविक-पूर्ण हानि
Acturial science —बीमा-गणित-विज्ञान
Actuary —बीमा-गणितज्ञ, बीमा-विशेषज्ञ
Adjustment policy —व्यवस्थापन-पालिसी
Administration —व्यवस्था, प्रशासन
Admission of age —आयु-स्वीकृति, आयु-प्रवेश
Admission of death —मृत्यु-स्वीकृति
Additional premium —अतिरिक्त-प्रीमियम
Additional assurance —बीमित धन में वृद्धि
Adopt —अंगीकार
Advisory committee —परामर्शदात्री समिति
Ad-valorem —मूल्य के अनुसार
Against all risks or (A.A.R.)—समग्र जोखिमों के निमित्त
Age group —अवस्था-वर्ग
Agent —एजेन्ट
Aggregate mortality-table —सामूहिक मृत्यु-तालिका, समग्र मृत्यु-तालिका
Agreement —इकरार, सम्मति
Aid —सहायता
Alteration —परिवर्तन

Alien	—विदेशी
All risks insurance	—सर्वजोखिमी बीमा
Amalgamation	—सम्मिश्रण
Amendment	—संशोधन
Amount	—रकम, धन
Annual	—वार्षिक
Annuities	—वृत्तियाँ
Annuitant	—वार्षिक वृत्तिग्राही
Anticipated profit	—प्रत्याशित लाभ
Appreciation	—मूल्य-वृद्धि
Arbitration	—पंचायत
Arson	—आग लगाना, जान-बूझ कर तथा दुष्ट भावना से दूसरों की सम्पत्ति जलाना, अन्य व्यक्तियों द्वारा गृह-दहन
Assessment insurance	—सहाय-निर्धारण-बीमा
Assessmentism	—निर्धारण-विधि
Assessment plan	—सहाय-निर्धारण-योजना
Assign	—देना, प्रदान करना,
Assignor	—दूसरे को अधिकार देने वाला, स्वत्व-समर्पक

Assignee	—जिसको अधिकार दिया जाय, स्वत्व-भोगी
Assignment of policy	—पालिसी का प्रदान
Association	—मंडल, संघ
Assured	—बीमित
Auditor	—आय-व्यय-परीक्षक
Authorised	—अधिकृत
Authoritative	—प्रामाणिक
Automatic non-forfieture	—पालिसी की स्वाभाविक बेजब्ती
Attorney	—एटार्नी, वकील
Average	—औसत
Average life	—औसत-जीवन
Average policy	—औसत-पालिसी
Aviation	—वायु-चालन
Aviation insurance	—हवाई जहाज का बीमा
Award	—पंच-निर्णय
Back date	—पूर्ववर्ती तिथि
Bad debts insurance	—डूबते-खाते का बीमा, बट्टा-खाता-बीमा
Balance sheet	—आय-व्यय विवरण-पत्र
Baratry	—नाविकों द्वारा चोरी
Based	—आधारित

Basic —आधारभूत
Basis —आधार
Beneficiary —वृत्तिधारी
Bill of lading —जहाजी-बिल्टी
Block policy —ब्लाक पालिसी
Board of directors —संचालक-समिति
Boiler insurance —बॉयलर-बीमा
Bond —दस्तावेज
Bond policy —ऋण पत्र-पालिसी
Bonus —बोनस, लाभांश
Bottomry —जहाज की जमानत पर ऋण लेना
Broker —दलाल
Business risk —व्यवसायिक-जोखिम
Burglary, theft and robbery insurance —सेंध-मारी, चोरी और डाका-बीमा
Calculation —आगणन
Capture —पकड़ना, जब्त करना
Cargo-insurance —माल-बीमा
Cash bonus —नकद बोनस
Carrier —वाहक
Cavet emptor —क्रयकर्त्ता सचेत रहे

Causa proxima —निकटतम कारण
Certified extract —प्रमाणित उद्धरण
Certificate of title —अधिकार-पत्र, स्वत्व-प्रमाण-पत्र
Change of voyage clause—यात्रा-परिवर्तन पद
Charter panty —जहाजी इकरारनामा
Claim —दावा
Claimant —दावेदार
Classification —वर्गीकरण
Classification of risk —जोखिम का वर्गीकरण
Clause —धारा, वाक्यांश, पद
Collective fidelity guarantee policy —संयुक्त विश्वासपात्रता का बीमा
Co-insurance —सहबीमा
Co-insurer —सहबीमक
Common law —प्रचलित कानून
Commutation table —विपर्यय-तालिका
Compensation —क्षति-पूर्ति
Compensation act —क्षतिपूरक-विधान
Comprehensive policy —बहुग्राही बीमा
Competent parties —कॉन्ट्रैक्ट के योग्य पक्ष

Compound reversionary bonus —चक्रवृद्धि-उत्तराधिकारी बोनस

Commencement of risk —जोखिम का आरम्भ

Common carrier —सार्वजनिक वाहक

Conclusion —निष्कर्ष

Consideration —प्रतिफल

Construction —निर्माण, रचना

Constructive total loss —अवास्तविक-पूर्ण हानि, रचनात्मक-पूर्ण हानि

Contingent contract —संभाव्य कॉन्ट्रैक्ट

Contingent insurance —आकस्मिकता का बीमा

Continuation clause —जारी रहने वाला पद

Continuous instalment policy —निरन्तर किस्त वाली बीमा पालिसी

Contraband goods —निषिद्ध माल

Contract —कॉन्ट्रैक्ट, ठेका, प्रसंविदा

Contract of indemnity —क्षतिपूरक कॉन्ट्रैक्ट

Contract of sale —विक्रय का कॉन्ट्रैक्ट

Contract insurance —कॉन्ट्रैक्ट-बीमा

Contribution —सहायता, भागदान

Construction of mortality tables —मृत्यु-तालिकाओं का निर्माण

Consideration for annuities granted —वृत्ति-क्रय-धन

Convertible term assurance —विनिमयशील मियादी बीमा, परिवर्त्य अवधि-पालिसी

Cooperation —सहकारिता

Copy —प्रतिलिपि

Corollary —उपसिद्धान्त

Cost price —लागत-मूल्य

Cover note —अस्थायी पालिसी

Credit insurance —उधार का बीमा

Currency Policy —मुद्रा-पालिसी

Customary route —प्रचलित मार्ग

Damages —हर्जाना

Days of grace —रिआयत के दिन, अनुग्रह-दिवस

Dead freight —मृत किराया

Debenture system assurance —ऋण-पत्रीय बीमा

Declaration —घोषणा, स्वीकारोक्ति

Deed of assignment —प्रदान-पत्र

Declaration policy —घोषित-मूल्य-पालिसी
Deferred annuity —स्थगित वार्षिक वृत्ति
Deferred bonus —विलम्बित बोनस
Deficiency —कमी, हीनता,
Dependable —अवलम्बनीय
Deposit —धरोहर
Depreciation —मूल्य-ह्रास
Determination —निर्धारण
Deviation —जहाज का मार्ग-विचलन
Diagram —आकृति
Diminishing term policy —ह्रासमान अवधि-पालिसी
Disability benefits —अपंगता के लाभ
Disclosure of material facts—मूलभूत तथ्यों का प्रदर्शन
Discounted bonus —बट्टा-बोनस, पूर्व-प्रापित बोनस
Dividend —लाभांश
Doctrine of cause proxima —'निकटतम कारण' का सिद्धान्त
Doctrine of subrogation —बीमित की स्थिति-प्राप्ति का नियम-अधिकार-समर्पण सिद्धान्त
Double Insurance —दोहरा बीमा, द्विगुणित-बीमा

Doubly hazardous risk —विशेष विपत्तिजनक जोखिम
Driving accident Assurance —गाड़ी-दुर्घटना-बीमा
Early reduced premium policy —आरम्भिक अल्प-किस्ती बीमा
Effectiveness —कार्य-साधकता
Element —तत्व
Employer —नियुक्ति-कर्त्ता
Employer's liability assurance —स्वामी-दायित्व-बीमा
Endowment policy —बन्दोबस्ती बीमा
Equitable —न्याय
Equity —न्याय-आधार
Essentials —सारभूत
Event —घटना
Evidence of respectability—प्रतिष्ठा का प्रमाण
Exactly —यथावत्
Excepted perils clause —वर्जित आपत्ति-पद, अपवादित जोखिम-पद
Excess policy —अतिरिक्त पालिसी
Exchange bank —विनिमय बैंक

Exclusion	—निषेध
Experiment	—प्रयोग
Export	—निर्यात
Face value	—चालू मूल्य
Facultative reinsurance	—पारस्परिक पुनर्बीमा
Family insurance	—पारिवारिक बीमा
Fidelity insurance	—विश्वसनीयता का बीमा
Fidelity guarantee insurance	—विश्वस्तता-गारन्टी-बीमा
Floating policy	—खुला बीमा
Foot note	—पद-संकेत
Forfiet	—जब्ती, हरण
Foreign bill	—विदेशी हुंडी
Foreign general average	—विदेशी साधारण-आंशिक हानि
Fraud	—फरेब, धोखा
Freight insurance	—किराये का बीमा
Free consent	—स्वतन्त्र स्वीकृति
Free of all average (F. A. A.)	—प्रत्येक-आंशिक हानि-रहित
Free of capture and seizure	—बन्दी-भय-मुक्त

Free of particular average (F. P.,A.) —विशेष-आंशिक हानि रहित
Friend's report —मित्र की रिपोर्ट
Gambling contract —जुआबाजी का कॉन्ट्रैक्ट
General average —साधारण-आंशिक हानि
General Average adjustment —साधारण-आंशिक हानि की व्यवस्था
Gilt edged securities —जोखिम-रहित-प्रतिभूति
Good faith —सद्विश्वास
Gradual —उत्तरोत्तर, क्रमशः
Graduation of mortality —मृत्यु-दर की क्रमिकता
Gross premium —मिश्रित प्रीमियम
Group life assurance —सामूहिक जीवन-बीमा
Guarantee insurance —गारन्टी-सहित बीमा
Guaranteed bonus Insurance —गारन्टी-सहित-लाभांश
Guarantee payment annuity —गारन्टी-सहित-वृत्ति
Guardian —अभिभावक
Hazard —संकट-जोखिम
Hazardous occupation —जोखिमी उद्योग

Hazardous risk —विपत्तिजनक जोखिम

Honour policy —सम्मान पालिसी

Hull insurance —जहाज का बीमा

Identity certificate —ऐकात्म्य प्रमाण

Illegal —अवैध

Illegality —अवैधता

Immediate annuity —तात्कालिक-वार्षिक वृत्ति

Implied warranty —अप्रत्यक्ष-साधारण शर्त

Import —आयात

Incendiarism —आग लगाना, जान बूझ कर तथा दुष्ट भावना से अपनी सम्पत्ति को स्वयं जलाना, स्वेच्छा से गृह्-दहन

Indemnity —क्षति-पूर्ण

Indemnity bond —क्षतिपूरक बंध, क्षतिपूरक दस्तावेज

Indian contract act —भारतीय कानून-विधान

Indisputability of policy —जीवन-बीमे की आपत्ति-मुक्ति, जीवन-बीमे की निर्विवादिता

Industrial accident Insurance —औद्योगिक दुर्घटना-बीमा

Inherent vice —स्वाभाविक दुर्गुण

Initial expenses —प्रारम्भिक व्यय

Instalment —किस्त

Instalment assurance —किस्ती बीमा

Insurable interest —बीमा-योग्य हित

Insurable value —बीमा-योग्य मूल्य

Insurance —बीमा

Insurance agent —बीमा-दलाल

Insurance policy —बीमा-पालिसी

Insured —बीमक

Insured value —बीमित धन

Insured risk —बीमित जोखिम

Insurer —बीमक

Insurance against liability to third parties —अन्य व्यक्तियों के प्रति दायित्व का बीमा

Interest policy —हित-पालिसी

Interest or no interest —हित-विहीन पालिसी

Interim bonus —अन्तर्कालीन बोनस

Invalidity —असामर्थ्य

Investment —पूंजी लगाना, विनियोग

Invoice —बीजक

Jettison —जेटिसन

Joint —संयुक्त

Joint income policy —संयुक्त-आय-बीमा
Joint life annuity —संयुक्त-जीवन-वृत्ति
Joint Life assurance —संयुक्त-जीवन-बीमा
Joint life short period assurance —अल्पकालीन संयुक्त जीवन बीमा
Joint life policy —संयुक्त जीवन पालिसी
Joint life survivor annuity —सम्मिलित शेष जीवित-वृत्ति
Land risk —भूमि-जोखिम-वृत्ति
Lawful —विधि-विहित
Law of statistical regularity —अंकशास्त्रीय नियम का सिद्धान्त
Lapsation —बीमे की समाप्ति
Last survivor assurance —अन्तिम शेष जीवित-बीमा
Last survivor annuity —अन्तिम शेष जीवित वृत्ति
Last survivor endowment assurance —बन्दोबस्ती अन्तिमशेष जीवित बीमा
Legality of venture —बीमा-प्रयोजन का वैधानिक होना, उपक्रम की वैधता
Letter of acceptance —स्वीकृति-पत्र
Letter of administration —प्रबन्धाधिकार-पत्र

Level premium plan —समान-प्रीमियम-योजना
Liability insurance —दायित्व-बीमा
Liable —उत्तरदायी
Lien —ग्रहणाधिकार
Life annuity —जीवन-वृत्ति
Life assurance —जीवन-बीमा
Life contract —जीवन-कॉन्ट्रैक्ट
Life fund —जीवन-कोष
Limited liability principle—सीमित-दायित्व-सिद्धान्त
Limited payment endowment assurance —सीमित किस्तों का बन्दोबस्ती बीमा
Lloyds association —लायड्स संघ
Loading —किस्त-भार
Longevity of life —जीवनी शक्ति
Lost or not Lost —रक्षित अथवा अरक्षित
Lost policy —खोया हुआ बीमा-पत्र
Lump sum —एक मुश्त
Male and female life annuities —स्त्री-पुरुष की जीवन-वृत्तियाँ
Marine adventure —सामुद्रिक उपक्रम
Marine insurance —सामुद्रिक बीमा

Marine losses —समुद्री हानियाँ
Marine law —समुद्री कानून
Market value —बाजार-मूल्य
Material fact —आवश्यक तथ्य
Maternity insurance —मातृत्व का बीमा, प्रसूतिका-बीमा
Maturity —परिपक्वता
Maximum value with discount policy —बट्टा सहित अधिकतम मूल्य-पालिसी
Memorandum —स्मरण-पत्र
Minimum —न्यूनतम, निन्यून
Misdescription —मिथ्या वर्णन
Misrepresentation —मिथ्या प्रदर्शन
Mixed policy —मिश्रित पालिसी
Moral hazard —आचारिक जोखिम
Mortality rate —मृत्यु-दर
Mortality table —मृत्यु-तालिका
Mortgage —रेहन
Motor insurance —मोटर-बीमा
Moveables —चल वस्तुएँ
Mutual association —पारस्परिक संगठन
Named policy —नामांकित पालिसी

Natural love and affection —प्राकृतिक प्रेम व स्नेह

Natural premium plan —स्वाभाविक प्रीमियम-योजना

Net liability —शुद्ध दायित्व

Net Premium —शुद्ध प्रीमियम, वास्तविक प्रीमियम

Net Profit —शुद्ध लाभ

Nomination —नाम-लेखन, नियोजन

Nominee —नियोजित व्यक्ति

Non-deviation —जहाज का मार्ग विचलित न होना

Non-industrial accident assurance —अनौद्योगिक दुर्घटना-बीमा

Non-tariff offices —असदस्य संस्थाएँ

Notice of abandonment —परित्याग की सूचना

Object —प्रयोजन

Observation —अनुभव

Office premium —मिश्रित प्रीमियम

Old age benefit insurance—वृद्धावस्था-बीमा

Open policy —खुला बीमा

Option —विकल्प

Optional —वैकल्पिक

Ordinary endowment policy —साधारण बन्दोबस्ती पालिसी
Ordinary mortality table —साधारण मृत्यु-तालिका
Ordinary risk —साधारण जोखिम
Original insurer —मौलिक बीमक
Over insurance —अधिबीमा
Over valuation —अधिमूल्यांकन
Owner —मालिक, स्वामी
Paid up policy —चुकता बीमा
Participating policy —सलाभ पालिसी
Participating annuity —सलाभ वार्षिक वृत्ति
Particular average —विशेष-आंशिक हानि
Particular charges —विशेष व्यय
Partnership firm —साझीदारों की संस्था
Part profit system —आंशिक लाभ-सहित
Partial loss —आंशिक हानि
Past experience —पूर्वानुभव, अतीतानुभव
Payment —भुगतान, अदायगी
Pecuniary interest —आर्थिक हित
Pension insurance —पेन्शन का बीमा
Percentage —प्रतिशतता

Perils —जोखिम, आपत्तियाँ
Perils of the sea —समुद्री जोखिमें
Perishables —क्षयशील
Permanent disablement —स्थायी असमर्थता
Personal accident assurance —वैयक्तिक दुर्घटना-बीमा
Personal right —व्यक्तिगत अधिकार
Personal statement —व्यक्तिगत वक्तव्य
Physical hazard —भौतिक जोखिम
Plan —योजना
Plate glass insurance —शीशे की चद्दरों का बीमा
Policy —पालिसी
Policy proof of interest (P. P. I.) —हित-विहीन बीमा
Power of attorney —मुख्तारनामा
Premium —प्रीमियम
Present worth —तात्कालिक मूल्य
Principle of indemnity —क्षति-पूर्ति-सिद्धान्त
Principle of life assurance—जीवन-बीमा का सिद्धान्त
Private insurance —व्यक्तिगत बीमा
Probable —संभाव्य

Probability —संभावना
Process —प्रणाली
Profit and loss account —नफा-नुकसान-खाता
Property insurance —सम्पत्ति-बीमा
Proportionate paid-up policies —अनुपातिक वापसी-मूल्य-बीमा
Proposal form —प्रस्ताव-पत्र
Proposer —प्रस्तावक
Prospectus —विवरण-पत्र
Protection —संरक्षण
Protest —विरोध-कर्म
Provisional —अस्थायी
Proximate cause —निकटतम कारण
Purchase price —क्रय-मूल्य
Pure endowment policy —शुद्ध-बन्दोबस्ती पालिसी
Pure endowment with return policy —किस्त-धन का शुद्ध बन्दोबस्ती बीमा
Questionaire —प्रश्नावली
Quota —अभ्यंश
Rate —दर
Rateable proportion —दरानुसार अनुपात

Rateable contribution —दरानुसार सहायता
Reasonable —समुचित
Reassignment —पुनर्प्रदान
Recurring expenses —पुनर्भव व्यय
Reduction of premium bonus —प्रीमियम घटाने वाला बोनस
Reinstatement policy —पुनस्थापन-पालिसी
Reinsurance —पुनर्बीमा
Reinsurer —पुनर्बीमक
Reliability —विश्वसनीयता
Renewal commission —पुनर्चलन-कमीशन
Reserve —समयोपयोगी कोष
Reserve fund —संचित कोष
Responsibility —उत्तरदायित्व
Responsible —उत्तरदायी
Respondensia —माल की जमानत पर ऋण
Result —परिणाम
Retention of risk —ग्राह्य जोखिम
Return —विवरण
Reversionary annuity —उत्तराधिकारी-वार्षिक वृत्ति
Reversionary bonus —उत्तराधिकारी-बोनस

Reversionary interest —भावी भोगाधिकार

Revival —पुनर्जीवन

Revival of lapsed policies—समाप्त पालिसियों का पुनर्चलन

Risk —जोखिम

Risk bearing —जोखिम-वहन

Risk policy —जोखिमी पालिसी

Running down (R. D.) —टकराने की जोखिम

Sacrifice of cargo —सम्पत्ति-त्याग

Salver —नाश:रक्षक

Salvage —नाशरक्षण

Salvage charges —रक्षा-पुरस्कार

Salved property —रक्षित सम्पत्ति

Schedule —अनुसूची

Scope —क्षेत्र

Scope of marine insurance —सामुद्रिक बीमे का क्षेत्र

Seaworthiness —जहाज का समुद्र-यात्रा के योग्य होना

Security —सुरक्षा

Select mortality table —चयित मृत्यु-तालिका

Selection —चयन

Self insurance —स्वग

Separate valuation and valuation by series —पृथक मूल्यांकन और अनुक्रमिक मूल्यांकन
Settlement of claim —दावे का भुगतान
Shareholder —हिस्सेदार
Sickness insurance —रोगावस्था का बीमा
Simple reversionary bonus —साधारण उत्तराधिकारी-बोनस
Single premium —एक किस्त, एक प्रीमियम
Single preium whole life policy —एक किस्ती आजीवन बीमा
Social insurance —सामाजिक बीमा
Specific policy —विशिष्ट पालिसी
Standard lives —साधारण जीवन
Statement of particular average —विशेष-आंशिक हानि का विवरण-पत्र
Statistics —आँकड़े
State insurance —सरकारी बीमा
Standard mortality table —प्रामाणिक मृत्यु-तालिका
Standard policy —प्रामाणिक पालिसी
Status —स्थिति
Subject matter —विषय

Sub-standard lives —अपर साधारण जीवन
Substituted expenses —प्रतिस्थापित व्यय
Succession certificate —उत्तराधिकार-पत्र
Sue and labour —अभियोग तथा व्यय
Surplus —बचत
Surrender value —तात्कालिक मूल्य
Survey of property —प्रस्तावित सम्पत्ति की परीक्षा
Survey —निरीक्षण
Surveyor —निरीक्षक
Suretyship insurance —जाम्निी बीमा
System —पद्धति
Table —तालिका
Tariff offices —सदस्य-संस्थाएँ
Tariff association —अग्नि-बीमा-संस्था-समिति
Term insurance —अल्पकालीन बीमा
Theory of average —औसत का सिद्धान्त
Theory of probability —सम्भावनाओं का सिद्धान्त
Theory of large numbers —अधि-संख्या प्रयुक्त सिद्धान्त
Time policy —अवधि-पालिसी
Title insurance —अधिकार-बीमा
Total loss —पूर्ण हानि
Touch and stay —स्पर्श और टिकाव
Trade cycle —व्यापार-चक्र
Trade policies —व्यापारिक पालिसी
Transfer —हस्तान्तरण
Transport —यातायात
Treaty reinsurance —विशिष्ट पुनर्बीमा

Trustee —संरक्षक
Uncertainty —अनिश्चितता
Unconditional —शर्त-रहित
Underwriter —आश्वासक
Under writers' association —आश्वासक-संघ
Under average life assurance —औसत निम्न जीवन-बीमा
Uniformity —एकरूपता
Uniform rate —एक दर
Unemployment insurance —निरुद्यम-बीमा
Unvalued policy —अनिर्धारित मूल्य-पालिसी
Utmost good faith —परम सद्विश्वास
Usage —लोक-व्यवहार
Value —मूल्य
Valuation —मूल्य-निर्धारण
Void —रद
Valued policy —निर्धारित मूल्य-पालिसी
Voyage policy —यात्रा-पालिसी
Warehouseman —गोदाम-रक्षक
Warranty —साधारण शर्त
Wagering contract —द्यूत-कान्ट्रैक्ट
Wager policy —द्यूत-पालिसी
Winding up —समापन
Will —वसीयतनामा
With profit policy —लाभ-सहित पालिसी
Without profit policy —लाभ-रहित पालिसी